ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, श्रृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। **श्रृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान**

१ 14 04 1983 पुष्प 52 आपो सूक्त

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व से कुछ वेदमन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसकी महिमा का गुण गान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा की महानत्ता अथवा उसका ज्ञान और विज्ञान इस सर्वत्र प्रकृति के कण कण में व्याप रहा है। क्योंकि मानव किसी भी क्षेत्र में अपने को ले जाना चाहता है तो वहाँ यह परमात्मा का जगत् एक अनन्तता में दृष्टिपात आने लगता है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह परमपिता परमात्मा का जो अमूल्य जगत है यह अनन्तमयी माना गया है।

बहुत पुरातन काल हुआ एक समय बेटा! महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिलक और महर्षि दालभ्य, महर्षि हरितकेतु ऋषि और देव ऋषि नारद यह पांचों ऋषि अपनी अपनी विचाराधारा प्रकट करने लगे। परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में प्रत्येक अपनी अपनी आभा में रमण करने लगा। परन्तु आज जिन सूक्तों का हमने पठन पाठन किया है वह एक ही धारा वाले सूक्त कहलाते हैं। उन धाराओं का अभिप्राय क्या था कि आपो के ऊपर विवरण चल रहा था, जिसे आपो सूक्त कहा जाता है। हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के वेदों में सूक्त आते रहते हैं। जैसे आपो सूक्त हैं, इसी प्रकार वायु सूक्त हैं, अग्नि शूक्त है। और ब्रह्म सूक्त है इसी प्रकार वायु सूक्त है, अग्नि सूक्त है और ब्रह्म सूक्त भी कहलाता है, विष्णु और शिव भिन्न भिन्न प्रकार के सूक्तों का वर्णन हमारे यहाँ प्रायः आता रहा है। आज के वेद के पठन पाठन में हमारे यहाँ आपो सूक्त आ रहा था। आपो सूक्त उसे कहते हैं, जो प्राण को प्रिय होता है। प्राण को प्रिय आपो है और आपो को प्राण प्रिय है। आपो किसे कहते हैं? आपो अमृत को कहते हैं, परन्तु आपो अमृत बनता उसी काल में है जब कि प्राण से पिरोया हुआ आपो है। आपो बिना प्राण के बन ही नहीं पाता। जैसे हमारे यहाँ ऋषि मुनि अपने में पिपाद बनाते रहे हैं। पिपादों का अभिप्राय यह है कि उन्होंने नाना प्रकार की औषधियों को एकत्रित करके एक पिपाद

बनाते रहे हैं और वह पिपाद कहीं आपो के रूप में कहीं अग्नि के रूप में। अब विचार आता है कि अग्नि के रूप का आपो कैसा है? और जल का तो आपो बन ही जाता है। तो हमारे ऋषि मुनियों ने, प्रवाहण ने शिलभ जी से यह कहा कि क्या माता मल्दालसा यह कहा करती थी कि जिस भी काल में तुम अपने को तपस्वी बनाना चाहते हो उस काल में तुम आत्म याग करने लगो। परन्तु आत्म याग को ऊँचा बनाना चाहते हो तो वहाँ का वायु मण्डल पवित्र बनाओ। बेटा! यह साधकों की वार्त्ता है। मैं साधकों में तुम्हें ले जाने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए क्या मुनिवरों! देखो, आपो अप्रतं ब्रह्मे अमृता मुनिवरों! देखो, अग्नि का आपो बनाना चाहता है, आपो का अभिप्राय अमृत है। अब अमृत अग्नि में जानना चाहता है ऋषि अब प्रवाहण जी ने कहा माता यह कहा करती थी कि आत्म याग से पूर्व तुम आपोमयी याग बनाने का प्रयास करो। तो आपोमयी याग क्या है? आत्म याग क्या है? इस आत्म याग की बहुत चर्चाएं चला करती हैं और ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में परम्परागतों से हो नृत्त करते रहते हैं यह वाक्य।

मेरे प्यारे! प्रवाहण, शिलक और दालभ्य तीनों एक ही माता के पुत्र थे। इनकी माता का नाम माता मल्दाल्सा था। माता के तीनों ही पुत्र थे जो माता ने पांच वर्ष की अवस्था में अग्नि पिपाद बनाते हुए, अग्नि आपो बनाते हुए उन्होंने बेटा! तीन पुत्रों! को पांच वर्ष की आयु में ही ब्रह्मवेत्ता बना दिया। ब्रह्मनिष्ठ हो गए। ब्रह्म की ही चर्चा करना और ब्रह्म में ही लीन रहना। ब्रह्म को ही दृष्टिपात करना एक एक कण कण में ब्रह्म को निहारते रहना। मैं आज तुम्हें गहरे समुद्र में नहीं ले जाऊंगा। यह तो ज्ञान का अगाध समुद्र है जो गम्भीर ऋषि मुनि अपनी समाधि में इन वाक्यों के ऊपर चिन्तन करते रहते थे और वह चिन्तन क्या है? माता मल्दाल्सा के तीनों पुत्र और देवर्षि नारद और सोम अपने में विचार विनिमय करते रहे कि अब हमें पिपाद बनाना है, आपो बनाना है जो माता के गर्भस्थल में आपो रहता है। वही आपो जो सूर्य की किरणों में रहता है। वही आपो जो चन्द्रमा के सोम में रहता है। वही आपो जो वनस्पतियों की लताओं में होता है। वही सोम जो माता वसुन्धरा के गर्भ में वसु बन करके रहता है, वही आपो जब याज्ञिक

पुरुष यज्ञशाला में विद्यमान होता है, आत्म चिन्तन करता हुआ ब्रह्मवर्चोसि आपो की रक्षा करता हुआ वह याज्ञिक बन रहा है। याग कर रहा है। वह अग्नि में अमृत को जानना चाहता है। यज्ञमान की संसार में एक ही कामना होती है कि नाना बाह्य जगत् के साकल्य को ला करके घृतमयी श्रद्धा को ले करके वह यज्ञशाला में आनन्द अग्नेय आपो को जानना चाहता है, वह कैसे जानता है? अपनी श्रद्धामयी घृत को आहुति दे करके और नाना साकल्यों में अमृत को जो साकल्य, जो वनस्पतियां आयुर्वेदाचार्यों के गृह में उनके आसन पर वह नृत करती हुई रुग्णों का विनाश कर देती है। इसी प्रकार यज्ञमान यह चाहता है कि मैं श्रद्धामयी घृत के द्वारा अग्नि में अमृत को जानना चाहता हूँ। मैं अग्नि के द्वारा अमृत को बखेरना चाहता हूँ। वह ब्रह्मवर्चोसि अपनी शुभ कामनाओं के साथ, शुभ संकल्प के साथ वेद के प्रकाश और ज्ञान के साथ में मुनिवरों! जब वह साकल्य का स्वाहा कहता है, वायु मण्डल में, अन्तरिक्ष में वह तरगें ऐसे गति करती है जैसे प्रातःकाल का सूर्य पृथ्वी पर आने के लिए लालायित होता है और वह प्रकाश देता है और वह पृथ्वी का शोधन करता है। इसी प्रकार यज्ञमान का वह जो शब्द है होता जनों का, ब्रह्मा के सहित स्वाहा कह करके तरंगित किया जा रहा है वह वायु मण्डल के अशुद्ध परमाणुओं को निगलने लगता है और वह परमाणु जब विशुद्ध रूप से गति करने लगता है तो उससे वायु मण्डल का निर्माण होता है।

मेरे पुत्र महानन्द जी ने अभी कुछ काल से पूर्व इन्होंने अपने शब्दों में उच्चारण किया था कि आधुनिक काल का जो वायुमण्डल है इस वायुमण्डल में दोषारोपण आ गया है। अनावृष्टि, अति वृष्टि का सदैव संदेह बना रहता है। इसके मूल में कोई वाक्य है। मेरे पुत्र ने वर्णन किया था कि इसके मूल में यज्ञमान, प्रत्येक गृह में जो दम्पति होते हैं वह अपने वायुमण्डल को पवित्र नहीं बनाते। मानो इसके मूल में उन्होंने एक वाक्य कहा बहुत प्रिय महत्व का वाक् था क्या मानो गृह में गृहपति गृह का निर्माण कर लेते हैं परन्तु उन गृहों में जो होना चाहिए, जो गृह में सात्विक वातावरण मानो उस गृहों में अमृत का निर्माण हो, वह गृहों में नहीं बनाया जा रहा है। प्रत्येक गृह का वायुमण्डल अशुद्धवाद में जब परणित होता है। तो यह जो परमात्मा का भव्य भवन है यह जो

मनुष्य मानव के लिए भव्य भवन का निर्माण किया है जिसमें चौबीस खम्भों वाला यह ब्रह्माण्ड क्या, इसमें प्राण के दस भाग बने हुए हैं, जिसमें वैज्ञानिक जन नृत्य करते रहते हैं एक एक वस्तु के ऊपर अनुसन्धान करते रहते हैं। यदि एक प्राण के दस विभाग नहीं होंगे तो वैज्ञानिक जन अपनी प्रसारण शक्ति से आकुञ्चन को, ध्रुवा, ऊर्ध्वा को जान नहीं पाएगा और वह वैज्ञानिक युग में प्रवेश नहीं कर सकेगा। परमपिता परमात्मा की आपोमयी जो यह धारा है, मानो एक एक वस्तु के नाना विभाजन हो रहे है। परमाणु वाद का विभाजन हो रहा है। परमाणुवाद के विभाजन में वह प्राण का विभाजन है। इन्द्रियों का जो विषय है एक एक विषय के दस दस विभाग हो रहे है। वह जो दस विभाग हैं एक हृदयरूपी प्रचण्ड अग्नि जो जागरूक हो रही है उस हृदय में वो तरंगे उत्पन्न हो रही हैं उसके नाना विभाजन हो रहे हैं। वहाँ मन है, बुद्धि है, चित्त है और अहंकार है। इसके भिन्न भिन्न प्रकार के विभाजन हो रहे हैं, वह जो विभाजन है, उन तरंगों से पञ्चमहाभूत बन करके रहते हैं यह चौबीस खम्बो वाला एक ब्रह्माण्ड कहलाता है। यह ब्रह्माण्ड भव्य जगत् विद्यमान है। इसमें दस प्राण हैं, दस वृत्तियां हैं और मुनिवरों! देखो, चित्रम् रथा अस्वेसां बुद्धिवाश्चा सम्भूतानि, अहंकारो अश्वनं देव ब्रव्हे चित्रं यह चित्त कहलाता है। यह परमात्मा का जो जगत् है यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उस परमपिता परमात्मा का चित्त है। वह चित्त कहलाता है। जैसे मानव का चित्त मानव के शरीर में विद्यमान है। इसी प्रकार बाह्य जो ब्रह्माण्ड है यह परमपिता परमात्मा का चित्त कहलाता है। यह जो चित्रण हो रहा है यह मानव का जो आहा है, मानव के चित्त का जो सम्बन्ध है, उस परमात्मा के चित्त से, समन्वय हो रहा है। परन्तु वह चित्त का समन्वय होते हुए अपने में आभायित हो रहा हैं सम्भविता देवे ब्रहे आपो वह आपो में रमण करने वाला यह ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है। इस ब्रह्माण्ड को हमें ऊँचा बनाना है। वैज्ञानिक जन, इस भवन के नीचे विद्यमान हो करके तरंग के ऊपर अनुसन्धान करते हैं।

कोई मैं नवीन वाक्य तुम्हें उच्चारण नहीं कर रहा हूँ। मानो देखो, दार्शनिक भी जो आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता है वह आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता एक एक वस्तु को ले करके अनुसन्धान कर रहे हैं। एक दार्शनिक यह विचार रहा है, एक आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता

उससे समन्वय चाहता है और कहता है कि प्राण कितना प्रीति कर रहा है। प्रत्येक प्राणी एक दूसरे में प्रीतिबद्ध हो रहे हैं। समय बद्ध हो रहे हैं। यह ऐसा क्यों हो रहा है। किसी भी योनि में प्रवेश करो कहो तुम्हें प्रीति और महानता चाहिए। परन्तु इस आत्मा का जो परम्परा से स्वाभाविक सम्बन्ध है इसका गुण ही प्रीति है। इसका गुण ही परमात्मा के समीप जाने के लिए लालायित रहता है। यह किसी भी योनि में हो परन्तु जिस समय वर्षा काल आता है, अग्नि प्रदीप्त हो रही है। अग्नि में सूक्ष्म योनियां आ करके उस अग्नि में अपने प्राणों को न्यौछावर कर रही है। उसके मूल में क्या है? ऋषि कहता है कि यह उस प्रकाश से वंचित्त हो गए हैं जो प्रकाश वास्तविक परमपिता परमात्मा का है। परन्तु परमात्मा का प्रकाश वह अग्नि में दृष्टिपात कर रहा है। तो वास्तविक प्रकाश न होता हुआ वह भी परमात्मा का प्रकाश किसी के अग्रणों में आभायित हो रहा है। परन्तु वही अपने प्राणों को न्यौछावर कर रहा है। यह क्यों कर रहा है? ऋषि विचारता है, आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता इसी को विचार करके आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता बन जाता है। आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता यह विचार रहा है कि अग्नि में प्राणों को न्यौछावर प्रेम से कर रहा है प्रीति से कर रहा है। मानो देखो, जैसे आपो में स्नेह होता है आपो में मिलन की आभा होती है। आपो में एक बिन्दु के निर्माण से प्रतिभा का जन्म होता है। इसी प्रकार उसमें प्राण शक्ति है। वह उस प्राण शक्ति को अपनी प्राण शक्ति से मिलान करना चाहता है। क्योंकि आनन्द की पिपास उसे लगी हुई है। तो प्रत्येक मानव के प्राणी के हृदय में जो आत्मा है, वह आत्मा स्नेह चाहती है, प्रीति चाहती है। स्नेह को पिपासा में आनन्द में लिए परणित हो रही है। वह आनन्द यहाँ प्राप्त नहीं हो रहा है। प्राणों को न्यौछावर कर रहा है। शरीर को उस प्रकाश में वह ऐसा प्रकाश है जो वास्तविक प्रकाश न होता हुआ उसमें अपनी योनियों को समाप्त कर देता है। तो यह कैसा विज्ञान का विषय, आनन्द का एक विषय है जो मानव को अपने में जानना चाहिए। तो इसलिए प्रत्येक प्राणी अपने में अनुसन्धान चाहता है। प्रीति चाहता है।

मुझे स्मरण है जब प्रवहाण, शिलभ्य और दालभ्य इत्यादि विद्यमान हो करके आत्मा

की चर्चा करने लगे, यह आत्मा तो अखरण्ड रहने वाली है। यह आत्मा तो शरीरों में वास कर रही है। आनंद के लिए एक यन्त्र का निर्माण प्रभु ने किया आत्मा के लिए। जैसे वेद के ऋषि ने कहा कि आत्मा का लोक क्या है? तो लोकों को चर्चाएं आयी। तो वेद ने इसका उत्तर दिया कि आत्मा का लोक पञ्च महाभूत है। आगे उच्चारण किया, इसका कर्म क्या है? तो वेदमन्त्र कहता है यागां ब्रह्मे व्रताः इस आत्मा का कर्म ही याग है। याग की मीमांसा करते हुए आचार्य कहता है जितना सुविचार होगा, सुविचारों को अग्नि के ऊपर हम प्रसारण करेंगे तो वायु मण्डल पवित्र बन जाएगा। जैसे माता अपने पुत्र को विचार देती है कि हे बालक! तू महान बन। हे बालक! तू मेरा नामोकरण ऊर्ध्वा में ले जा। हे बालक! तू मोक्ष को चल। तू संसार के मानो वैभव में अपने को न ले जा। जैसे माता मल्दालसा अपने पुत्रों! को कहा करती थी, हे आत्मा! शरीर में आने वाली आत्मा तू उषर्बुद्ध कहलाती है। तू बुद्धिमान है। अखरण्ड रहने वाली है और तेरा किसी भी काल में विनाश नहीं होता। तेरा कर्तव्य है तू आनन्द के लिए आयी है, आनन्द के लिए प्रभु की गोद में चल। इस संसार के वैभव में आनन्द तुझे प्राप्त नहीं होता। माता यह कहती है कि राष्ट्र प्राप्त हो जाए, वित्त प्राप्त हो जाए परन्तु आनन्द प्राप्त नहीं होता। आनन्द से तुम स्वर्ग को स्थापित कर सकते हो, मानो नाना सुगन्धि कर सकते हो परन्तु आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकते। तो माता जब यह कहा करती थी तो बालक उसी आभा को स्मरण करता हुआ ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। मेरे प्यारे! जब यह वार्त्ता प्रकट करते तो माता के विचार, उनके अंतःकरण में स्थापित थे। तो रेंगने वाले पृथ्वी पर सर्पराज और भी नाना योनियां जो हिंसक थीं, वह शान्त हो करके उनके विचार, उनके गम्भीर चिन्तन, परमात्मा की प्रतिभा को वह श्रवण करते रहते। जब वह श्रवण करते रहते तो वह आनन्दित होते रहेंगे।

देवर्षि नारद ने एक समय प्रवाहण से यह प्रश्न किया, कि महाराज! वह क्या कारण है जिस समय तुम याग करते हो प्रातःकाल में, तो यागां ब्रह्मे वाचस्प्रहे अस्तो तुम आत्म याग करते हो, बाह्य जगत के लिए भी, परन्तु यह जो रेंगने वाले प्राणी हैं, सर्पराज हैं और भी हैं वह तुम्हारे अंग संग भ्रमण करते रहते है। परन्तु अंग संग भ्रमण करने के

पश्चात् तुम्हारी उस वैदिक ध्वनि को, आत्मा की ध्वनि को वह श्रवण करते रहते है। परन्तु जब वह श्रवण करते हैं तो उस समय तुम्हें कैसा अनुभव होता है? तो प्रवाहण और शिलभ ने यह कहा, माता यह कहा करती थी, जिस समय लोरियों का पान करते थे माता कहती थी, यह आत्मा अखण्ड है, आत्मा का विनाश नहीं होता है। तुझे अग्नि भी प्रकाश में ले जाती है। अग्नि भी तुझे भस्म नहीं करती, जो संसार को भस्म कर देती है। आपो तेरे आंगन में आ करके, आपो से तेरा शरीर बनता है। आपो से ही गुथा हुआ शरीर है। यह भी तुझे नष्ट और अस्वत् नहीं कर सकता। माता जब यह कहा करती थी तो माता के वाक्य स्मरण है। माता के शब्द स्मरण है। माता जब कहती थी तो हमें अनुभव होता है कि यह सब आपो ही है। यह प्राणी भी आपो है, आपो का अभिप्राय यह है महतत्त्व की चेतनवत् एक सत्ता है। मानो यह आपो में रमण करने वाले है। आपो ही कहलाते हैं। और जब यह आपो हैं तो मानो यह अखण्ड रहने वाले हैं, हम भी अखण्ड रहने वाले हैं। इसके पश्चात् भी इनसे दूरिता और आत्मग्लानि हमारे में क्यों आ जाएं। यह आत्मा का लोक है। यह ऐसे लोक में हैं हम पञ्च महाभूतों के शरीर वाले लोक में है। हमारा कर्म याग है। याग करना ही हमारा कर्तव्य है। तो मानो देखो, जब यह वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो नारद मुनि मौन हो गए। नारद ने कहा यह माता का उपदेश है परन्तु तुम्हारा चिन्तन क्या है? उस समय महर्षि प्रवाहण ने बहुत ऊर्ध्वा एक शब्द कहा। उन्होंने यह कहा कि माता तो ममता है। वह एक दूसरे का मिलान करने वाली है। परन्तु देखो, उसका विचार और हमारा अपना चिन्तन कोई द्वितीय भाव में नहीं रहता। एकता में रमण कराता है। क्या सुन्दर शब्द ऋषि ने कहा। वह वाक्य मुझे जब स्मरण आता है तो उनके शब्दों में कितनी महानता थीं वह कहते हैं कि माता का जो शब्द है, तो माता वसुन्धरा है जिसके गर्भ में हम विद्यमान हैं आज भी हम विद्यमान हैं। उसके पश्चात् जब इस स्वरूप में शरीर नहीं था तब भी उसके गर्भ में और आज भी उसी के गर्भ में है। उसका तारतम्य दिया हुआ, पृथ्वी माता को हमने प्रदान कर दिया। माता के गर्भ में, प्रभु ने निर्माण किया। माता ने पृथ्वी को हमें प्रदान कर दिया। पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों को दे रही है। यह भी वसुन्धरा बन रही है। यह

नाना प्रकार की धारा प्रदान कर रही है। जब हम वैज्ञानिक बनते हैं,तो पृथ्वी के माता के गर्भ में प्रवेश करते हैं इसके गर्भ में हम, नाना प्रकार की धातुओं को जानने वाले बन करके हम वैज्ञानिक बन जाते हैं वही आपो में भ्रमण करने वाले जब हम इसके रजों में हम प्रवेश करते हैं उनमें आकुञ्चन, प्रसारण शक्ति को दृष्टिपात करके देखो, हम निर्माण कर लेते है। अणु और विज्ञान में रमण करने लगते हैं वहीं वसुन्धरा बन करके हम तो जिस भी आंगन में विद्यमान हैं वहीं वसुन्धरा है। याज्ञिक, यज्ञमान जब यज्ञशाला में विद्यमान होता है अपनी देवो से कहता है हम यज्ञशाला में विद्यमान हैं। यज्ञशाला का अभिप्राय यह कि हम यज्ञशाला में याग कर रहे हैं, यज्ञशाला का अभिप्राय यह है कि हम माता वसुन्धरा को गोद में हैं, यज्ञशाला का अभिप्राय यह है कि हम नाना साकल्य, नाना वनस्पतियों में हैं और स्वाहा कह करके आनन्द को प्राप्त होना चाहते हैं। हम आनन्द को उसमें जानना चाहते हैं इस प्रकार ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करने वाले विचार जब आभा में रमण करने वाले गतिशील बन जाते हैं तो वही आपो आ जाता है।

आपो का अभिप्राय क्या है, कि हम सब आपो हैं और आपो माता के गर्भ में रहता है। आपो वनस्पतियों में रहता है। वनस्पतियों से वही आपो माता के गर्भ में रहता है। उसी आपो से निर्माण आसन है। उसी आपो से वृत्ति है और वही आपो पिण्ड बन करके इस संसार रूपी जगत् में आ जाता है। वही आपो जब पिण्ड बन करके आता है, वही पिण्ड भिन्न भिन्न प्रकार की परिस्थितियों में परणित हो जाता है। कोई योगी बन रहा है। कोई वैद्यराज उन्हीं वनस्पतियों को, उस आपो की आभा में गति करने वाला अग्निष्टोम याग कर रहा है। अग्नि में अग्न्याधान करता हुआ, वह स्वाहा कह रहा है। मानव के शब्दों को वही आपो परमाणु बन करके महतत्त्व की आभा में रमण करना चाहता है। मेरे प्यारे! यह कैसा अमूल्य जगत् है? चिन्तन करने से प्रतीत होता है, यह कैसी आभा वाला ब्रह्माण्ड है? इसके ऊपर मानव परम्परागतों से अनुसन्धान कर रहा है, करता है, परम्परागतों से विचार करता है, परन्तु आपो ही दृष्टिपात आता है। आपो आपो में ही वह जगत् अभ्रोक कहलाता है। सम्भूक कहलाता है। वसुन्धरा की गोद में

ही स्वीकार करता है। मुनिवरों! देखो, यह अपने में अपने को दृष्टिपात करता हुआ महानत्ता की ज्योति को जानना चाहता है। आज का हमारा यह आपो सूक्त कह रहा है कि आपो ही इस ब्रह्माण्ड का पिण्ड बना रहा है। वेद का सूक्त कहता है कि पिण्ड ही ब्रह्माण्ड के रूप में परणित आ रहा है। तारामण्डलों का पिण्ड बना हुआ है। तारामण्डलों की माला बन रही है और माला से पिण्डमयी बन करके उन मनको को सूत्र में पिरो करके योगी और वैज्ञानिक अपने में धारण करना चाहता है। धारण कर रहा है तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! माला के मनको गणना में लाना चाहता है। परन्तु इतनी अथाह सुन्दर माला है बेटा! उस माला के मनके गणना में नहीं आ पाते। इतने विचित्र मनके हैं, इतना विचित्र आपो सूत्र हैं कि वह जिस सूत्र में वेद का मन्त्र पिरोया हुआ है। वेदमन्त्र में जो विज्ञान है वह पिरोया हुआ है। वेदमन्त्र में जो आध्यात्मिक विज्ञान है वह पिरोया हुआ है।

देव! तू कैसा अनपुम है? कैसा सूत्र है जिस एक सूत्र में यह ब्रह्माण्ड, एक एक लोक लोकान्तर, एक सूर्य में अनन्त सूर्य है, अनन्त एक जातीयता के नाना मनके हैं वह मनके एक सूत्र में पिरोएं हुए हैं। वह सूत्र क्या है? उसका नाम ही आपो है। वह आपोमयी बन करके वनसपतियों में रस दे रहा है। वनस्पतियों के पान करने वाला कुछ वायु में प्रवेश कर जाते है। कुछ अग्नि तपा करके वनस्पतियों में प्रवेश करा देती है। वही आपो रस बन करके, ममता के रूप में परणित हो करके भिन्न भिन्न रूपों में दृष्टिपात आता है। यह भी भिन्न भिन्न मनके हैं। परन्तु यह भी एक सूत्र में पिरोए हुए हैं। जब इस सूत्र के ऊपर तुम चर्चा करोगे, वेद में सूक्त आता है उस आभा में उसे सूक्त कहते हैं परन्तु और रूपों में उन्हें सूत्र कहते हैं, और सूत्र मनके बन जाते हैं और पिण्ड के रूप में परणित हो जाते हैं। सर्वत्र ब्रह्माण्ड मन के रूप में, सूत्र के रूप में दृष्टिपात आता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा करने नहीं जा रहा हूँ। आज का विचार हमारा क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आभा में रमण करते हुए, अपने का महान् बनाते हुए, बेटा! अपने को अनुसन्धान की वेदी पर विद्यमान हो करके एक स्थली पर

चिन्तन करने वाले बनें क्योंकि चिन्तन करना बहुत अनिवार्य है। मेरी प्यारी माता और पिता दोनों इन वाक्यों को विचार करके संतानोत्पत्ति आपो में रमण करने वाले कहलाते हैं। परन्तु इस आभा को जन्म देने वाले ऋषि मुनि होते हैं जिनका जीवन तपा हुआ होता है। ऋषि मुनियों को जीवन देने वाली माता वसुन्धरा होती है। माता वसुन्धरा को जीवन देने वाली चेतना होती है। और चेतना के सूत्र में संसार का ज्ञान और विज्ञान पिरोया हुआ है। आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना तुम्हें देने नहीं आया हूँ। आज का विचार यह हमारा अब समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो इन विचारों पर कुछ टिप्पणियां कर सकेंगे। आज का विचार क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, एक सूक्त और सूत्र दोनों को एक सूत्र में ला करके अपने को उस सूत्र में पिरो करके परमपिता परमात्मा के दर्शन कर सके।

यह है बेटा! आज का वाक्। अब समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम आपो सूक्त की चर्चा कर रहे थे। शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् देवं ब्रहा मां रेति वन्धना यशश्चां गतं रेवाः आभ्यां रुद्रा भविता मा गतं रथाः श्वंजना रेवं आभ्यां रुद्रा मां प्रावसो ओ३म् सर्वं रुद्रा आभ्यां रूद्रां ब्रह्मा अच्छा भगवन्! आनन्द मंगलं शान्ति। दिनांक 14 4 83 निवास स्थान : श्री महावीर प्रसाद जी सी. 3/9 माडल टाउन समय रात्रि : 8 30 बजे

२ 12 11 1983 पुष्प 52 महर्षि विभाण्डक और विश्वेश्रवा मुनि की आपोज्योति पर गोष्ठी

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्रवेदवाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुण गान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने गए हैं। जो मानव उसका वरण कर लेता है अथवा उसे वर लेता है, वह प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता

है। तो इसीलिए हमारा वेदमन्त्र कहता है, हे मानव! तू उसको अपना वरण बना, उसको वरने वाला बन, क्योंकि वह सर्वत्र विद्यमान है। संसार में कोई स्थली ऐसी नहीं है जहाँ वह देव न हो, मसुद्रों की कोई तरंगें ऐसी नहीं हैं जहाँ वे परमपिता परमात्मा विद्यमान न हों, पर्वतों की कोई भी गुफा ऐसी नहीं है जहाँ वह न हो, तो इसीलिए प्रत्येक मानव को इसमें गंभीरता से अध्ययन करना चाहिए कि जब वे परमपिता परमात्मा सर्वत्र विद्यमान हैं, तो हमारे लिए कौन सी स्थली ऐसी है जहाँ हम मिथ्यावाद में परणित हो जाएं। पाप कर्म करने के लिए तत्पर हो जाएं, क्योंकि वह न्यायकारी हैं, न्याय ठीक कहलाता है। एक मानव राजा न्यायालय में विद्यमान रहता है, परन्तु वह न्याय कर रहा है, बहुत सा पाप कर्म ऐसा है जो राजा से ओझल रहता है, क्योंकि वह अनभिज्ञ है। वे परमपिता परमात्मा तुम्हारे मनस्तत्व कर्मों की प्रतिभा को दृष्टिपात कर रहा है। जब कोई भी स्थली ऐसी नहीं है, जहाँ वह विद्यमान न हो, तो उसका न्याय भी विशाल है, उसके न्याय से कोई कर्म मानव का ओझल नहीं होता। तो इसीलिए परमपिता परमात्मा को जो मानव अपनावरणीय बना लेता है अथवा उसे वर लेता है, तो मुनिवरों! देखो, वह मानव महान् बन जाता है, वह पवित्र बन जाता है। इस संसार में नाना प्रकार के, नाना प्रकार की क्रियाओं में रमण करने वाला मानव स्वार्थ में परणित हो सकता है, परन्तु परमपिता परमात्मा ऐसा अमूल्य है ऐसा महान् है कि उसकी महानता प्रत्येक वस्तु में विद्यमान रहती है। तो इसीलिए हमें उस परमपिता परमात्मा को अपना वरुण बना लेना चाहिए, अथवा वर लेना चाहिए।

आज मैं तुम्हें विशेष विवेचना में ले जाना नहीं चाहता हूँ। आज का हमारा वेदपाठ में हमारे यहाँ आपो का वर्णन हो रहा था। हमारे यहाँ आपो नाम है संघात् का, संघात् का नाम ही आपो कहलाता है जैसे संगतिकरण है। प्रत्येक वस्तु बेटा! इस संसार में जिसका भी निर्माण होता है उसमें संगतिकरण हमें प्रायः दृष्टिपात आता है। कोई भी मानव का क्रियात्मक कर्म हो उसमें सर्वत्र संगतिकरण है। मुझे स्मरण आजा रहता है एक समय बेटा! महर्षि उद्दालक गोत्र में एक ऋशि हुए हैं विश्वेसर्वा। परन्तु विश्वेसर्वा एक समय आपोज्योंति में ध्यानावस्थित हो गए थे। आपो में ज्योंति का ध्यानावस्थित

हो करके उनके आश्रम में महर्षि विभाण्डक मुनि आ गए। विभाण्डक मुनि ने दृष्टिपात किया कि विश्वेसर्वा ने यज्ञशाला का निर्माण किया हुआ है और उसमें अब जल को प्रोक्षण कर रहे है। जल की धारा उसमें परणित कर रहे है। तो महर्षि विभाण्डक ने कहा, ऋषिवर यह क्या दृष्टिपात कर रहे हो? उन्होंने कहा कि प्रभ् मैं इसमें संधात् और इसमें संगतिकरण को दृष्टिपात कर रहा हूँ क्योंकि आपो को हमारे यहाँ संघात् कहते हैं। व्याकरा के आचार्यों ने इसको संघात् माना है, परन्तु इसी में संगतिकरण दृष्टिपात कर रहा हूँ। जैसे माता भोजनालय में नानाप्रकार के रसों को ले करे रसास्वादन कर देती है, तो भिन्न भिन्न प्रकार के रसों का वह संगतिकरण कर देती है। जब संगतिकरणकर देती है तो भोजनालय को अग्नि में तपा देती है, अग्नि उसे तपा देती है तो वह संगतिकरण बन जाता है। जैसे यज्ञशाला में यज्ञमान विद्यमान हो करे अपनी देवी ेस कहता है, हे देवी! आओ प्रातःकालीन हम संगतिकरण करें। वह संगति करण करने के लिए यज्ञ में, यज्ञशाला में, अग्नि में, अग्नि के मुख में साकल्य अर्पित करने लगते है। वह साकल्य भी संगतिकरा है। कौन सी सामग्री, कौन सा साकल्य, कौन सा द्रव्य कितनी मात्रा में उनका संगतिकरण होना चाहिए उस संगतिकरण के द्वारा जब अग्नि में उस संगतिकरण अग्नि में प्रवेश किया जाता है तो अग्नि उसको भव्य सुंदर बना देती है, उसको व्यापक सूक्ष्म रूप बना देती है। उसको परमाणु बना देती है वही अग्नि की संगतिकरण हो करके वह शब्द द्यौलोक में प्रवेश करता हैं ऋषि क्या कहता है? ऋषि कहता है कि मैं संघात् इस आपो का नाम ही जल है। नाम ही क्या संघत् कहलाया जाता है। इसको मानव जब पान करता है तो अमृतमयी जान करके पान करता है, क्योंकि यह प्राणवर्द्धक है। यह प्राणसूत्रों से संघात् कटिबद्ध हो रहा है, विश्वेसर्वा कहता है। मैंने कहीं वेदों में यह अध्ययन किया है मातास्वर्णा वर्णतः आपो हिरण्यमं बिन्दु जब शिशु माता के गर्भ मेंप्रवेश करता है तो यह आपो जो ज्योंति है, जो जल है, यही यज्ञशाला में होता अमृत जान करके पान करता है। वास्तव में अमृत का वह प्राण है। जब बालक माता के गर्भस्थल में होता है तो वहाँ कैसे वास करता है शिशु? अग्नि, अग्नि की धाराओं में जल विद्यमान होता है माता के गर्भस्थल में जब वेद

के ऋषि ने एक प्रश्न कियाबाल कारडात् वाल्वती वृतो शिशुः वाचन्नमो वाता व्रतंवृही विश्वासाः वेद का मन्त्र कहता है, वेद के मन्त्र ने एक प्रश्न किया कि बालक जब माता के गर्भस्थल में शिशु रहता है तो बालक का ओढ़न क्या है और उसका आसन क्या है? तो मुनिवरों! देखो, उसका आश्रित क्या है? ऋशि इसका भावार्थ करता हुआ कहता है कि माता के गर्भस्थल में हम जैसे शिशु होते हैं, तो उस बालक को ओढ़न भी आपो ज्योंति कहलाता है। उसको जल कहते हैं, जल ही उसका ओढ़न होता है जल ही उसका आसन बना हुआ होता है, जल ही उसके पांसे बने हुए होते हैं। माता के गर्भस्थल में शिश् रहता है, परन्तु ओढ़न भी आपो ज्योति है, नीचे का आसन भी वही बना हुआ है, पांसे भी जल बने हुए हैं। माता के गर्भस्थल में वह आपो ही तो रक्षा कर रहा है। मेरे प्यारे! प्रभु तू कितना विज्ञानमयी माना गया है। जल के आंगन में रहने वाला वह बालक माता के गर्भस्थल में निर्माण करने वाला प्रभु है, निर्माण कर रहा है 727210202 (बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ दो) (नाड़ियों) नाड़ियों का निर्माण वह शिशु के आभा में उसका निर्माण करने वाला वह विश्वकर्मा है जो सर्वत्र विद्यमान हे।

हे मां! तेरे वह प्रभु कितना निकट रहता है। तेरे गर्भ में निर्माण कर रहा है। परन्तु माता को कोई प्रतीत नहीं होता कौन निर्माण कर रहा है, कौन निर्माणवेत्ता है? बाल्य बालिका भी प्रतीत नहीं होता। कैसा मेरा प्यारा प्रभु विज्ञान मेंरत रहने वाला है। देखो, तो कहीं तारामण्डलों की माला बनी हुई है, उसका बिन्दु बहारन्ध्र में परणित हो जाता है। कहीं बुद्धि का निर्माण हो रहा है, बुद्धि भी कितने प्रकार की है, जैसे बुद्धि, मेघा, ऋतंभरा, प्रजा चतुश्रप्रकार की बुद्धि का निर्माण होता रहता है। उसी आपों में विद्यमान होने वाले शिशु के द्वारा उसका तारतम्य में लगा हुआ बाह्य जगत् से, उसका तारतम्य में लगा हुआ है ज्ञान और प्रकाश से। वह प्रकाश में ही अपने में दृष्टिपात करता रहता है, निहारता रहता है। वह प्रभु निर्माण करने वाला है, निर्माण हो रहा है, मेरी भोली मां उस निर्माणवेत्ता से वंचित्त रहती है। वह मेरा प्यारा प्रभु कितना विज्ञान में रत्त रहता है। मन की चार दशा है मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। चित्त और अहंकार यह मन की चार

दशा हैचारों दशा, चारों अवस्था, चार अवस्था कहलाती है जागृत, स्वप्न और सुषुप्ती और एक तुर्या कहलाती है। यह चार अवस्थाओं का निर्माण उसके स्वाभाविक गुणों के साथ परणित होता रहता हैं मैं कहाँ चला गया हूँ? प्रभु की महती का वर्णन कर रहा हूँ। प्रभु कितना विज्ञान में रत्त रहने वाला है। मानव का निर्माण कर रहा है। वही बालक माता के गर्भ से जब पृथक् होता है, वही बालक विद्यालयों में प्रवेश हो करके विज्ञान की उड़ान उड़ने लगता है। वही लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ने लगता है। कोई आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश हो जाता है, परन्तु निर्माणवेत्ता वहाँ भी प्रभ्ु ही है, क्योंकि बुद्धि में जो नाना प्रकार के तत्त्व विद्यमान हैं। जब ब्रह्मारन्ध्र को प्राणों की धुकधुकी के साथ जबप्राण की गति ब्रह्मारन्ध्र की गति, प्राणों के बीच में गति करती है, तो यह नाना प्रकार का ब्रह्माण्ड है लोक लोकान्तरों वाला, यह जो नाना निहारिकाओं वाला यह जगत् है, योगी के लिए खिलवाड़ बन जाता है। क्योंकि देखो, उसकी मेघा में ही बुद्धि जागरुक हो जाती है। तो ऋषि विभाण्डक ने विश्वेसर्वा से पूछा तो उन्होंने कहा प्रभु! में संघात् कर रहा हूँ, मैं इस आपो ज्योति में प्रभु का दर्शन कर रहा हूँ। क्योंकि यही तो रक्षार्थ के लिए रक्षा करने वाला है, अन्न और प्राण में, अन्न और जल में दोनों ही तो प्रतिभा मुझे दृष्टिपात आती है। एक अन्नादि है तो यह प्राण वर्द्धक जल है। मानव को जल, अन्न प्राप्त होता है तो प्राण उसका सुचारू रूप से गति करता है और जब अन्न है जल नहीं है तो जल के बिना मानव का प्राण चला जाता है। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि आपोमयी जो ज्योंति जल हैयह अमृत को बहाने वाला है, यह कृषि को, कृषक की भूमि को पवित्र बना करके आपो में परणित कर देता है।

जैसे मानव का शरीर है, जिस अंग से प्राण चला जाता है वही शरीर का भाग निष्क्रिय बन जाता है। तो प्राण शक्ति को लाने के लिए आज हमें पुनः से प्राण की उपासना करनी हैं उस आपो में ज्योति बन करके रहता है प्राण, उसकी उपासना करनी है, क्योंकि उसकी उपासना करने से हमारे जीवन में हमारी मानवीयधारा में पुनः से प्राण का सञ्चार हो जाता है। जिस अंग से प्राण चला जाता है वह प्राण निष्क्रिय, शरीर निष्क्रिय बन जाता है, उसका ेक्रिया में लाने के लिए हमें आश्रय लेना होगा। नाना

प्रकार के उस प्राण सूत्र को पुनः से अपने में धारण करना होगा। महाराजा विश्वेसर्वा की महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज से यह चर्चा हो रही थी। इस चर्चा को होते हुए यज्ञ में जब यज्ञमान यज्ञ करता है, यज्ञमान यज्ञ में परणित होता है, तो वह आचमन करता है। तीनों की आभा में आचमन करता हुआ वह कहता है कि मेरा ओढ़त भी यह जल ही है और मेरा आसन भी जल ही बना हुआ है। जहाँ जल के परमाणु नहीं होते, वहाँ मैं स्वांस भी नहीं ले सकता, वहाँ मेरा यह प्राण निष्क्रिय बन जाता है। यह तीन आचमन इसलिए करता है। यह तीन प्रकार के ताप मानव के द्वारा है, तीन प्रकार के गुण हैं मानव के द्वारा रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण वह कैसे आचमन करने वाला कि मेरे तीनों गुणों में सामन्यता रहनी चाहिए। इनमें देखो, रजोगुण, तमोगुण बलवती नहो जाए, इससे मेरे जीवन का ह्रास हो जाए। तो मैं विशेष विवेचना न देता हुआ केवल यह उच्चारा कर रहा हूँ कि आपोमयी ज्योति का दिग्दर्शन करना चाहिए। जब हम संगतिकरण करने लगते हैं, उस संगतिकरण में ही जीवन है, संगतिकरण में ही मानवता की ज्योति विद्यमान रहती है, जिसके ऊपर हमारे यहाँ प्राण की चिकित्सा वालों ने मानव चिकित्सा का प्रारम्भ किया था। प्राण के माध्यम से मानव अपने में महान् बनता हुआ ब्रह्मवर्चोसि बन करके, ब्रह्मचरिष्यामि बन करके मृत्यु को विजय करने वाले ब्रह्मवेत्ता हुए हैं।

मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था महर्षि याज्ञवल्क्य मुनिमहारजा जब वह तप करने लगे तो उन्होंने तीन शब्दों की विवेचना की। ब्रह्मो वाचाः उन्होंने कहा है कि ब्रह्मचारी कौन है? ब्राह्मण्ए कौन है? ब्रह्मवर्चोसि कौन है? यह प्रश्न करते हुए उन्होंने यह कहा कि ब्राह्मण वह है जो कण कण में ब्रह्म को दृष्टिपात करता है। एक एक वह है जो कण कण में ब्रह्म को दृष्टिपात करता है। एक एक कण कण में जो ब्रह्म को दृष्टिपात करता है वह ब्राह्मण कहलाता है। परन्तु देखो, जो प्रत्येक श्वांस के द्वारा ब्रह्म को अपने में स्मरण करता है वह ब्रह्मचारी कहलाता है। ब्रह्मवर्चो ब्रह्मवाचाः वेद के ऋषियों ने कहा है, ब्रह्मचर्य के दो ही शब्द कहलाते हैं, एक ब्रह्म है तो दूसरा चर्य है। ब्रह्म नाम परमपिता परमात्मा का है और चर्य नाम प्रकृति का है। दोनों का समन्वय हो करके सृष्टि्र का प्रादुर्भाव होता है, दोनों का समन्वय हो करके संसार की रचना होती

है, दोनों का समन्वय हो करके संगतिकरण हो करके मानव बलवती बनता है। बलग्रहण रुद्र भागाः ब्रह्मवर्चोसि का हमें सदैव पालन करना है, ब्रह्मबर्चोसी को जानना है। ब्रह्म को जानना है, जो इस संसार में कण कण में व्याप्त हो रहा है। प्रत्येक मानव साधना के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहता है, साधना में रत्त रहना चाहता है, तो साधना का केवल एक मूल मन्त्र है। साधना एक मूल में जयोंति है। हमारे यहाँ ब्रह्मवर्चोसि बनने वाला ब्रह्मचारी अपने में प्रत्येक स्वांस सूत्र को ओइम् रूपी धागे में जब पिरो देता है, ओइम् रूपी धागे में पिरो करके जब उसकी माला बना करके गहना बना करके वह अपने में धारण कर लेता है, तो वह ब्रह्मचारी बन जाता है। ब्रह्मचरिष्यामि गतो ब्रह्मनालाप लोकाः एक एक वाक्य, एक एक प्रतिभा, एक एक स्वांस की गति ब्रह्मसूत्र में पिरोई हुई हैं जैसे वेद के मन्त्र हैं, वेद की ऋचाएं हैं, वेद की ऋचाएं प्रारम्भ में उनका उच्चरण किया जाता है। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही, ओइम् सूत्र में अपने को पिरोया हुआ स्वीकार करता है। जैसे ओइम् का उच्चारण हुआ, उसके पश्चात् वेद की ऋचा का, ऋचा का वर्णन होता है। उस ऋचा में ज्ञान और विज्ञान है, उसका वर्णन होता है। जब उसका वर्णन होता है तो वरणीय बनाने के पश्चात् वह माला बन गई है। प्रत्येक वेद का मन्त्र ओइम् रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है क्योंकि ओइम् सूत्र है और ऋचा ज्ञान और विज्ञान है। ओइम् रूपी सूत्र में कटिबद्ध हो करके प्रत्येक संसार का ज्ञान और विज्ञान ओइम् रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है।

तो मेरे पुत्रों! की चर्चा विशेषता में तुम्हें नही करा रहा हूँ। विचारविनिमय केवल यह है कि प्रत्येक मानव को सूत्र के ऊपर विचार विनिमय करना है, क्योंकि हमारा जीवन भी एक सूत्र में पिरोया हुआ है। यह सूत्र क्या है? मनके क्या है? जो सूत्र में पिरोएं हुए हैं। मानव जब एक एक इन्द्रिय के ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ करता है तो प्रत्येक इन्द्रि किसी का मन बने हुए हैं, किसी सूत्र में पिरोई हुई हैं। उस सूत्र को हमें चिन्तन में लाना चाहिए, प्रत्येक मानव उस सूत्र को चिन्तन में लाने का प्रयास करता है। तो याज्ञिक बन करके महामना देव की महिमा का गुणगान गाने लगता है। वह सूत्र क्या है? प्रत्येक इन्द्रि किसी सूत्र में पिरोई है, किसी देवता से उसका समन्वय रहता है।

जैसे मानव के नेत्र हैं उसका देवता सूर्य कहलाता है। परन्तु नेत्रों की प्रतिभा चन्द्रमा अमूल्य देवता कहलाता है। अग्नि भी नेत्रों का अमूल्य देवता कहलाता है। तारामण्डलों से गुथा हुआ इन्द्रिय का प्रभाव रहता है। शब्द अन्तरिक्ष से गुथा हुआ रहता है, प्रत्येक इन्द्रिय अपनी अपनी धारा में पिरोई हुई है। श्रोत्रों का देवता दिशा कहलाती है, नेत्रों का देवता सूर्य कहलाता है, और प्राण का देवता वायु कहलाता है, गुरूतव का देवता पृथ्वी कहलाती है। परन्तु अपनी अपनी देवतव को प्राप्त हो करके इनका कोई सूत्र भी तो होगा। जो आत्म सूत्र है, सूत्र में पिरोएं हुए हैं जब आत्म तत्त्व इस मानव शरीर से निकल जाता है तो अग्नि उससे पृथक् हो जाती है शरीर से। दिशायें नहीं रहतीं, नेत्रों में ज्योति चली गई, सूर्य नहीं रहा। वह आत्मा ही सूत्र बना हुआ था इन सभी का, नाना प्रकार के लोक लोकांतरों का सूत्र बना हुआ था। एक समय मुझे स्मरण है महर्षि उद्दालक गोत्र में समर्पणाननद ऋषि हुए हैं। जब समर्पेतु ऋषि एक समय अनुसन्धान कररहे थे, वह अनुसन्धान करते हुए अपनी विज्ञानशाला में तारामंडलों की गणना कर रहे थे। एक निहारिका उन्हें दृष्टिपात आने लगीं उस निहारिका के मंडलों को दृष्टिपात करने लगे तो जब वह मंडलों में रमण करने लगे तो मंडलों में रमण करते करते आकाश में गंगा के नाना मंडलों की गणना करते करते उनका प्राणान्त हो गया। आत्मा शरीर से निकल गयातो वह गणना अधूरेपन में चली गई। अरे, वह सूत्र कहाँ चला गया, जिस सूत्र से वह गणना कर रहे थे, जिस आशा से वह गणना कर रहे थे, वह सूत्र कहाँ चला गया। वह सूत्र तो आत्मा था, वह सूत्र तो आत्मा का शरीर में कहाँ चला गया? जिससे वह ज्ञान में ला रहा था यह जो शरीर है यह तो जड़वत्रह गया। इसमें तो वह सत्ता नहीं है जिसेस लां की गणना हो रही थीं वह सत्ता समाप्त हो गई है। तो उस आभा में रमण करने वाला मानव अपने में सूत्रित बन करके, वह आत्मा केवल्य बन करके, चित्त के मण्डल सूत्र को ले करके जन्म जन्मान्तरों का प्रतीक बन गया था। ता ेयह कैसी विचित्र आभा है। वह उसी में शानत हो गया।

यह कोई न कोई सूत्र ऐसा है जो मुनिवरों! देखो, इसमें पिरोया हुआ है। एक महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज के महापिता थे जिनका नमा सैनकेतु ऋषि महाराज था। सैनकेतु

ऋषि महाराज एक समय चित्त के ऊपर अध्ययन कर रहे थेयह चित्त क्या है? जिनमें जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान रहते हैं। वह पिचासी वर्ष के लिए मौन हो गएं और मौन हो करे वह चित्त के मण्डल को जान गएं कि चित्त कहते हं जिनमें संस्कार विद्यमान होते हैं और संस्कारो से जब विहीन मानव का चित्त मण्डल बन जाता है तो उस समय मोक्ष प्राप्त होता है। यदि मानव चित्त में कोई संस्कार ही नहीं रहेंगे, केवल्य बन जाएगा, चित्त का मण्डल ही समाप्त हो गया है, तो चित्त के मण्डल के समाप्त होने पर आत्मा मोक्ष के द्वार परचला गया परमात्मा की आभा में परिणित हो गया है। जैसे अग्नि यज्ञशाला में प्रकाशित हो रही है। अग्नि यज्ञशाला में ऊर्ध्वामुख को ले करे विचार आता है। कि अग्नि का ऊर्ध्वा मुख क्यों है? यह सप्त जिह्वा वाली अग्नि इसका ऊर्ध्वामुख इसलिए है क्योंकि उसका सखा ऊर्ध्वा में विद्यमान रहता है। ऊर्ध्वा में कौन है? देखो, प्रकाश है, वह द्यौ कहलाता है, वह सूर्य है, सूर्य की किरण उस अग्नि को अपने में धारा कर लेती है। उसका द्योमयी मूर्ध्वा कहाता है तो मुनिवरों! देखो, इसीलिए आत्मा अपने आनंद के लिए वह चित्त के मण्डल को जानना चाहता है। प्रत्येक मानव जाति चित्त के मण्डल में प्रवेश करता है तो अपने में मौन हो जाता है। विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो, ऋषि यह चिन्तन करता हुआ मोक्ष को प्राप्त हो गया।

मैं तुम्हें विचार गंभीर देना नहीं चाहता हूँ। केवल विचार विनिमय यह चल रहा था कि महर्षि विश्वसर्वा और महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का दोनों का सम्वाद चल रहा था। वह ईर्ष्या को ज्योंति में संसार की ओर आभा की दृष्टि में अपने को दृष्टिपात करना चाहते थे। उनके मनों की यह कामना थी कि आपोमयी ज्योति है यह प्राण का सूत्र कहलाता है, प्राण सूत्र में पिरोया हुआ यह आपो ज्योति कहलाता है। जिसके ऊपर इसको पान करने से मानव शान्ति को प्राप्त होता है। संगतिकरण करन ेवो गृह का निर्माण करते हैं, इन्हीं का संगतिकरण करते हुए याज्यिक यज्ञ करते हैं, संगतिकारण को करने वाले इन्द्रियों का विशेष साकल्प बना करके हृदयरूपी यज्ञशाला में जब याग करते हैं ता ेवह योगी बन जाते हैं। वह संगतिकरण हो रहा है, आपोमयी ज्योति का संगतिकरण है। प्रातःकालीन पति पत्नी अपने आसन से पृथक् होते हैं। परन्तु वह ब्रह्मयज्ञ

करते हैं, ब्रह्म का चिन्तन करते हैं, ब्रह्म की सृष्टि को निहारते रहते हैं ब्रह्म क्या है? ब्रह्म की आभा क्या है? तो मुनिवरों! ब्रह्म को निहारते निहारते वह ब्रह्मयाग करते हैं, ब्रह्मयज्ञ करते करते अपने को ब्रह्म में, ब्रह्म को अपने में जब दृष्टिपात करने लगते हैं कि ब्रह्म तो हम में विद्यमान हैं और हम ब्रह्म में विमान हैं या हम माता वसुन्धरा की गोद में हैं और वसुन्धरा से वसुन्धरा के द्वारा वसुन्धरा की आभा में हम निहित हो रहे हैं। ता ेउस समय उसका ब्रह्मयज्ञ भी सिद्ध हो जाता है औरवह एक दूसरे विचारों में संगतिकरण हो रहा है। महर्षि विश्वेसर्वा ने कहा कि प्रभु मैं याग ब्रह्मवाचा देवाः यागां ब्रह्मलोकाम् ब्रहस्तु व्यापं ब्रह्मलोकाम् बर्तोतिऽस्तो हो ब्रह्मयागाऽहम् नाना प्रकार के याग ब्रह्मयज्ञ करते हैं हम देवयाग करते हैं, अग्नि के मुख में साकल्य प्रदान करते रहते हैं, वही अग्नि सूक्ष्म बनाकरके हमें वृष्टि के रूप में परणित कर देती हैं उसको हम जान करके अपने में आध्यात्मिक यज्ञ में परणित हो जाए।

विचार विनिमय क्या है? आज मैं तुम्हें बिखरे हुए विचारों को, बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करता हुआ एक माला के सूत्र में तुम्हें पुष्पों को पिरोना चाहता हूँ और वह पिरोना क्या है? आज मैं ब्रह्मवर्चोसि ब्रह्मावाचा अपने में महान् बनने के लिए, परमात्मा को अपना बरणीय बनाने के लिए हम सदैव तत्पर हो जाएं, क्योंकि वह हमारा वरणीय देव है, वह शिव कहलाता है, वह न्याय करता है। वह ब्रह्म कहलाता है, उत्पत्ति का मूलक कहलाता है, वह शोधन करने वाला विष्णु कहलाता है, क्योंकि वह पालन करता है। ब्रह्मा उत्पत्ति में तमोगुण, रजोगुण में शिव है और सतोगुण में देखो, विष्णु माना गया है। जब मैं माता के द्वार पर जाता हूँ तो माता में तीनों गुण सामान्यताएं है। सतोगुण में वह बालक का पालन कर रही है। तमोगुण में उत्पत्ति का मूलक बनी हुई हैं रजोगुण में शासन कर रही है। मेरे पुत्रों! पालन भी शासन भी और वह उत्पत्ति का मूलक न्यायप्रवर्तो देवाः तीनों गुण उसमें दृष्टिपात आ रहे हैं हे माता तू पालन करने वाली विष्णु है। परमात्मा का नमा भी विष्सा है क्रूंकि वह पालन करने वाला है। ध्रुवा में रहने वाला है क्योंकि वह पालन करने वाला सतमयी कहलाता है। सतोगुण में पालन है, रजोगुण में शासन हे और तमोगुण में मेरे पुत्रों! देखो, उत्पत्ति के मूल बने हुए हैं।

विचार विनिमय क्या? एक दूसरे में सत्य की प्रतिभा दृष्टिपात आ रही है। यह कैसी विचित्रता है प्रभु की। रजोगुण में भी सत्यता है और तमोगुण में भी सत्यता है क्योंकि सत्यता के आधार पर तीनों गुण अपनी अपनी आभा में गति कर रहे हैं।

वाह रे मेरे प्यारे! प्रभु तू कितना विज्ञानमयी है? तू एक वस्तु में एक दूसरे के मूल को नष्ट करना नहीं चाहता। अपने अपने गुण अपनी अपनी प्रतिभा रत्त हो रहे है। मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ, मैं व्याख्याता नहीं हूँ, केवल तुम्हें यह परिचय देने क लिए आया हूँ कि आपोमयी जयोंति के ऊपर हमें विचार विनिमय करना चाहिए। प्रत्येक मानव को आपोमयी ज्योति का अध्ययन करना चाहिए। क्योंकि आपोमयी ज्योंति हमारा आसन बना हुआ है, वह हमारा ओढ़न है, वही हमारे पांसे बने हुए हैं। उसी से हमारा उत्पत्ति का मूल कारण बना हुआ है। तो हम शिशु आपो में रमण करने वाले हैं, अपोमयी रत्त रहने वाला है। महर्षि विश्वेसर्वा ने विभाण्डक मुनि महाराज से कहा कि प्रभु मैं जल को आपो को प्रोक्षण कर रहा हूँ, मैं दृष्टिपात करना चाहता हूँ कि मेरा मोक्ष कैसे हो, मैं मोंक्ष के द्वार पर जाना चाहता हूँ। परन्तु इतना मेरे द्वारा यह द्रव्य हे मैं सर्वत्र द्रव्य को याग में परणित करना चाहता हूँ। क्योंकि याग से ही मानव का कल्याण होता है। जितना संसार में शुभ कर्म हैं, जितना भी आत्मीय कर्म है, उस सर्वत्र का नाम देखो, याग माना गया है। एक वह देखो, याग के रूप में बन जाते हैं, एक भौतिक याग बन जाता है, एक आध्यात्मिक याग बन जाता है। मानव इन्द्रियों का साकल्प एकत्रित करके उसको अहं आंतरिक जगत् में हृदयरूपी यज्ञशाला में आहुति देते हैं, तो आध्यात्मिक याग बन गया है। उसको बाह्य अग्नि में प्रवेश करते हैं। साकल्व को नाना प्रकार के द्रव्य को वह भौतिक याग बन करके द्रव्य का शोधन कर देता हैं। गृह के परमाणुवाद का शोधन कर देता है, वायुमण्डल को पवित्र बना देता है। राजा अश्वमेध यज्ञ करता है, तो राजा के राष्ट्र को पवित्र बना देता है। राज में रहने वाली प्रजा एक महान् कर्म और क्रिया कलाप में परणित हो जाती हे और हम इन्द्रियों के साकल्य को अंतरात्मा हत करने लगते हैं, प्रहूत करने लगते हैं तो आध्यात्मिक याग हो करके हम आत्मा के उस अंधकार को अपने से दूरी कर देते हैं, क्योंकि प्रभु के राष्ट्र

में रात्री नहीं होती। जब प्रभु के राष्ट्र में रात्री नहीं होती, तो वहाँ अंधकार भी नहीं होता। जहाँ अंधकार नहीं होता, वहाँ आलस्य और प्रमाद भी नहीं होता। जहाँ आलस्य और प्रमाद नहीं होता वहाँ अंधकार नहीं होता, जहाँ अंधकार नहीं होता वहाँ सदैव प्रकाश रहता है। वह प्रभु का राष्ट्र कहलाता है।

आज का हमारा वाक् यह कि हम परमपिता की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए परमपिता की महती को जान करके उसे अपना वरणीय बना करे हम इस संसार से पार होना चाहते हैं। अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारे ऋषिमुनि परम्परागतों से अनुसन्धान करते रहे हैं। कहीं आपो के ऊपर, कहीं अग्नि के ऊपर, कहीं ज्योतिमयी दृष्टिपात करने वाले सूत्र के ऊपर चिन्तन होता रहा है। वह ओइम् रूपी सूत्र है कहीं वेद की ऋचाओं के ऊपर अनुसन्धान होता रहा है, वेद में जितना ज्ञान हे विज्ञान है वह ओइम् रूपी सूत्र में पिरो दिया है। वही वही सूत्र में देखो, आपोमयी ज्योति पिरो दी हे उसमें ज्योति का प्रादुर्भाव होता है, ज्योतिमयी दृष्टिपात करने वाला कहीं माता के गर्भ को उस सूत्र से पिरो दिया है। उस मानव शिशु कसे पिरो करके उस शिशु को देवताओं से पिरो दिया और देवता उस सूत्र में पिरोने से वह ओइम् रूपी सूत्र में सर्वत्र पिरोया हुआ है। मुनिवरों! देखो, प्रभु को कैसी विचित्रता है जिसके ऊपर हमें बहुत गंभीरता से इन अंतस्थलियों पर विद्यमान हो करके, हमें अध्ययन करना है। अध्ययन करना ही हमारा मौलिक कर्त्तव्य है, क्योंकि बिना अध्ययन के मानव अपना स्वतः अध्ययन नहीं कर सकतां जब मानव अपना स्वतः अध्ययन कर लेता है कि मैं क्या हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ, कौन हूँ परन्तु मेरा निर्माण कैसे हुआ है, कौन निर्माण देता है। आत्मा क्या है, प्राण सूत्र क्या है, जब तक इसका स्वतः अध्ययन नहीं होता, तब तक मानव अपने में महानृ नहीं बनता। आज का हमारा यह वाक् क्या कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए, उसको अपना वरणीय बना करके उसी सूत्र में हम अपने को पिरोया हुआ स्वीकार करें। यह आज का वाक् अब हमारा समाप्त। अब वेदों का पठन पाठन होगा। स्थान सेठ ओंकारनाथ मोदी नगर, समय रात्री

6 बजे

३ 07 01 1984 पुष्प 53 गोमेध याग का विवेचन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रें का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण गान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सर्वत्र है। संसार की कोई स्थली ऐसी नहीं है जहाँ वे परमपिता परमात्मा व्याप्त नहीं है। क्योंकि जितना भी यह जगत् हमें क्रियाशील में दृष्टिपात आ रहा है यह उस महान् मेरे प्रभु को एक महानता है अथवा एक प्रतिभा है, जिस प्रतिभा के ऊपर प्रत्येक वेदमन्त्र हमें कोई न कोई प्रेरणा देता रहता है। क्योंकि संसार में जितना भी मानव है अथवा दर्शन है वह सर्वत्र कोई न कोई प्रेरणा का एक स्रोत माना गया है जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से कोई न कोई उड़ान उड़ता रहा है। उड़ान उड़ने वालों में नाना ऋषि हुए हैं जिन्होंने विचित्र से विचित्र उड़ाने उड़ी हैं।

परन्तु जैसा आज का हमारा वेदमन्त्र हमें कोई प्रेरणा दे रहा है, वेदमन्त्र कह रहा है गो रसिका अमृताम् देव भविताः आज का हमारा वेदमन्त्र गो सूक्त के ऊपर कुछ विवेचना कर रहा है क्योंकि हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के वेदों में सूत्र आते रहे हैं। जैसे गो मेघ के सूक्तों का पठन पाठन प्रायः होता रहता है। इससे पूर्व काल में हमने कृष्णा सूक्त, कहीं शिव सूक्त माने गए हैं। इन सूक्तों की विवेचना भी होती रहती है परन्तु आज का हमारावेद यह जो पठन पाठन का क्रिया कलाप है वह हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है जिस प्रेरणा के ऊपर मानव परम्परागतों से ही, अपनी मानवीयता में निहित रहा है। आज का वेदमन्त्र कह रहा थागौ रसिता। हमारे वैदिक साहित्य में गो के नाना पर्यायवाची शब्दों की विवेचना होती रहती है क्योंकि गो नाम हमारे यहाँ एक पशु को माना है। परन्तु पशु के भी भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गए हैं जैसे हमारे यहाँ गो नाम का पशु है, पशु हमारे यहाँ ब्रह्म वर्चोसि जो विद्यालय में ब्रह्मचारी जब प्रवेश करता है तो

उसे भी गो कहा जाता है। पशु के तुल्य कहा जाता है। आचार्य जब गो मेघ याग कर लेता है तो वह मेघ में ब्रह्मचारी को परणित करता हुआ प्रकाश में लाता है, पशु को वह महान् प्रकाश में लाता है। पशु का अभिप्राय है जो अज्ञान है, जो प्रकाश में नहीं है।

हमारे यहाँ गो नाम जैसे पशु को माना है वह कामधेनु के रूप में भी परणित की जाती है। परन्तु गो नाम हमारे यहाँ इन्द्रियों को भीमाना है। जब बाल्यकाल होता है तो प्रत्येक इन्द्रिय के सम्बन्ध में कोई मानव नहीं जानता। क्योंकि जब इन्द्रियों का समावेश अपने में मानव परणित कर देता है, प्रत्येक इन्द्रिय के विषय में जान लेता है उसके क्रिया कलाप उसमें ज्ञान और विज्ञान है तो वह मानव मेधयाग करता है। गो रसिता मेधाम ब्रह्म वाचाः वह अपने में परणित कर देता है। विचार क्या है क्या प्रत्येक इन्द्रिय पशु के तुलय होती है जब इन्द्रियों के विषय को हम जान करके उनका साकल्य बना करके, उसका हम याग करते हैं तो वह गो मेध याग के रूप में परणित हो जाता है। तो विचार क्या, गो मेध का वर्णन आता है। हमारे यहाँ गो नाम पशु को माना है, जिसके गौघृत के द्वारा मेरे, हमारे ऋषि मुनि याग में परणित रहे हैं, यागों का चयन करते रहे हैं। मुझे स्मरण आता रहता है, गो मेध याग के द्वारा, गोघृत के द्वारा मुनिवरों! माता अरुन्धवती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज प्रातःकालीन याग करते थे अथवा अग्न्याघस करते हुए अग्नि का पूजन करते थे। पूजन का अभिप्राय यह है अग्नि के गुणों को अपने में धारण करने के लिए वह उसमें सुगन्धित का आदान करते थे। तो विचार क्या?

माता अरुन्धवति और वशिष्ठ ही नहीं और भी नाना ऋषिवर जैसे हमारे यहाँ गो मेध याग करने वाले नाना ऋषि हुए हैं, जैसे मुनिवरों! देखो, महर्षि पिप्पलाद मुनि के जीवन में आता है। महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज गोमेध याग करते थे। विद्यालयों में गो मेध याग, गो याग होता है वह मेघों में परणित कराया जाता है। जब ब्रह्मचारी मुनिवरों! आचार्य कुल में प्रवेश करता है तो वह गौपशु के तुल्य बन करके जाता है। जब वह उसके द्वारा याग करता है, आचार्य कहता है हे ब्रह्मचारी! मैं तुझे मेघ में ले जाना चाहता हूँ। मेरे पुत्रों! गो नाम अंधकार का है मेध नाम प्रकाश का है। वह उसे प्रकाश

में परणित कर देता है। जैसे माता अपनी लोरियों का पान करा करके बालक की क्षुधा को शान्त कर देती है। शान्त कर देने से वह माता मुनिवरों! देखो, मेधा विडम्ब ब्रह्म वाचो, वह मेघ में बाल्य को परणित कर रहा है, अब क्षुधा को शान्त करती हुई बालक को अपनी महानता की इस आंतरिक जगत् की प्रेरणा उसे प्रदान कर रही है।

तो आओ मेरे पुत्रों! मैं विशला विवेचनान देता हुआ केवल कि गो मेध याग का वर्णन आता रहता है हमारे यहाँ मुनिवरों! मुझे स्मरण आता रहता है गोघृत के द्वारा माता अरुन्धवती, वशिष्ठ मुनि महाराज, ब्रह्मचारीजन एक स्थलीपर विद्यमान हो करके याग करते थे। जब घृत के द्वारा याग होता है तो वही घृत परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में परणित हो जाता है। वही मुनिवरों! देखो, घृत की जो तरंगे हैं वही मानव के आंतरिक जगत की जो भावनायें है वह पवित्रतम है वह परमाणु वाद के आंतरिक्ष में परणित करा देता है। क्योंकि गो नाम सूर्य की नाना किरणों का नाम भीगौ कहा जाता हैवह उसे अपने में धारण करती हुई वह सूर्य की नाना प्रकार की किरणों यहाँ शेधन कर रही है अथ्रवा नाना निष्चल प्राणियों को मेघ वह अपनी किरणों प्रदान कर रहाहै वह मेघाम् ब्रह्मवाचो देवोः सूर्यवचम् ब्रह्म वाचाः मेरे पुत्रों! सूर्य नाना प्रकार की किरणों के द्वारा वह इस संसार को महान् बना रहा है। महानता में परणित करता हुआ वह गो नाम की जो किरणों हैं उन्हीं को जान करके वैज्ञानिकजनों ने जब उसका जब ध्यान किया तो उसे नाना प्रकार की परमाणुवाद की तरंगे बन्द हो करके वह मानव को वैज्ञानिक युग में ले जातीहै, विज्ञान में परणित कर देती है। इसीलिए हमारे यहाँ यागों का बड़ा सुंदर चयन आता रहा है। अश्वमेध यागों का चयन आता रहा है क्योंकि अश्व नाम सूर्य को कहा जाता है। अश्व नाम के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे अश्व नाम राजा का है अश्व नाम देखो, पशु को घोड़े को भी हमारे यहाँ अश्वमेध के नाम से परणित किया जाता है। परन्तु जहाँ गो मेध यागों का वर्णन होता है, गो मेध यागों के वर्णन में मुझे स्मरण आया रहता है। राजा जनक का जीवन, राजा जनक के यहाँ गो मेध याग होता रहता था। गो मेध याग का अभिप्राय यह है कि जिस राजा के राष्ट्र में देखो, गो नाम पशु का पालन होता है, उसका अग्ना आकृतियों में ध्यान होता है तो वह राजा गो मेध

याग करता है। गो मेध याग का अभिप्राय यह है गो नाम प्रजा को भी माना है मेघ नाम राजा को माना है जो राजा और प्रजा दोनों एक दूसरे के सुखद के लिए क्रिया कलाप करते रहते हैं, वह गोमेध यागों में परणित रहते हैं। राजा जनक के यहाँ गो मेध याग होता रहता था, गो नाम का पशु उसकी पालना होती रहती थी। क्योंकि राजा के राष्ट्र में जितना भी दूध देने वाला पशु होगा अथवा उसका पालन होगा उसका तरण होगा मुनिवरों! उतना राजा के राष्ट्र में संपदा की बलवती होती है यहाँ लक्ष्मी का वास होता है। तो इसीलिए हमारे यहाँ माना गया है कि राजा कृति अस्तीः प्रत्येक राजा हमारे यहाँ गो नाम के पशु की रक्षा करता चला आया है। रक्षा होनी चाहिए क्योंकि यदि रक्षा नहीं होगी तो पशु का वृत्तियों में पालन भी नहीं हेगा। वह दुग्ध भी नहीं हेगा। तो राष्ट्र की सम्पदा, समाज की सम्पदा समाप्त हो जाती है।

मुझे पुरातनकाल की वार्त्ताएं स्मरण आती रहती हैं हमारे यहाँ ऋशि मुनियों के यहाँ आश्रमों में गो का पालन होता था। राजा के राष्ट्र में गो का पालन होता रहा है, मुनिवरों! प्रजा में गो का पालन हो रहा है। तो पालना का अभिप्राय यह है कि इसका सदुपयोग करना है। मुझे स्मरण आता रहता है मुनिवरों! हमारे यहाँ उद्दालक गोत्र के नाना ऋशि हुए हैं जो गौघृत के द्वारा वह याग करते थे, याग करते उन्हीं के द्वारा यन्त्रों का निर्माण करते रहते। यन्त्रों का निर्माण करके उससे परमाणु विद्या को जान करके वह देखो, अन्तरिक्ष में जो परमाण्ुवाद गति कर रहा है अग्न्याधान करने से वह अपने पूर्वजों से जो शब्द अन्तरिक्ष में गति करते हैं उन शब्दों को वह क्रिया में लाने का प्रयास करते रहे हैं तो मैं विशेष विवेचना न देता हुआ केवल यह विचार विनिमय दे रहा हूँ कि हमारे यहाँ गो के कितने पर्यायवाची शब्द हैं। तो राजा जनक की चर्चा चल रही है, राजा जनक के यहाँ प्रत्येक गृह में गो का पालन हो रहा है। प्रातःकालीन ब्रह्म मुझे स्मरण आता रहता है एक समय राजा जनक के यहाँ एक ब्रह्मवेत्तओं का समूह एकत्रित हुआजिसमें महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज चाक्राणि गार्गी महर्षि अर्थात, महर्षि दिगः, महर्षि सोमभानु, महर्षि अष्टावत्र, स्वांति ऋषि महाराज ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी यज्ञदत्तः ब्रह्मचारी रोहणोकेतु नाना ऋषि मुनियों का एक समूह एकत्रित हुआ। परतु

राजाजनक ने यह कहा कि मेरा राष्ट्र कैसे पवित्र बनेगा? मेरे राष्ट्र में जहाँ ब्रह्मयाग होता रहता है, ब्रह्म की चर्चा होती रहती है, मैं नाना गुरुओं के चरणों की बन्दना करता रहता हूँ, उसके पश्चात् ही मुझे यह चिन्तन बना रहता है कि मेरा राष्ट्र कैसे पवित्र बनेगा? जिससे मेरे राष्ट्र से प्रत्येक प्राणी अपने में स्वतन्त्र हो। अपने उदर की पूर्ति में सदैव तत्पर रहें और राष्ट्र में पवित्रता आ जाएं।

राजा जनक ने जब ऋषि मुनियों से यह प्रश्न किया तो ऋषि मुनियों ने कहा, सम्भवे वाचनम् ब्रह्मा वाचाः राजो वृत्ति कृताः ऋषियों ने कहा, भई, हे राजन्! तुम्हारा राष्ट्र उस काल में ऊँचा बनेगा, जब प्रत्येक तेरे गृह में प्रत्येक राष्ट्र के गृह, प्रत्येक मानव के गृह में कोई याग की परम्परा बनेगी। क्योंकि बिना याग की परम्परा के, यह राष्ट्र, समाज इसका नहीं बनता। क्योंकि राजा के राष्ट्र में सुगन्धि चाहती है। प्रत्येक मानव सुगन्धि चाहता है, वह आनी चाहिए। जैसे राजा के राष्ट्र में ब्रह्म याग होता है, विचारों की सुगन्धि हमारे यहाँ सर्वश्रेष्ठ आनी है। जब माता अपने पुत्रों! को शिष्टाचार में, वाणी में शब्दावादी बना देती है तो मुनिवरों! माता प्रिय याग कर रही है। प्रत्येक पितरगण जब अपने पुत्र को एक महान् शिक्षा दे करके अभ्युदय बना देता है, वह अपने विचारों को सुगन्धि ले करके उसको सदाचार की प्रतिभा में परणित कर देता है, तो प्रिय याग हो रहा है। परन्तु ऋषि मुनियों ने यह कहा कि प्रभु! यह याग तो हो रहा है, परन्तु एक याग ऐसा होता है जिससे देवता प्रसन्न होते हैं, देवताओं के प्रसन्न होने पर समय समय पर वृष्टि होती है। समय पर प्रजा अपने में आनन्दयुक्त होती है।

तो उस समय राजा जनक ने जब यह श्रवण किया तो ऋषियों ने यह कहा, प्रत्येक माह में याग होना चाहिए। याग उस गृह में होता है जिस गृह में एक मानव दूसरे का ऋणी न रहे, ऋण से उऋण होना ही हमें याग में परणित होना है। हमारे यहाँ ऋण कई प्रकार के होते हैं। एक ऋण वह होता है जो माता अपने पुत्र को जन्म दे करके उत्पन्न करके यदि उसे सदाचार और शिष्टाचार में परणित नहीं करती है तो वह माता अपने पुत्र की ऋणी रहती है। जो पुत्र योग्य बन करके माता की आज्ञा को पालन नहीं कर रहा है, आचार्यों की आज्ञा का पालन नहीं कर रहा है, वह माता पिता का बाल्य

ऋणी रहता है और प्रजा में यदि राजा अपनी प्रजा को आनंदमयी दृष्टिपात नहीं कर रहा है, प्रजा में दुखित हो रहा है, प्रजा में क्षुधा से समाज पीड़ित है तो वह राजा प्रजा का ऋणी बना हुआ है और यदि प्रजा अपने राजा के प्रति सहानुभूति अपनी विचारधारा, सुविधचार की आभा नहीं परणित कर रही है तो विचार यह वह प्रजा राजा की ऋणी रहती है। तो इस प्रकार से एक दूसरे का ऋणी रहता है।

एक देवता हमारे शरीर में वास करते हैं, देवता हमें देवतव को प्रदान कर रहे हैं, हमें देवपुञ्ज परणित कर रहे हैं। परन्तु यदि हम देव पूजन नहीं करते हैं, देवताओं का आदान नहीं कर रहे हैं, आह्वान भी नहीं कर रहे हैं तो हम देवताओं के ऋणी कहलाते हैं। मानव का जो शरीर है यह देवताओं से पिरोया हुआ है, देवता इसमें वास कर रहे हैं, पञ्चमहा जो भूत है, जड़ देवता है वे इसमें वास कर रहे है। यदि हम इसमें इसको सुगन्धि नहीं देते हैं तो हम देवताओं के ऋणी बने हुए हैं। राजा जनक के यहाँ प्रातःकालीन मुझे स्मरण आता रहता है जहाँ ब्रह्मयाग होता रहता था। ब्रह्म का चिन्तन होता रहता था। ब्रह्म के चिन्तन में राजा और ऋषि मुनि उसमें रत्त रहते थे, तो वहाँ प्रातःकालीन राजा जनक और उनकी पत्नी याग करते थे। उनके यहाँ एक यज्ञशाला थी, यज्ञशाला इसमें अग्न्याधान करके, अग्निहोत्र करके वह अग्नि का पूजन कर रहे हैं। क्योंकि अग्नि सब देवताओं का मुख कहलाता है। देवता अग्नि अग्निम् ब्रह्म वाचो मुखाः देवता उसी के साथ उसी से परमाणु को पान करते हैं, उसी से अपने में सुगठित हो करके वह एक आभा को प्राप्त करते रहते हैं।

तो विचार विनिमय क्या? वहाँ प्रातःकालीन देवपूजन हो रहा है, अग्नि को देवताओ का मुख बना करके जो अग्नि में प्रदान करते हैं वह देवता उस हवि को पान करते रहते हैं। वायुमण्डल उससे पवित्र बन जाता है। जितना वायुमण्डल पवित्र होता है उतना ही देवता प्रसन्न होते हैं। उसी समय पर वृष्टि हेती है, उतना ही समय पर प्रत्येक मानव का क्रिया कलाप होता रहता है। राजा के राष्ट्र में प्रजा आनन्दयुक्त होती हैं वैज्ञानिकजन विज्ञान की आभा को प्राप्त करते हैं। साधकजन राजा के राष्ट्र में विद्या का अध्ययन

करते हुए राजा के राष्ट्र को पवित्र बनाते हैं।
तो विचार विनिमय क्या? मैं बेटा! अपने विचारों को दूरी न ले जाऊं, विचार विनिमय यह कि गो मेध याग होना चाहिए। गौघृत के द्वारा ही अग्निहोत्र होता है, अग्नि का पूजन होता है, परमाणुवाद इसी से वे दूसरे परमाणुओं को निगल जाते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ विद्यालय में ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे। तो यह यज्ञदत्त, स्वेतकेतु आभा में परणित करने वाले अपनी कृति आभाओं में रमण करते रहते थे। जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि के यहाँ एक समय ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी यज्ञदत्त, ब्रह्मचारी गार्गीपथ्य ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु आदि आदि यह सब ब्रह्मचारी विद्यमान हो गए, तो वेद में एक यन्त्र आया था, तो वेद का मन्त्र यह कह रहा था पदणाम् वृहे वाचन्समो ब्रह्मा वाचन्ते सम्मामि प्राणान्ते सम्भामि श्रीतम्मे सम्भामि कृतिमाम्प्रतो ब्रह्माओ देवो विष्णु। यह वाक्य आ रहा था तो वेद के यज्य भविते वायुर्दुभागं ब्रह्मवाचो अप्रतम् लोकाम् ब्रह्म वाचे कृतिकाः। मेरे पुत्रों! ऐसा मुझे स्मरण है कि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ ब्रह्मचारियों की एक सभा में ब्रह्मचारियों का कुछ विचार विनिमय चल रहा था। तो यह विचार कर रहे थे कि उनके द्वारा नाना यन्त्रालय विद्यमान थे। उन यन्त्रों में यह दृष्टिपात करना चाहते थे कि जो यह गौघृत के द्वारा हम याग करते हैं, दुग्ध के द्वारा जो याग करते हैं, यह परमाणुवाद अन्तरिक्ष में क्या क्या क्रिया कलाप करता है? मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि ब्रह्मचारी यज्ञदत्त और गार्गीपथ्य में मुनिवरों! देखो, कृतिभानु, कवन्धी के द्वारा अन्वेषण होने लगा।
तो ऐसा मुझे स्मरण है कि जैसे वह अग्नि में स्वाहा उच्चारण करते तो घृत के द्वारा दुग्ध के द्वारा जैसे अग्नि प्रचण्ड करके जब समिधा उनसे प्रज्ञवलित होकर स्वाहा कहते हैं तो वह परमाणुवाद स्वाहा के साथ में जो आकाश बना हुआ था, स्वाहा के साथ में शब्द था, शब्द के साथ में जो चित्र विद्यमान था, वह यन्त्रों में उन्हें दृष्टिपात हुआ। परन्तु जो परमाणुवाद अग्नि में स्वाहा देने से साकल्य के उत्पन्न हुआ था, सूक्ष्म रूपतो वह अंतरिख में जो अशुद्ध परमाणु है शुद्ध परमाणु है इनका दोनों का संघर्ष होने लगा।

अब संघर्ष होता रहा तो ऐसा मुझे स्मरण है कि वह संघर्ष होता हुआ उसमें ऐसा परिवर्तन हुआ कि अशुद्ध परमाणुओं को निगलता हुआ शुद्ध वायुमण्डल में शुद्ध वायु प्रदान करता हुआ वह परमाणु अपनी आकृति में लय हो गया। तो परिणामा क्या याज्ञवल्क्य मुनि के विद्यालय में इस प्रकार के अन्वेषण ब्रह्मचारीजन करते रहते थे। जब ब्रह्मचारियों ने इस प्रकार का अन्वेषण किया इस प्रकार से उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि वास्तव में हमें गौधृत के द्वारा याग करना चाहिए। परमाणुवाद इस याज्ञिन के युग में यदि वायुमण्डल अशुद्ध हो गया है तो खनिज के द्वार से खनिज को हम अग्नि में सूक्ष्म बना लेते हैं, तो उससे वायुमण्डल अशुद्ध बनता है। परन्तु गौघृत में, दुग्ध में उसमें ऐसी विशेषता मानी जाती है, उसका याग करने से समिधाएं विशेष एकत्रित करके जब उनके द्वारा याग करते हैं तो यन्त्रों में ऐसा हमें दृष्टिपात हुआ।

तो विचार विनिमय क्या? राजा जनक के यहाँ इस प्रकार के यन्त्र विद्यमान रहते थे। हमारे यहाँ इसीलिए विष्णु याग, रुद्रयाग नाना प्रकार के यागों का चयन होता रहा है। हमारे यहाँ अश्वमेध, गो मेध, वृत्तीका, सम्भूतिवास्त याग, अग्निष्टोम याग नाना प्रकार के यागों का चयन परम्परागतों से ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में वैदिक साहित्य में हमें प्राप्त हेता रहता है। आज मैं तुम्हें विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार क्या है? गो मेध याग का वर्णन चल रहा है। राजा जनक के यहाँ विशेषकर गो का पूजन होता था गऊओं के पूजन का अभिप्राय यह है कि गो का पूजन पशु का पूजन होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में इसका पूजन होना ही एक महानता कही जाती है। हमारे यहाँ ऋषि मुनि अपने में पूजन करते रहे है। मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय जब महर्षि सोमभानु के द्वारा नाना ब्रह्मचारी जिज्ञासु ब्रह्मवेत्ता उनके आश्रम में पहुंचे तो यह गऊओं का पालन कराते रहते थे। तो यहाँ विशाल प्रकरण के आता है कि गो नाम यहाँ इन्द्रियों का आता है जहाँ गो का प्रकरण आए वहाँ गो का वर्णन आए तो इन्द्रियों का वाचक कहलाता है। जब राजा के राष्ट्र में गोमेध का वर्णन आता तो गो नाम पशु का आता है। जहाँ विद्यालय में गो का शब्द आता है तो मुनिवरों! वहाँ विद्यालय में ब्रह्मचारी को गो कहते हैं। नाना जहाँ कृषक के द्वारा गो का वर्णन आता है तो वहाँ पृथ्वी को गो कहा जाता

है। तो विचार विनिमय क्या?

गो मेधयाग का बड़ा विशाल वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। हमारे वेद का पठन पाठन हमें गो के लिए वर्णन कर रहा है। गोमेध याग के लिए हमें बाध्य कर रहा है तो मुनिवरों! देखो, हमें गो मेध याग करना चाहिए। एक समय मर्षि पिप्लाद मुनि के यहाँ जब कृतवाभानु ऋषि उनके आश्रम में पहुंचे और भी नाना जिज्ञासु पहुंचे तो उन्हेंने कहा कि प्रभु! हम ब्रह्मज्ञान पाने के लिए आए हैं। हमारी इच्छा यह है कि हम ऋतु और सत् को जानना चाहते हैं कि ऋत् क्या है और सत् क्या है? तो महर्षि पिप्पलाद ने यह कहा कि महाराज! हमारे यहाँ एक नियम बना हुआ है कि जो भी ब्रह्मचारी आता है, जिज्ञासु आता है वह ब्रह्मचर्य का ब्रह्म वर्चोसि ब्रह्मव्रतो का पालन करने वाला ही और गऊओं को सेवा करने वाला ही। आचार्य की वार्त्ता को उन्होंने स्वीकार किया और कहा कि प्रभु! धन्य हैं हम गो मेध याग का, गो की सेवा करेंगे। तो यहाँ गो का वर्णन आता है जब ब्रह्मचर्य के व्रत से ब्रह्मवचोसि का पालन करता हुआ, ब्रह्मचर्य का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक स्वांग की गति के द्वारा अपने सांस को ब्रह्मसूत्र में पिरो देने का नाम ब्रह्मचर्य की चरि के रमण करना है। जहाँ गो मेध का वर्णन आता है कि हमें गो की सेवा करनी है। तो आत्मवेत्ता बनने के लिए गो इन्द्रियों का पालन करना है। गो हमारे यहाँ ज्ञान इन्द्रियां यह गो कही जाती हैं। यह गो के रूप में परणित मानी गई है। जैसे हमारे नेत्र हैं, हमारी त्वचा है, वाणी है, इसी प्रकार कृतियों में श्रोत्र है और घ्राण है। प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को हमें साकल्य बना करके हृदय रूपी जो गुफा है, हृदयरूपीजो याग ब्रह्मवाचोः ज्ञानरूपी अग्नि को चयन करते हुए इसमें इन्द्रियों के विषयों की आहुति देनी चाहिए। जब यह आहुति देता है तो गो की रक्षा हो जाती है। गो का पालन हो जाता है। तो मुनिवरों! हमारे नेत्र नेत्र हैं इन्हें सु दृष्टि पान करना है, सु दृष्टि ही दृष्टिपान करना है। मुझे स्मरण आता रहता है मेरे एक महापिता थे। एक समय 84 वर्ष तक उन्होंने यह पालन किया कि मैं सदैव नेत्रों से सुदृष्टि पान करूंगा। सुदृष्टि पान करने वाला नेत्रों से जो भी निहारता है नेत्र जहाँ जाते हैं वहीं सत्यता का पालन करते चले जाते है। विचार विनिमय क्या मुनिवरों! देखो,

सत्यमयी अपनी आभा को सुदृष्टि में ले जाना हमें इन्द्रियों का पालन करना है। प्रत्येक मानव को अपनी इन्द्रियों का पालन करता है, इन्द्रियों की गो कहा जाता है। त्वचा से सदैव प्रीति ही प्रीति करते रहो, स्नेह ही करते रहो तो मानव समाज में पूज्य बन जाता है, वह देवता बन जाता है।
मुझे स्मरण है एक समय देखो, महर्षि उद्दालक गोत्र में एक ऋषि हुए हैं जिनका नाम कमनकेतु था। तो कमेनकेतु एक समय सत् का पालन करने लगे। सत् का पालन करते उन्हें 82 वर्ष हो गए सत् का पालन करते हुए। सत्य का उच्चारणकरते थे सत्य में ही रहते थे, वह सत्य ही चिन्तन करते थे, सत्य का ही मनन करते थे। वह सत्य में ही रत्त रहते हुए जो उच्चारण करते थे वह सत्य होता। तो इन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान करना, उसमें पालन करना यह मानवीय दर्शनों की दृष्टि से सत्य को पान करना है। परमात्मा की प्रतिभा को प्राप्त करना है। श्रोत्रों में सदैव सत्य शब्दों को श्रवण करते रहो सत् ही उच्चारण करते रहो प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को अपने में एकत्रित करना मोक्ष के द्वार के लिए हमें गति करना है। यदि इन्द्रियों के ऊपर हम अनुसन्धान अन्वेषण नहीं करेगें तो मोक्ष हमें प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय के लिए परमात्मा ज्ञान रूपी अग्नि में उसका साकल्य बना करके हमें आहुति देना है। आहुति जब देते हैं तो स्वाहा कहते ही हमारा जीवन एक महान बन जाता है।
मुझे स्मरण आता रहता है स्वाद्धाम् ब्रह्म वाचो देवाः हमारी जो रसिका है यह स्वादों कापालन करती है। जब यह स्वाद को अपने में धारण करती है नाना प्रकार के रसों को अपने में धारण करती है, अपने रसों में रसोरसी बन करके चन्द्रमा को प्राप्त हो जाती है। यह चन्द्रमाको प्राप्त हो करके अपने में अद्भुत बन जातीहै। जो विचार विनिमय क्या? हमें भी गो रूपी इन्द्रियों कापालन करना है। तो महर्षि पिप्लाद मुनि के यहाँ नाना ऋषिवर गो का पालन कर रहे हैं। जब उनहें लगभग एक वर्ष हो गया ब्रह्मचर्य के व्रत को लेते हुए, इन्द्रियों का पालन करते हुए, एक वर्ष के पश्चात् वह जिज्ञासु महर्षि पिप्लाद मुनि के चरणों में ओत प्रोत हो गए। और यह कहा कि प्रभु अब हमें ब्रह्म का उपदेश दें, हम ऋत् और सत् को जानना चाहते हैं? तो ऋत् और सत् के ऊपर ऋषि ने प्रश्न

किया, तो महर्षि पिप्पलाद ने यह सूक्ष्क सा उत्तर दिया। एक वर्ष का तप किया, चिन्तन और मनन किया परन्तु ऋषि गागर में सागर की कल्पना करते थे। ऋषि मुनियों का जीवन बड़ा विचित्र रहता है। उन्होंने एक ही बात कही कि ऋत् नाम प्रकृति का है सत् नाम ब्रह्म का है दोनों के सन्निधान से इस संसार की रचना होती है। जब संसार की रचना होती है तो यह ब्रह्माण्ड नाना रूपों में दृष्टिपात आने लगता है। तो ऋत् नाम प्रकृति का है सत् नाम ब्रह्म का है, दोनों को जानना इदम् ब्रह्मवाचो देव बृहे वृताम् देवाः ऋत् और सत्य से ऊपर विवेचना करते हुए ऋषि ने यही कहा है कि जितना भी यह परमाणुवाद है, जितना भी हमारी गो नाम की इन्द्रियों का तुमने एक वर्ष तक पालन कियाहै, इसमें जो भी समाहित हो रहा है यह सब प्रकृतिवाद है और इन्द्रियों से जो परे विषय बनता है वह ब्रह्म का विषय है। ब्रह्म में परणित होने का नाम मोक्ष की प्रगतिमा को प्राप्त करना है। तो मेरे पुत्रों! यह वाक्य उच्चारण करके महर्षि पिप्पलाद भी मौन हो गए और ब्रह्माचारीजन, जिज्ञासुजन प्रत्येक सांस की प्रतिभा को ब्रह्मसूत्र में पिरोकर वह अपनी प्रतिमा को प्राप्त होकर के गौमेघ याग में परणित हो गये। तो विचार विनिमय क्या? प्रत्येक राजा के यहाँ समाज में प्रत्येक महंर्षियों के यहाँ ब्रह्मबृहे गो मेध याग होता रहा है।

मैं महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का वर्णन कर रहा हूँ। माता अरुन्धवति और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, जब वह ब्रह्म की प्रतिभा में वह रमण करते रहते हैं तो गौमेघ याग होता है। गो मेध प्रातःकालीन ब्रह्मचारीजन एकित होते। प्रत्येक इन्द्रियों के हितों की चर्चाएं होती। उसके पश्चात् गौमेघ, अग्निहोत्र गौघृत के द्वारा, परमाणुवाद के वाणी को सत्यता के द्वारा वह वायुमण्डल की पवित्र बनाया जाता है। उस वायुमण्डल के पवित्र होने पर मानव साधना में पवित्रतम को प्राप्त होता है। तो महर्षि वशिष्ठ के यहाँ नाना कामधेनु गऊ थी। जिनकी चर्चाएं पूर्व की है। शेष चर्चाएं तो काल ही प्रकट करूंगा। आज का वाक् हमारा क्या कह रहा है। बेटा! हमें गोमेध याग करना है, क्योंकि गो नाम प्रकृति को भी कहा जाता है गो नाम पशु वृत्तियों को भी कहा जाता है। अजान को प्रकाश में लाने का नाम भी बेटा! गौमेघ याग करना है। तो आज का विचार यह कि हम गो मेध

याग करने वाले बनें। हम गो को विचारने वाले बनें क्योंकि गो हमारे यहाँ हमारा जीवन का अंग बनी हुई है। हम परम्परागतों से यह विचारते हैं कि गो का हमारे जीवन से कया सम्बन्ध है? तो विचार आता है गो हमारे शरीर का अंग बनी हुई है धर्म का एक अंग बनी हुई है। क्योंकि राष्ट्र की राष्ट्रीयता का एक प्रतिभाषित बनी हुई है। इसके प्रत्येक राजा और प्रजा में गो मेध गो की रक्षा होती चली जा रही है। जिसके ऊपर हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, विचार विनिमय होता रहा है। मुझे स्मरण आता रहता है राजा जनक के यहाँ भी चर्चा चल रही थी। राजा जनक के यहाँ गो का पालन होना, ब्रह्मयाग होना ब्रह्म चिन्तन होना, प्रत्येक गृह में याग होना, प्रत्येक राजा के राष्ट्र में शुभ चिन्तनीय एक विषय कहा जाता है। जो राजा याग की अवहेलना करता है, सुगन्धि की अवहेलना करता है, गो की अवहेलना करता है, उस राजा का राष्ट्र आज नहीं तो कल रक्तभरी क्रान्ति का अवशेष बन करके रहता है।

मुझे बहुत पुरातनकाल में, बहुत से काल की दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। एक समय द्वापर आवृत्ति का मध्यकालीन कुछ महाराजा अन्तिम से पूर्व एक राजा हुए जिनका नाम स्वामी कृतिभानु राजा था। स्वामी कृतिभानु राजा ने देखो, गो पशु की अवहेलना की है जब गो पशु की अवहेलना की तो विद्यालयों की अवहेलना हो गई। अवहेलना हो जाने का परिणाम यह हुआ कि मुनिवरों! देखो, उसमें रक्तभरी क्रान्ति आ गई। मुझे स्मरण है उस रक्तभरी क्रान्ति का यह परिणाम हुआ कि वह राष्ट्र समाप्त हो गया। जब राष्ट्र समाप्त हो गया तो उसके पश्चात् उनके वंश में एक श्रेष्ठकेतु नामक राजा रह गएं परन्तु वह राष्ट्र का पालन करने लगे और उन्होंने गऊओं की सेवा कीं एक गो को ले करके वह महर्षि स्वाति ऋषि के द्वार पर पहुंचे। गऊओं को ले करके उन्हेंने कुछ सौ गऊ ले करके वे जब पालन करने लगे भयंकर वनों में वह याग करते थे। यह गऊ जब दस हजार गऊ हो गई उसके पश्चात् वह अपने राष्ट्र को आ पहुंचे। आ करके उन्होंने राष्ट्र की स्थापना की। ऐसा कहीं हमें साहित्य में प्राप्त होता है। तो आज मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, आज का विचार विनिमय यह बेटा! मैंने आज तुम्हें बिखरे हुए पुष्पों को एक माला में लाने का प्रयत्न किया है। आज का विचार क्या

है? गऊओं का पालन करना चाहिए, गऊओं की रक्षा करनी चाहिए, गौघृत के द्वारा याग करना चाहिए, जिससे मुनिवरों! मानवीयता पवित्र बन करके हम गो नाम इन्द्रियों को लेते हैं, पशु को लेते हैं हमें इनका पालन करना है। यह है आज का वाक्। अब हमें समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। आज मेरा वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि नाना राजाओं की कुछ चर्चाएं की हैं कुछ ऋषियों की चर्चाएं की। बिखरे हुए पुष्पों को एक माला एक धागे में पिरोने का प्रयास किया, सूत्र में लाने काप्रयास किया है। शेष चर्चाएं गोमेध याग के सम्बन्ध में कल प्रकट करेंगे। आज का वाक् समाप्त तथा वेदों का पठन पाठन। ऊंमः दिनांक 7 जनवरी 1984 गांधी सरोवर पटना रात्रि 7 बजे।

४ 25 05 1984 पुष्प 52 वशिष्ठ मुनि के आश्रम में राम आदि ब्रह्मचारियों की दिनचर्या

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने गए हैं। जो भी मानव उसका वरण कर लेता है, प्रायः वह उसी को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए हमें परमपिता परमात्मा के गुणों का गुणवादन करना चाहिए। क्योंकि अग्नि के समीप उसका ताप और तेज मानव को अपनी प्रतिभा का वर्णन करा देता है, परन्तु जहाँ यह सम्बन्ध ब्रह्माग्नि का आता है, मानो वे ब्रह्माग्नि किसे कहते हैं? ब्रह्माग्नि उसे कहते हैं जो इस ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रही है, मानो वह एक सूत्र कहलाती है और यह जो ब्रह्माण्ड है, नाना निहारिकाओं वाला, जो यह जगत् है। मेरे पुत्रों! देखो, वह इस संसार का एक सूत्र बना हुआ है जिस प्रकार माता के गर्भस्थल में जब शिशु विद्यमान होता है तो मानो माता उसका सूत्र बन करके रहती है, उसी में सूत्रित रहता है और वह जो निर्माण वेत्ता है, जो निर्माण कर रहा है, मेरी भोली माँ उससे प्रायः

वंचित्त रहती हैं, यह नहीं जानती माता कि कौन निर्माण कर रहा है, कौन सी वस्तु का निर्माण हो रहा है? तो इससे हमें यह सिद्ध होता है, कि जो मेरा देव परमपिता परमात्मा जो विश्वकर्मा है, मानो जो विश्व को धारण कर रहा है वही माता के गर्भस्थल में, हम जैसे शिशुओं का प्रायः निर्माण करता रहता है। हे भोली माँ! तुझे कोई ज्ञान नहीं है मानो तेरे गर्भ में कौन निर्माणवेत्ता है, एक एक अणु और परमाणु को सुगठित कराने वाला और उसे ब्रह्माग्नि में पिरो देता है। मानव उसे अपने में पिरो लेता है। कैसा मेरे प्यारे! प्रभु का यह विज्ञान है, मैं बेटा! उस काल में आश्चर्य चकित हो जाता हूँ जब माता के गर्भस्थल में एक बिन्दु का प्रवेश होते ही मानो सर्वत्र देवता उस बिन्दुमयी, आपोमयी ज्योति की रक्षा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। यह पृथ्वी गुरूतव देने लगती है, और जल आपोमयी शीतल बनाने लगता है, अग्नि उसे ऊष्ण बनाने लगती है और वायु उसे प्राण देता है, सूर्य उसे तेजोमयी बना देता है और चन्द्रमा उसे अमृत को बहाने लगता है और यह जो लोक लोकान्तरों की माला है, नाना तारामण्डलों की माला बन करके उस बालक के लघुमस्तिष्क में मानो परणित हो जाती है। वाह रे मेरे प्रभु! तू कितना विज्ञानमयी है। आज हम तेरे विज्ञान की कोई सीमा नहीं, सीमा में तेरे विज्ञान को नहीं ला सकते। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना वैज्ञानिक हुए हैं, परन्तु कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ, जो उस महामना देव के विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके अथवा उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्तर रहता है। तो मेरे पुत्रों! विचार आता है हे ममतव! हे तेजोमयी! तू प्रायः हमें धारण करने वाली है। बेटा! वह उस समय माता को वसु के वसुन्धरा के रूप में परणित कर रहा है, परन्तु आज मैं प्रभु के विज्ञान में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ।

विचार क्या, मुनिवरों! देखो, इससे पूर्वकाल में, हम भगवान राम की कुछ चर्चाएं कर रहे थे। भगवान राम की वह विशेषताएँ, जो प्रायः उनके बाल्यकाल में मानो जो मनोनीतता में प्रायः प्रगट होती रहती थी। विद्यालय में माता ब्रह्मचारी को महान बनाने का उपदेश दे रही है, आचार्यजन ने नाना प्रकार का जो क्रियाकलाप है, उस क्रिया कलाप में उसको परणित कर रही हैं। मेरे पुत्रों! देखो, जब भगवान राम और लक्ष्मण

और गार्गेपथ्य ब्रह्मचारी और भी नाना मानो संग में जो ब्रह्मचारी थे जब वह सर्वत्र ऋषि मुनियों का भ्रमण करके और माता अरुणधती के समीप आ पहुंचे। माता अरुणधती ने कहा ब्रह्मवाचो देवाः ब्रह्मवरुणाः हे ब्रह्मचारी! तुमने कहाँ कहाँ भ्रमण किया? तो एक ही कंठ से उन चारों ब्रह्मचारियों ने कहा कि हम राजाओं के यहाँ भी पहुंचे और ऋषि मुनियों के समीप भी हम विज्ञान की धाराओं में भी प्रायः रमण करते रहते हैं। परन्तु देखो, हमें बहुत सा अनुभव हुआ है, जीवन की धाराओं का अनुभव होना ही, हमारे जीवन की एक सार्थकता कहलाती है। मेरे प्यारे! देखो, वह सायंकाल का समय था, रात्रि के काल में, न्यौदा में से कुछ मन्त्रों पर उच्चारण कराते हुए माता अरुणधती अपने कक्ष में, और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने कक्ष में विद्यमान हो गए। परन्तु देखो, अगला जो दिवस, प्रातःकाल का आया, बेटा! अपने क्रियाओं से ब्रह्मचारी निवृत्त हो करके और माता अरुणधती और वशिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र विद्यालय में विद्यमान हैं। माता अरुणधती ने ब्रह्मचारियों की पंक्ति लगाई। यागां ब्रह्मवाचो देवाः वह याग करने के लिए तत्पर हुए, परन्तु उन्होंने जैसे सन्धि के काल में जैसे प्रातःकाल और रात्रि की दोनों की सन्धि होती है। ऐसे ही ब्रह्मचारियों ने अपने कक्ष में, वह सन्धि और संध्या उपासना करने के पश्चात् मेरे पुत्रों! देखो, अग्नि के समीप जा करके अग्निहोत्र करने लगे। एक ब्रह्मचारी यज्ञमान बन गया और होता और उद्गाता अध्वर्यु बन गए, परन्तु याग प्रारम्भ होने लगा। माता अरुणधती की अध्यक्षता में वशिष्ठ मुनि के गुरूतव में विश्वामित्र भी उस पंक्ति में विद्यमान हैं। विचार चल रहा है याग के पश्चात मेरे पुत्रों! ब्रह्मचारियों का कुछ विचार होता है। हमारे यहाँ एक परम्परा मानी गई है कि जब अग्नि का चयन करता है, ब्रह्मचारी तो प्रातःकालीन अग्नि का चयन करके आचार्य से कुछ प्रश्न करता है और वह प्रश्नों का उत्तर आचार्यजन देते है। जैसे माता अपने पुत्र को लोरियों का पान कराती हुई उसके श्रोत्रों में कुछ न कुछ उच्चारण करती रहती है, मानो अपने उद्गार देती रहती है, बालक का अन्तःकरण पवित्र बनता रहता है, माता के उन उद्गारों से बालक की प्रतिभा का जन्म होता है। परन्तु वही विद्यालय में क्रियात्मक में प्रवेश व्यतीत हो जाता है। तो विचार क्या? मेरे पुत्रों! देखो, राम ने, लक्ष्मण ने, गार्गेपथ्य ने, सुकेता

ने श्वेतकेतु ने, ब्रह्मचारी कवन्धी भी शिक्षा अध्ययन कर रहे थे, मेरे पुत्रों! ब्रह्मचारी कवन्धी और भगवान राम लक्ष्मण भरत इन चारों ब्रह्मचारियों ने उपस्थिति हो करके यह कहा कि भगवन्! कि यह वाजपेयी याग किसे कहते हैं? वाजपेयी क्योंकि यहाँ नाना प्रकार के यागों का वर्णन आता है, वहाँ वैदिक साहित्य में वाजपेयी याग का भी वर्णन आता है। तो भगवान राम इन शब्दों को पान करने वाले ऋषिवर वशिष्ठ ने कहा हे राम! तुम वाजपेयी याग को क्यों जानना चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु! हम इससे पूर्व जब यह रात्रि समाप्त हुई, तो न्यौदा में से कुछ मन्त्रों का अध्ययन कर रहे थे और वह मन्त्र यह कह रहे थे वाचन्नमः वाचो व्रतं यागाः यागाम् भवति देवाः यह नौदा में से एक मन्त्र है और ये मन्त्र यह कहता है कि राजा और ब्रह्मचारियों को वाजपेयी याग करना चाहिए। तो भगवन्! यह वाजपेयी याग क्या है? तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि याग तो हम कहते हैं अग्निहोत्र को, याग कहते हैं शुभकर्म को, परन्तु रहा वाजपेयी याग, प्रजा के सुखार्थ, उनके सुख के लिए, सुखद अनुभव करने के लिए अनुभव लानव्रहे सुखी और आनन्दवत बनाने के लिए मानो देखो, याग करते रहते हैं। इसीलिए वाजपेयी याग का अभिप्राय वाचा वाचा वाचन्नमः वाचन्नब्रह्मेवाचाः मानो जिससे वाणी पवित्र हो जाए, उसको हमारे यहाँ वाच कहते हैं, जिससे हमारे समय का उपयोग हो जाए और उसमें हम देखो, याग करते हुए अग्नि का चयन करते रहें और अपनी वाणी को पवित्र बनाते रहे। क्योंकि वाणी को पवित्र बनाना राष्ट्र और समाज के लिए बड़ा महान् महत्त्व का माना गया है।

मेरी प्यारी माता को प्रायः वाजपेयी याग करना चाहिए। वह अपने बालक को जब लोरियों का पान कराती हो, तो वह सत्यवादी ब्रह्मचारी को माता को बनाना है। यदि माता सत्यवादी पुत्र को नहीं बना सकती तो यह माता के तप की सूक्ष्मता होगी, यह उसकी धृष्टता का द्यौतक है। परन्तु महर्षि वशिष्ठ ने कहा, राम! मेरे विचार में तो एक पक्ष तो यह कहता है वाजपेयी याग और द्वितीय जो पक्ष है वह वाजपेयी याग का यह कहता है कि जब मेघों से हम याग करते हैं तो याग के याग को हिरण्याक्ष ले जाता है, और हिरण्याक्ष उस याग को मेरे पुत्रों! देखो, मेघमण्डल को परणित करा देता है,

या वत्रासुर को उच्चारण कर दीजिए, वह वत्रासुर में चला जाता है और वत्रासुर उसकी धीमी धीमी याग की वृष्टि कर कर देता है सोम की वृष्टि कर देता है और वह जो सोम की वृष्टि है, मेरे पुत्रों! वहाँ बैल, गऊ के बछड़े और बैल की बलि का वर्णन आता है। यह वर्णन शैली हमारे यहाँ, परम्परागतों से आई, परन्तु जहाँ बलि का वर्णन है, वहाँ बलि के बहुत से अभिप्राय माने गएं है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में, बलि के नाना नाना रूप, नाना गुरूतव मैंने तुम्हें प्रगट किए थे। परन्तु बलि का अभिप्राय ये है कि जो सोम की वृष्टि हुई है, उसको हम परिश्रम से अपने मानो पुरुषार्थ से उस सोम का सदुपयोग कर सके और जब उस सोम का सदुपयोग हो जाएगा तो यहाँ बलि का वर्णन है। बलि का अभिप्राय केवल इतना है कि पुरुषार्थ करना है, पुरुषार्थ का नामोकरण बलि कहा जाता है। परन्तु मुझे बहुत पुरातन काल हुआ, मेरे पुत्र महानन्द जी ने बहुत सी वार्त्ताएँ मुझे प्रगट कराई। आज मुझे उन वाक्यों में तो जाना नहीं है। परन्तु त्रेता के काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरुणधती प्रायः यह विवेचना करते रहते थे और विवेचना का अभिप्रायः केवल यह बना कि सोम कहते हैं वृष्टि को, याग कहते हैं मानो देखो, प्रचिका को, जो याग करते हैं उसका मानो सुगन्ध रूप बन करके जाता है। पर्जन्य मानो देखो, उससे वृष्टि होती है और वह वृष्टि ही नाना प्रकार के व्यंजनों को जन्म देती है, नाना वनस्पतियाँ उसी से पनप रही हैं।

तो विचार विनिमय क्या? ये आख्यिकाएं विचार ये है इस प्रकार का जो याग का जो कर्म है याग भी होना चाहिए और राजा और राष्ट्र का कर्त्तव्य है, ब्राह्मण ऊँचे पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के यागों का चयन करें और साधारण समाज मे इस प्रकार के मानो उद्योगों का प्रसार करता चला जाए। इससे राष्ट्र और समाज में एक आनन्दवत् छा जाए। कर्त्तव्य का पालन करता रहे प्राणी, जब तक कर्त्तव्यवादी नहीं बनेगा तब तक जीवन सार्थक नहीं बनेगा। इसी प्रकार नाना प्रकार के कर्मों की विचित्रताएं हैं। यह बड़ी महान् और गहन हमारे यहाँ साहित्यों में बेटा! सिद्ध हुई हैं और यह आया है कि उनको हमें विचार विनिमय करना है। मेरे पुत्रों! जब वशिष्ठ मुनि महाराज ने वाजपेयी याग की यह विवेचना की तो उसमें एक सौ एक कौनों के याग

होने चाहिए। यज्ञंभविताः देवाः यज्ञशालाओं में विद्यमान हो करके यज्ञमान जब याग करता है, पत्नी से कहता हे देवी! आओ, हम अपनी अन्तर्भावनाओं को द्यौ लोक में पहुंचाना चाहते हैं जैसा बेटा! तुम्हें स्मरण होगा मैंने कई काल में कराया था। महर्षि वैशम्पायन की चर्चा भी ये कहती हैं कि महर्षि वैशम्पायन ने एक वेदमन्त्र का अध्ययन किया था कि यज्ञमान का रथ बन करके द्यौ लोक में ले जाता है। मानो देखो, यज्ञमान कहता है कि हम देव याग कर रहे हैं हम वाजपेयी याग करते हुए अपनी अन्तर्भावनाओं को दिव्य लोक में पहुंचाना चाहते हैं, हम दिव्यता में उसको परणित करना चाहते हैं यज्ञमान का अन्तर्हृदय जब तक पवित्र नहीं होता मानो वह पवित्रता ही, तो वायुमण्डल का निर्माण और याग की प्रतिभा को जन्म देती है। मेरे प्यारे! वही तो गृह को ऊँचा बनाती है, गृह में शुद्ध पवित्रता के परमाणु जब वेद मन्त्र की धारा में गति करते, वह वायु मण्डल में प्रवेश करते हुए, यज्ञमान के हृदय का शोधन करती रहती है।

आज मैं पुत्रों! विशेष विवेचना नही देने आया यह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज इस प्रकार की विवेचना करते रहते थे, मानो देखो, ये विवेचना ही समाप्त हो गई और देखो, ब्रह्मचारी अपने अपने कक्ष में जा पहुंचे। ब्रह्मचारी जब अपने अपने कक्ष में जा पहुंचे तो सायंकाल के समय एक ब्रह्मचारियों का समूह विद्यमान हुआ। ब्रह्मचारियों ने कहा, यज्ञदत्त ने कहा, कि हे सोधो! हे भरत! यह आज आचार्य ने हमें जो विवेचनाएं प्रगट की थी, यह तो गतियां मैंने कई काल में योगियों से चर्चायें की थी। मेरे पिता योगेश्वर थे और वह मानो यही गति धाराओं को वह बुध मण्डल में, क्या, शनि मण्डल में जाते थे और शनि में प्राणियों का वह यज्ञ के द्वारा दर्शन करते थे। गार्गेपथ्य ने कहा, कि मेरे जो पिता थे जब मैं माता की लोरियों का पान करता पिता के संग रहते तो वे शिक्षा देते रहते, तो मेरे जो पिता थे, वह अपने पूर्वजों के जो शब्दों के साथ चित्र गतियां कर रहे थे, उनका दिग्दर्शन करते रहते थे। बड़ा विचित्र ब्रह्मचारियों का एक समूह है उसमें अपने अपने अनुभव की और वह श्रवण की हुई चर्चा थीं, उसको वह चर्चा में ला रहे थे। मेरे पुत्रों! भगवान राम ने कहा कि मैंने एक समय अपने महापिता, से महाराजा दिलीप जी की गाथा को श्रवण किया। मेरे महापिता का नाम दिलीप था,

जब वो मानो वशिष्ठ ऋषि मुनियों के कथनानुसार उन्होंने मानो धेनु को त्याग करके और नन्दनी की सेवा करने लगे तो नंदनी के विचार और अपने विचारों का तारतम्य मिलाते थे। देखो, सिंहराज आता तो उसके विचारों में, अपने विचारों की झड़ी लगाते रहते थे। तो मानो हमारे पूर्वज, हमारे महापिता कितने वैज्ञानिक और कितने आत्मीयता में रत्त रहे हैं। महाराजा दिलीप के जीवन में यह गाथा आती है, भगवान राम ने कहा यह गाथ आई, क्या? जब नन्दनी हिमालय की कंदराओं में पहुंची, तो वहाँ झरना झर रहा था, जल का स्रोत बह रहा था। साथ देखो, वहाँ नन्दनी जल का पान करने लगीं हमारे महापिता उस झरती हुई जलधारा को दृष्टिपात करने लगे, इतने में सिंहराज ने आ करके नंदनी पर आक्रमण किया और नंदनी पर जैसे ही आक्रमण हुआ, महाराजा दिलीप ने यह दृष्टिपात किया, यह क्या हो रहा है? पूर्वज ने कहा, हे सिंहराज! ये नंदनी मेरी पूज्य है, मानो इससे पूर्व तू मेरे प्राणों को हनन कर सकता है, नंदनी के प्राण उसके पश्चात् हनन हो सकते हैं। बेटा! देखो, वह सिंहराज मानो चिन्तन में लग गया, ऐसा मानो लेखनीबद्ध कहती हैं दिलीप जी के विचार कहते हैं कि उन्होंने लेखनं ब्रह्म वाचाः वह चिन्तन में लग गए और विचार आया कि दिलीप जी को मैंने आहार कर लिया तो राष्ट्र का और हमारा कौन रक्षक रहेगा। ओहो! रक्षं भविते देवाः पहले परम्परा के काल में सिंहराज की रक्षा करने वाला कौन, राजा है, प्राणीमात्र की रक्षा करने वाला राजा है, नंदनी को त्याग दिया और नंदनी को त्याग करके उसके भाव को महाराजा दिलीप जानते थे, उनकी तपस्या पूर्ण हो गई। बारह वर्ष तक तप किया वशिष्ठ ने याग किया, शृङ्गी के द्वारा याग कराया परन्तु देखो, यहाँ रघु का जन्म हुआ।

विचार मैं यह दे रहा हूँ पुत्रो! क्या मानो देखो, राम अपने ब्रह्मचारियों में विद्यमान हो करके अपने पूर्वजों की गाथा का वर्णन कर रहे थे। मानो इसको हम धेनु याग कहते हैं, मानो धेनु याग राजा को करना चाहिए। धेनु याग से समाज ऊँचा बनता है। तो मेरे पुत्रों! उसी सम्भवा ब्रह्मचारियों की सभा विसर्जन हुई। परन्तु देखो, वह रात्रि के काल में, भोज करने के पश्चात राजा को यदि अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है। राम की प्रतिभा को लाना है तो एक वनचर वनों में रहने वाला, उदर की पूर्ति करने वाला उसका

ब्रह्मचारी उसका बालक बाल्य और एक राजा का बाल्य दोनों जब एक पंक्ति में भोज्य प्राप्त करने लगते हैं। तो राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाता है यह शिक्षा प्रणाली पवित्र बनाती है और यदि राजा के पुत्र ब्रह्मचारी कुछ पान कर रहा है, अध्ययन की प्रतिक्रिया कुछ कह रही है, तो मुनिवरों! देखो, राजा का राष्ट्र पवित्र नहीं बनेगा, उसमें महानता नहीं आयेगी। क्योंकि ब्रह्मचारी सभी एक सूत्र के होते हैं, उनका धीमा धीमा विकास, धीमी धीमी प्रतिक्रियाएं बनती रहती है। तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रों! आज मैं विशेष, विवेचना न देता हुआ, केवल तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में महान बनने के लिए, नाना प्रकार के गंभीरतम रहस्यों को उद्धृत करना है, मानो इसको उद्गमता में परिणत करना है। एक शूद्र के कुल में ब्रह्मचारी का जन्म हुआ, एक राजा के कुल में जन्म हुआ, आचार्य दोनों को शिक्षा दे रहा है, एकोमयी शिक्षा, आहार भी तो उसी प्रकार का है, तो राष्ट्र समाज पवित्र बनेगा। विज्ञान में प्रतिभा और महानता का जन्म होता रहेगा है तो विचार विनिमय क्या? मैं विशेष विवेचना न देता हुआ केवल तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि महाराजा! वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ ब्रह्मचारी भिन्न भिन्न प्रकार का अध्ययन करते रहते, ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ना और क्रियात्मक अपने जीवन को बनाना प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व मानव अपने शारीरिक उन्नति करना और मुनिवरों! देखो, बौद्धिक उन्नति करना बौद्धिक और शारीरिक जब उन्नति प्राणी की जो जाती है, तो मुनिवरों! देखो, वह जो उन्नति है। वह सामाजिक स्वतः बन गई है। जब हमारी बौद्धिक उन्नति हो गई है और शारीरिक उन्नति हो गई, तो सामाजिक उन्नति स्वतः बन गई उसमें स्वतः महानता आ गई। इसी प्रकार जब बौद्धिक, शारीरिक और सामाजिक और मुनिवरों! देखो, आत्मिक जब दोनों ऊंचे बन गए तो आत्मिक उन्नति स्वतः हो जाएगी। जब आत्मा की उन्नति होगी तो हम सदैव सत्यवादी बनेंगे, गृह को ऊँचा बनाएंगे और महानता की प्रतिभा को ला सकेंगे। तो पुत्रों! आज का विचार, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या है कि त्रेता काल का यह परिचय है। विद्यालय में वशिष्ठ, माता अरुणधती, अपने में महान् उपदेश दे करके, नाना प्रकार की गुत्थियों को स्पष्टीकरण

में लाते रहते थे। हमारे यहाँ यागों में हिंसा का चलन नहीं है, बलि का कोई चलन नहीं है। केवल यहाँ बलि पुरुषार्थ को माना है। मेरे पुत्रों! मुझे महानन्द जी ने एक समय प्रगट कराया था। कि महाभारत के पश्चात् यागों में कुरीतियां हैं। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी उन कुरीतियों को कुछ प्रगट करेंगे।

आज का विचार तो केवल यह है, कि हमारा जीवन एक महान् और पवित्रता में परणित होना चाहिए। याग का अभिप्राय यह है कि हमारा आत्मा उन्नतिशील हो जाए। याग का अभिप्राय यह है कि गृह में पवित्रता आ जाए। हमारे हिंसा के भाव कर्मवचन में न रहें, हम कर्मवचन से महान् बन करके सागर से पार हो जाएं। ये है बेटा! आज का वाक् समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा। दिनांक 25 मई 1984 निवास स्थान : ग्राम धनौरा समय : प्रातः 9.30 बजे

५ 15 09 1984 पुष्प 52 वशिष्ठ मुनि के आश्रम में राम कालीन दीक्षान्त उपदेश

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्रवेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती कावर्णन किया जाता है, क्योंकि वे परमपितापरमात्मा वरणीय माने गए हैं और जो मानव उसका वरण कर लेता है वे प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए हमारा वेद का ऋषि यह कहता है कि उस परमपिता परमात्मा को वरणीय स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि वो वरणीय है वरण के योग्य है। हम उस परमपिता परमात्मा की महती में सदैव रमण करते हैं, नाना लोक लोकान्तरों की यात्रा में जब संग्न होते हैं, तो प्रायः उस परमपिता परमात्मा का विज्ञान हमारे समीप अथवा मानव के समीप आने के लिए तत्पर हो जाता है। मानव उसके ऊपर अनुसन्धान अथवा अन्वेषण करता करता बहुत दूरी चला जाता है, विचारता रहता है कि मैं परमपिता परमात्मा के क्षेत्र में हूँ और वह इतना अनुपम और विशाल क्षेत्र है, वहाँ जब क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात् मेरे इन्द्रिय शान्तना को प्राप्त हो। जाती है, क्योंकि हमारे ऋषि मुनि परम्परागतों से ही, नाना प्रकार

का अन्वेषण करते रहे हैं अथवा उनका विचार विनिमय होता रहा है और उनकी जो अनुपम प्रतिक्रियाएं हैं वो प्रायः मानव के समीपअथवा मानवीयता से सुगठित रहते हैं। बहुत पुरातन काल हुआ ऋषि मुनि अपने क्षेत्रों में विद्यमान होकर के उनका अनुसन्धान का विचारणीय अणु वृत्तियों और कर्मोका जो क्रिया कलाप उनके समीप होता रहा है वो बड़ा विचित्रत्तम माना गया है।

आज मैं बेटा! उन क्षेत्रों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। बहुत पुरातन काल हुआ जब मुनिवरों! देखो, ऋषि मुनि अपने स्थलियों पर विद्यमान हो करके प्रकाश के लिए विचार निनिमय करते रहते हैं कि उस प्रकाश को अपने में लाना चाहते हैं, जिस प्रकाश से ये मानव और ब्रह्मांउ अपने में क्रियाशील होता रहा है और एक दूसरे में प्रकाश एक दूसरे की प्रतिभा बना हुआ है, एक दूसरे में उसकी प्रतिभा मानव की प्रायः दृष्टिपात आती रही है। आज हम जब प्रकाश के ऊपर विचार विनिमय करते हैं तो एक माला दृष्टिपात आने लगती है और वो कैसी प्रिय माला है जो एक दूसरे मनके को प्रकाशित कर रही है, एक सूत्र में पिरेती चली जा रही है। जैसा मुनिवरों! पुरातन काल में भी हमने ये वाक्य प्रकट किया था। देखो, सूर्य का प्रकाश आ रहा है, मानव के नेत्रों को प्रकाशित कर रहा है और मानव को मृत्युञ्जय की प्रेरणा दे रहा है। , परन्तु वही प्रकाश मानव के नेत्रों का देवता बना हुआ है। परन्तु उस गंभीरता के प्रकाश में रत्त होते हैं, तो वैदिक प्रकाश वेद का प्रकाश हमारे समीप आता है, हम उसके निकट जाते हैं वेद के प्रकाश के जब निकट जाते हैं तो अंतःकरण प्रकाशित बना हुआ हैं हमारे यहाँ वदे रूपी जो प्रकाश मानव के अुतःकरण को प्रकाश मान बनाता है, अन्तःकरण को क्रिया में ला देता है, अन्तःकरण में एक आनंदमयी ज्योति का प्रसार कर देता है। जैसे मानव जागरूक में सूर्य का प्रकाश आ रहा है, उससे नेत्र प्रकाशित हो रहे हैं, वे प्रकाश भव्य प्रकाश है जो नेत्रों में आ रहा है, प्रत्येक मानव उसके प्रकाश में रत्त हो करके क्रिया कलाप में परणित हे जाता है, इसी प्रकार आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता आध्यात्मिक विचार विनिमय करने वाले, वेद रूपी प्रकाश का ि करके चलते हैं। अंतःकरण का सूर्य माना गया है, अंतःकरण को प्रकाशित कर देता है, चतुर्थकरण बन करके मानव के चित्त का

मण्ड बन जाता है, चित्त का मण्डल ही उसमें जो प्रकाश है, जो संस्कारों का उद्बोधन हो रहा है, वही आवागमन की प्रतिभा बन करके रहता है, वही मोक्ष का द्वार बनकर के रहता है। परन्तु देखो, अन्तःकरण जो चित्त का अभ्युदय होता है, तो मानव एक अनुपम प्रकाश को अपने में अनुभव करता है। वेद के मन्त्रों की ध्वनियों में अपने प्रत्येक इन्द्रियों को ध्वनित करने लगता है और जब इन्द्रियां उसमें ध्वनित हो जाती है तो मानव अपने में प्रकाश की प्रतिभा का अनुभव करने लगता है।
तो आओ मेरे पुत्रों! मैं तुम्हें विशेष विवेचना में ले जाना नहीं चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें प्रत्येक आभा में ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। आज मुनिवरों! देखो, पुनः से मैं कुछ क्षेत्र में तुम्हें ले जाने के लिए आया हूँ, जहाँ महर्षि भारद्वाज मुनि आश्रम में उनके पुत्रों! भवाविद्यालाम् पवित्रे असतो सम्भवा जो विद्यालय में ब्रह्मचारी अध्ययन कर रहा था। परन्तु देखो, । विद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात् जब चित्रयागी बन करके पितरों की आभा में रमण करनेवाला ब्रह्मचारी विद्यालय से प्रवेश हो करके आचार्य को पिता स्वीकार करता है। जब पितरों के क्षेत्रों सेउपरान्तता को प्राप्त हो करके आचार्य उसे दीक्षान्त अपना दे देता है। मैंने नाना दीक्षान्त उपदेशतुम्हें प्राप्त कराए थे। यही दीक्षान्त उपदेश जिस समय भगवान् राम अपने विद्यालय को त्यागने लगे, तो वहाँ भी दीक्षान्त उपदेश महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का हुआ। मैं आज वह विचार देने के लिए आया हूँ कि हमारे यहाँ दीक्षान्त में विचार देता हुआ ऋषि क्या कहता है। भगवान राम जब दीक्षान्त अपने विद्याओं से उपरान्तता को प्राप्त हो गएं तो उपरान्तता को प्राप्त होने के पश्चात् ऋषि ने कहा है। राम तुम्हारा विद्यालय का काल समाप्त हो गया है। उन्होंने कहा प्रियतम, परन्तु देखो, आओ हम भी तुम्हें दीक्षान्त अपना उपदेश देना तुम्हें प्रारम्भ करूंगा। तुम्हें दीक्षान्त उपदेश को अपने में श्रवण करते हुए अपने में क्रियाकलाप में तुम्हें वह लाना है। राम और श्वेत्ताम् भांति ऋषि महाराज श्वेत्ताम् भावस्तेः और चौक नीति विद्यालयम्। मेरे पुत्रों! देखो, कुछ ब्रह्मचारी और भी उनके साथ जिन्हें विद्यालय उस दिवस त्यागना था। परन्तु ऋषि ने चरणों में ओत प्रोत कर ली। चरणों कीवन्दना करते हुए, उन्हेंने कहा प्रभु! आज हम इस विद्यालय को त्याग रहे हैं। हमारा विद्या का

काल उपरान्तता को प्राप्त हो गया है। हम विद्यालयों को त्याग रहे हैं तो हे! प्रभु हमें आज्ञा दीजिए कि हम क्या करें। माता अरुणधती भी विद्यमान हैं, महर्षि वशिष्ठ भी विद्यमान हैं एक आसन पर और महर्षि विश्वामित्र भी विद्यमान हैं। कहीं से भ्रमणाकरते हुए महर्षि लोमश और कागभुसन्ड जी भी उनके आश्रम में आपहुंचे। पांचों ऋशि ब्रह्मवाचम् ब्रह्मलोकाम् हृरन्यंवृथाः अपने में आसन लगा करके विद्यमान हो गए। सबसे प्रथम दीक्षान्त जो उपदेश हुआ, माता अरुणधती ने कहा हे ब्रह्मचारियों! आज तुम अपने इस विद्यालय को त्याग रहे हो। परन्तु इस विद्यालय में तुम्हें यह प्रतीत है कि तुमने कौन कौन सी विद्या का अध्ययन किया है। संसार में तीन ही प्रकार की विद्या कहलाती है, ज्ञान, कर्म, और उपासना। तीन ही विद्यायें हैं। इन तीनों प्रकार की विद्या में संसार का बिन्दु संसार बिन्दु में औरसंसार विकास में परणित होता रहता है। यह तुम्हें प्रतीत है जब ब्रह्मवेत्ताओंने इसके ऊपर विचारविनिमय किया है अन्वेषण किया है। ये जो वेद में जो विद्या का वर्णन आताहै। त्री विद्या कौन सी है जो मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित करती है। जो मानव को मानवीयता से चिन्तन में लगा देती है। आज वही त्री विद्या कहलाती हैं इस त्री विद्या का अध्ययन प्रायः तुमने किया है, परन्तु देखो, इन त्री विद्याओं में ज्ञान, कर्म और उपासना का वर्णन आता है। जब माता अरुन्धवती ने कहा कि ज्ञान किसे कहते हैं यह तुमने विचारलिया होगा कि जो तुम संसार में दृष्टिपात करते हो अथवा दृष्टि अपने नेत्रों से जो तुमने दृष्टिपात किया है, उसको जानने का नाम ही ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान की विवेचना करते हुए ऋषि कहता है कि मानव जो वाणी से उद्घोष करता रहता है और वाणी से सदैव सत्य का आश्रय ले करे वह उद्घोष करता रहता है। वाणी की प्रतिभा में एक श्रोत्र बहता रहता है, इसको हम सत्य कहते है। वह आनंद के मार्ग पर हमें ले जाता है। उसे हमारे यहाँ ज्ञान कहते हैं। जैसे एक मानव ने एक प्राणी को दृष्टिपात किया है। प्राणी को दृष्टिपात करके सोचा कि उसमें प्राण है। और प्राणके ऊपर जब अन्वेषण करता हे तो विचार आता हे प्राण के साथ अग्नि विद्यमान है। विचार करता है कि अग्नि के पश्चात् जल विद्यमान रहता है। जल के ऊपर जब अन्वेषण करता है तो पृथ्वी के कण उसे दृष्टिपात आने लगते है। जब वे दृष्टिपात

करने लगता है पृथ्वी के कणों को, तो उन कणों में इस ब्रह्माण्ड की रचना का विधान उसमें निहित रहता है। तो जब ये इतनी वस्तुओं को दृष्टिपात कर लेता है, तो वो ज्ञान के सागर में चला जाता है। तो ज्ञान मानवज्ञान ही कहलाता है। वो जब ज्ञान में चला जाता है तो माता अरुणधती कहती हैं, ब्रह्मचारियों! उसे हम ज्ञान कहते हैं, उसे हम ज्ञान की प्रतिभ में परणित करते हुए, हमारे यहाँ सबसे प्रथम अध्ययन की परम्परा में सबसे प्रथम ज्ञान आता है। ज्ञान को जब हम अपने में धारण करते हैं, तो हमारे हृदय में एक अनुभूति होने लगती है। एक प्रकाश की अनुभूति हो करके हम अपने में ये स्वीकार कर लें की ज्ञान तो बड़ा अनन्तमयी है। प्रत्येक वस्तु को दृष्टिपात करके उसके गर्भ में जाना ही ज्ञान है, परन्तु ये बड़ा आश्चर्य एक विचित्रतव माना गया है। परन्तु जब माता अरुणधती ने ये वाक्य कहा कि मैं ये सदैव अध्ययन करती रही हूँ इसके ऊपर हम गमन करते हैं, सबसे प्रथम ज्ञान और कर्मज्ञान के पश्चात् क्रिया कलाप अथवा कर्म आता है। हम कर्म किसे कहते हैं हम दृषि्अपात करते हैं, जिनका हमने ज्ञानयुक्त हो करके ज्ञान दिया है, उसको क्रिया में लाना चाहते हैं। जैसे हमने सूर्यलोक को दृष्टिपात किया है, अब सूर्य को हम क्रिया में लाना चाहते हैं, अपने में धारण करना चाहते हैं, सूर्य कहाँ कहाँ क्या क्या क्रिया कलाप कर रहा है। परन्तु वह सूर्य कैसा, कैसी उसकी नाना प्रकार की किरणें हमारे समीप आ करे हमें क्रियात्मक बना देती है, प्रातःकाल सूर्य उदय हुआ है, उदय होकर के वो प्रकाश देता, क्रियाओं में रत्त होने लगता है। नाना प्रकार के कर्मों में लब्ध लिपित हो करके उसी मेंरत सायंकाल तक रहता है। सूर्य का जे अनुपम प्रकाशहै वही तो हमें कर्म में लाता है। उस सूर्य की किरण चन्द्रमा को अमृत देती है। चन्द्रमा को शीतलता देती है। वे ही चन्द्रमा को सूर्य को और चन्द्रमा की दोनों किरणबन कके समुद्रों में प्रवेश करती है। समुद्रों में जब प्रवेश किया, तो वहाँ से जलों का उत्थान हो गया, वही सूर्य की किरण द्यौलोक में पहुंची और द्यौ मण्डल से प्रकाश ले करके मेघों का उत्थन करके नाना प्रकार के व्यंजनों का जन्म हो गया। नाना प्रकार की वृष्टि हुई और पृथ्वी पर नाना प्रकार के व्यंजनों का जन्म हो गया। परन्तु उसको हम क्रिया में लाना चाहते है। वह हम क्रिया में कैसे लाएं? अनुसन्धान करते हैं,

विचार करते हैं कि हमें ज्ञान हो गया है, परन्तु ज्ञान के पश्चात् जब हम क्रियात्मक में उसको लाना प्रारम्भ करते हैं कि मेघों का उत्थान हुआ। समुद्रों में बड़वाचनल नाम की अग्निका प्रवेश हो गया है।

एक समय मुझे स्मरण आता रहता है, भगवान राम और गोस्वान भानुऋशि महाराज के पुत्र वाचकेतु दोनों को आचार्य ने एक समय समुद्र के तट परप्रस्थान कराया। और कहाँ तुम अपने वाहन में विद्यमान हो करके समुद्र के तट पर चले जाओ। विचारये है कि वेद में वेद का अध्ययन करने से ये प्रतीत हुआ कि बड़वानल नाम की अग्नि हमें प्रतीत होती रहती है। वो बड़वानल नाम की अग्नि का अपने में क्रिया में लाने का प्रयास करो। भगवान् राम और ऋषि कुमार दोनों ने समुद्र के तट परछः माह तक अध्ययन किया। अध्ययन करते पुनः अपने आरम में आ पहुंचे। वहाँ और देखा ऋषि ने जब यह प्रश्न किया कि तुम उसको क्रियात्मक करके लाए! उन्होने कहा प्रभु! बड़वानल नाम की अग्नि जैसे मानव के शरीर में क्रोध से अग्नि का चलन आ जाता है, अग्नि ज्ञान की प्रतिभा को नष्ट कर देती है, इसी प्रकार जब समुद्रों में बड़वाचन नाम की अग्नि का प्रहार होता है, बड़वानल नाम की अग्नि का चयन होने लगता है, वह देखो, समुद्रों की शान्तना को और देखो, समाज की स्थिरता को, वायुमण्डल के वैभव को अपने में धारणकर लेती है। इसी प्रकार भगवन्! हमें तो कुछ ऐसी प्रतीत हुआ है। जब मुनिवरों! देखो, राम और ऋषि कुमार ने ये वाक्य प्रकट किए तो ऋषि प्रसन्न हो गए। तो माता अरुणधती ने कहा हे ब्रह्मचारियों! ये वाक्य तुम्हें स्मरण होगा, इसीलिए मानव को अपने जीवन को क्रियात्मक में लाने के लिए अनुसन्धान करना है, विचार करना है कि जो हमने ज्ञान पाया है, उस ज्ञान को हम क्रिया में लाना चाहते है। क्रिया में कैसे आताहै? एक मानव ने ये दृष्टिपात किया कि हमने देखो, योग का दृष्टिपात किया, योग है, अब योग को वो क्रियात्मक में लाना चाहते हैं। योग दो प्रकारके रूपों में विभक्त हो जाता है एक हठ में प्रति हठ में विभक्त हो गया है एक राज योग में विभक्त हो गया। देखो, साधना के क्षेत्र में जब मानव प्रवेश अपना क्रिया में लाना प्रारम्भ करता है, तो दो विभागों में वे ही योग परणित हो गया है, वो विभक्त हो गया है और विभक्त की

प्रतिक्रियाएं एक हमारे यहाँ ध्यान योग में इसे राज योग कहते हैं, एक हठयोग में जैसे हठयोग प्रतीप का है। प्राण को कैसे हम सुसज्जित करना चाहते है और साधना में हम कैसे प्राण को लाना चाहते हैं हम अपान और उदान को दोनों का समावेश करना चाहते हैं। तो कैसे हो सकता है। तो ये सब हठ योग प्रतीप का हठ योग में परणित कहा जाता है। परन्तु एकक वे थे जो शान्त मुद्रा में विद्यमान हैं, जो स्वाभाविक क्रिया कलाप हो रहा है प्रकृति का, प्रकृति अपने में ध्रुवा और ऊर्ध्वा में गति कर रही है, कहीं ध्रुवा में है कहीं ऊर्ध्वा में है जो रसवतः गति कर रही है, प्राण की इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को अपने में ध्यानावस्थित करने का नाम उसे ध्यानयोग कहते हैं, राजयोग कहते हैं। तो मेरे पुत्रों! जब इसको मानव करता है तो इसमें वेग की प्रतिभा का जन्म होता है, वेग जागरुक हो जाता है। जब मानव क्रियात्मक अपने जीवन को ले जाता है।

आज मैं तुम्हें बहुत गंभीर रहस्यों में ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। ये तो बड़ा गंभीर रहस्यतम माना गया है। विचार ये चल रहा था, माता अरुणधती दीक्षान्त अपने उपदेश दे रही थीं उच्चारण कर रही थी, मानव को क्रिया में प्रवेश करना है। क्रिया में ब्रह्मवाचक प्रवेलोकाम् वेद की विदुषी कहती है हे ब्रह्मचारियों! ब्रह्मवेत्तओं ने मुझे आज्ञा दी है में दीक्षान्त के ऊपर अपना कुछ उपदेश दूं। परन्तु देखो, द्वितीय हमारे अजय से ज्ञान कर्म और उपासना कहीं जाती। उपासना का अभिप्राय क्या है? उपासना हम किसे कहते हैं? परमात्मा की उपासना करना ही हमारे लिए सर्वोपरि कहा जाता है। वह उपासना का अभिप्राय क्या है? हमें प्रत्येक वस्तु की उपासना करनी है उपासना का अभिप्राय यह है कि जैसी वस्तु है वैसा ही उसको उच्चारण करना, यह उसकी उपासना कही जाती है। यदि जैसी कोई वस्तु है नहीं और यदि हम अपनी विडम्बना से उसकी ऊँची ऊँची कल्पनाकरते हैं, तो यह उसकी पूजा नहीं कहलाती। पूजा का अभिप्राय यह है कि जैसी कोई वस्तु है, उसको उसी रूप में स्वीकारकरना वह उसकी पूजा का एक अव्रहेत् कहा जाता है, सोबह्नत कहा जाता है। जैसे मुनिवरों! देखो, मानव अग्नि की पूजा करना चाहता है, अग्नि को अपने में धारण करनाचाहता है। अग्नि के तेजोमयी जीवन को अपने में ला करके मुनिवरों! देखो, वह गान गाना चाहता है। गान गाता रहता, उपासना के

द्वार पर पहुंचा, तो गान गाने लगा। अग्नि का गान गाता है प्राण के स्वरूप में, प्राण और अग्नि का, वायु और अग्नि का, दोनों का परस्पर सम्बन्ध रहता है। जब वह गान गाने लगता है, गान गाता हुआ वाणी भीअग्नि का स्वरूप बन करके रहती है। अग्नि का जब हम सम्मिलन ब्रत्तीलोकाम वायुसेसम् समन्वय करते, तो दोनों का सूत्र बन करके गान रूप में असफता को प्राप्त हो गया। गान भी कई प्रकार के होते हैं, उपासना काण्ड में हम जब गान गाते हैं तो गान में कहीं दीपावली गान कहा जाता है, कहीं रूद्ध गान कहा जाता है, कहीं खेतरी गान कहा जाता है। इनके भिन्न भिन्न प्रकार माने गएं हैं। जैसे गान के रूप में हम माला पाठ का गान कहलाता है, जटा पाठ, धनपाठ ये सब गान कहलाते हैं। परन्तु जब गान के क्षेत्र में मानव प्रवेश करता है तो वह उपासना करता, उपासना किसकी कर रहा है? जैसी जो वस्तु है उसको वैसा ही स्वीकार करना, ये उसका गान कहा जाता है, यह उसकी उपासना कही जाती है। जैसे हम अग्नि की पूजा करनाचाहते हैं ता ेहम अग्नि को अपने में धारा करना चाहते हैं, तो हम अग्निको अपने में धारणाकरना चाहते हैं, हम तेजोमयी बनाना चाहते हैं। तो अग्नि को हम अग्नि के रूपों में हमें तवो अग्नि स्वीकार करनी होगी। अग्नि की जब हम ब्रह्म अग्नि बना करे उसकी पूजा करते हैं, तो ब्रह्म के समीप जाते हैं, वेद के गान गाने लगते हैं, परमात्मा के समीप जा करके अपने को हम धन्य स्वीकार करते हैं। वही गान जब हम रूध्द्रो, भागम ब्रह्मवाचहो देवम्, उस अग्नि को हम वैशवानर नाम की अग्नि स्वीकार करते हैं, तो वैशवानर नाम की अग्नि बन करके हम विश्व को अपना मित्र बना लेते हैं। जब मुनिवरों! देखो, गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करते हैं, तो गृह को अपने वशीभूत होकर के हम गृह का शोधन कर देते हैं। कहीं गार्हपथ्य नाम की अग्नि का जब हम पूजन करना प्रारमभ करते हैं, तो विलयों को पवित्रबना देते हैं। ब्रह्मचारी अपने में गार्हपथ्य नाम को अग्नि कीपूजा करके आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके उसकी पूजा करता है और पूजा के उपरास्त में आचार्य उसे निगली हुई विद्या को प्रदान कर देता है।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? मैं विशेष विवेचना देना नहीं चाहता। ये सब अग्नि

की पूजा कही जाती है। परन्तु अग्नि का अभिप्राय यह है जो काष्टों में रहने वाली अग्नि है उस अग्नि से हम याग करते हैं। इसी अग्नि के द्वारा हम अपने को महान बना करके पवित्र बना देते हैं। उस अग्नि को हम जैसी अग्नि है हम उसी प्रकारसे भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नियों को स्वीकार करने कानाम उसकी पूजा की जाती है। इसकी पूजा का अभिप्राय यह है कि जैसी जो वस्तु है उसको वैसा ही स्वीकार करना है। जैसे एक मानव देखो, जल की पूजा करना चाहता है, जल की पूजा करने का अभिप्राय क्या है? यह प्राणवर्धक है, यह प्राणों को देने वाला है। रूग्ण हो रहा है, वे कंठ में जल नहीं रहा है, आपो नहीं रहा है तो वो जल को अपने में पान करता अपने में धारण करता है, जब वह पान करता है तो देखो, उसके कंठ में माधुर्य पन आ जाता है, उसके कंठ मं एक शीतलता आ जाती है। वह अपने को स्वीकार करता है कि मैं शीतल बन गया हूँ। पवित्रम् में अपने को पनपा रहा हूँ। अब जल को उसी रूप में स्वीकार करके उसे हम अपने प्रयोग में लाएं, तो यह उसकी पूजा कही जाती है। पंजा का अभिप्राय मैंने कई काल में तुम्हें निर्णय किया था। परन्तु आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है जो सर्वत्र पूजाओं का वर्णन करूं। परन्तु देखो, अभिप्राय यह है कि हम पूजा प्रत्येक मानव के माता पिता की पूजा करना चाहते हैं तो माता पिता उसको अमरनाथमें परणित करें उसको नाना प्रकार सुखद देने का प्रयास करें, तो यह उसकी पूजा कहीं जाती है। पूजा का अभ्रिपाय क्या है? सुखद को देना ही उसकी पूजा है। मुनिवरों! देखो, ! परमात्मा की हम, पूजा करनाचाहते हैं, परमात्मा के समीप जाना चाहते हैं तो प्राण को हमें निरोध करना होगा। प्राण को निरोध करते करते वह ब्रह्म के समीप ले जाता है वह प्राणत्त्व क्योंकि प्राणाम भविते वहो स्वन्धना वाचान्नाम् सूत्रो भविते अस्व्रतो रूद्राः। क्योंकि प्राण एक सूत्र है संसार का, ब्रह्माण्ड का सूत्र बना हुआ ह। हम उस सूत्र को अपने में सूत्रित करके, परमात्मा से हमारा मिलान करा सकता है।

तो आओ मेरे प्यारे! मैं अपने विचारों को दूरी में देता चला जाऊं। माता अरुणधती ने कहा हे ब्रह्मचारियों! मैंने यह सूक्ष्म सा तुम्हें उपदेश दिया यह दीक्षान्त है कि तुम ज्ञान, कर्म और उपासना में रत्त हो करे और तुम अपने में आचार्य की पूजा करो। आचार्य

की पूजा का अभिप्राय क्या है, कि जो आचार्य ने निगली हुई विद्या प्रदान की है अथवा तुम्हें तुम्हारे में भरण कर दें उस विद्या को तो उस विद्या को अपने में स्वीकार करके और उस विद्या से अपने आचरणों, अपनी मानवीयता को ऊँचा बनाना ही देखो, आचार्य कीपूजा कही जाती है। पूजा का अभिप्राय यह कि भिन्न भिन्न यपों में माता अरुणधती यह उच्चारण करके बेटा! मौन हो गई। जब मौन हो गई तो ब्रह्मचारीभी अपने में आश्चर्यचकित हो गए। कि हमें तो मातेश्वरी ने जानकर उपासना के ब्रह्माण्ड को स्पष्टीकरण किया है। यह तो विशाल बन है जिस विशाल बन में हमें मातेश्वरी ने पहुंचाया है। हमें मातेश्वरी की पूजा करनी होगी। हम सबसे प्रथम उसी की पूजा में हमें रत्त रहनाहै, क्योंकि उसी के वाक्यों का पान करके हमें तपस्वी बनना है, अपने को तपस्या में परणित कर देना है। क्योंकि संसार का इतना वेभव है संसार की इतनी संकीर्णताएं हैं, उन्होंने संकीर्णता के ऊपर कोई अपना प्रकाश नहीं दिया हैं उन्होंने ऊर्ध्वा में और देखो, वह व्यापकता का एक उपदेश दिया है। ब्रह्मचारी मौन हो गए और मातेश्वरी माता अरुणधती मौन हो गई।

तो अब ऋषिवर दीक्षान्त उपदेश देने के लिए महर्शि वशिष्ठ मुनि महाराज उपस्थित हुए और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा अपने विचारों की उन्होंने भूमिका बनाई और भूमिका रख करे कहा कि हे ब्रह्मचारियों! आज तुम्हें देवी अरुणधती ने जो तुम्ळें जीवन भरजब से तुम विद्यालय में प्रवेश हुएण् हो यागों का चयन कराती रही हैं उसी में ब्रह्मयाग, विष्णु याग, रुद्र याग देखो, और भी नाना जैसे अश्वमेध याग है वाजपेयी और देखो, महा अग्निष्टोम यागों का वर्णन, देवी याग के वर्णन में लगी रहती थी। जिस काल से तुमने विद्यालय को अपनाया है, विद्यालय की भूमि में तुमने अपने ज्ञान को उपार्जन करने का प्रयास किया है। वह माता अरुणधती यागों का चयन कराती रही है। परन्तु देखो, आज मैं इसलिए उपस्थित अपने विचार देने के लिए तत्पर हूँ क्योंकि तुम इस विद्यालय को त्याग रहे हो और विद्यालय को जब ब्रह्मचारी त्यागता है तो ब्रह्मचारी को दीक्षान्त उपदेश दिया जाता है। और जो अपना मन्तव्य आज आचार्य प्रगट करा देता है। ब्रह्मचारी उसको अपने में धारण करे ब्रह्मवर्चोनी का पठन पाठन करने लगता है।

मुझे स्मरण आता रहता है ब्रह्मचारियों! एक समय मैं भ्रमण करता हुआ सोमकेतु राजा के राष्ट्र में मैं पहुंचा। परन्तु देखो, केवल मुनि भारद्वाज अपने विद्यालय में दीक्षान्त उपदेश दे रहे थे। जब मैं राजा के द्वार पर पहुंचा, तो राजा ने कहा कि महाराज! भारद्वाज गोत्र में आज दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा है, विद्यालय में और मुझे निमन्त्रित किया है। हे! प्रभु आप भी मेरे साथ में गमन कीजिए। तो मेरा जब विद्यालय में, कदली बनों में प्रवेश हुआ, तो वहाँ दीक्षान्त उपदेश चल रहा था। महर्षि सोमकेतु महाराज ने मगलम् प्रचहे लोकाम् वभीव्रताम् वशिष्ठ मुनि महाराज जब आसन पर उद्दित हुए तो ऋषि मुनियों ने स्वागत किया। वशिष्ठ कहते हैं जब मेरा स्वागत हुआ तो मैं मौन हो गया। देखो, बिना निमन्त्रण के जा पहुंचा उसमें मेरे स्वागत का महत्त्व नहीं था, परन्तु जब दीक्षान्त उपदेश प्रारम्भ हुआ, तो भारद्वाज मुनि ने मेरा नामोकरण उदित किया कि प्रभु आप दीक्षान्त उपदेश प्रारमभ कीजिए। तो वहाँ विज्ञान के ऊपर दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा था, दीक्षा दी जा रही थी, तब मैंने एक उपदेश दिया था उस काल में और यह कहा था तुम ब्रह्मचारिष्यामी जब आचार्य ने मेरे से पूर्व उच्चारण करने वालों ने देखो, ब्रह्मचारिष्यामी का उपदेश दिया तो मुझे उसके ऊपर अपना कुछ वाक्य उच्चारा करना था। मैंने कहा हे ब्रह्मचारियो! ब्रह्मचरिष्यामि एक शब्द संसार में जिसको कहते ब्रह्मचरिष्यामि। देखो, ब्रह्मा और चरि क्योंकि ब्रह्म नाम परमपिता परमात्मा का जो सर्वत्र सुबका नियन्ता, निर्माण करने वाला है और चरिब्रह्मावाचे देखो, चरि से निर्माण करता है निर्माण करने वाला ब्रह्म, हृदय को जड़ी से सर्वत्रता का निर्माण करता है। जितना ये ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है, वो चाहे सूर्य मण्डल है चाहे जऊ है चाहे नाना प्रकार की आकाश गंगाएं हैं, आकाश गंगाओं में जितना भी लोक लोकान्तरवाद है, जितना भी सूर्य, चन्द्रित आदि लोक लोकाश्रित उसका जो निर्माण है, उसके निर्माण का यदि कोई स्रोत है तो वो जड़ी है परन्तु देखो, उनको जो भिन्न भिन्न यपों में परणित करा रहा हैवो प्राण सूत्र कहलाता है। वो मनस्तत्व है प्राण सूत्र है और प्राण सूत्र भिन्न भिन्न रूपों में उनको गति करा रहा है। परन्तु देखो, जब मुझे ये भान हुआ जब मैंने अपने योगावस्थादित हो करके इसको दृष्टिपात किया, तो मुझे दीक्षान्त उपदेश देने में

बल प्राप्त हुआ और मैंने अपने बल पूर्वक ये कहा है। ब्रह्मचारियों! तुम्हें दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा है कि तुम ब्रह्मचारियों! तुम्हें दीक्षान्त उपदेश दिया जा रहा है कि तुम ब्रह्मचरिष्यामि ब्रह्मा की पूजा करने वाला अथवा ब्रह्म को क्रियात्मक कहलाता है वो ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। परन्तु जब तक ब्रह्मचर्य का पालन नही करता, ब्रह्मचरिष्यामि नहीं बन पाता जब तक पूर्णरूपेण को प्राप्त नहीं होता है। ब्रह्मवर्चोसि, ब्रह्मचरिध्यामी वेद का ऋषि कहता है तो मैंने कहा हे ब्रह्मचारियों! तुम्हें इस ब्रह्मचरिष्यामि को अपना करके विज्ञानके क्षेत्र में रमण करना है, क्योंकि विज्ञान का क्षेत्र भी ब्रह्मचरिष्यामि है। जितना भी अणुवाद, परमाणु वाद जितना भी तरंगेवाद को जानना है, वो जानता हुआ सब चरी का सूत्र कहलाता है वो चरी का रूप कहलाता जाता है। परन्तु वो जो परमाणु में गति दी जा रही है वह जो गति वान हो रहा है वही प्राणसूत्र उसमें पिरोया हुआ है। इसीलिए प्राणाम ब्रह्मवाचे इसी को तुम्हें जानकर के ये प्राण भिन्न भिन्न रूपों में दृष्टिपात आता रहा है। कहीं ये ही प्राण ऊर्ध्व के रूप में आकर, ध्रुवा के रूप में, कहीं यही प्राण अक्षरों में जैसा वेद का सूत्र कहता है कि यही प्राण कहीं अपान में दृष्टि, कहीं उदान में दृष्टि, कहीं समान में कहीं देखो, नाम और देवदत्त कूर्म, कक्कल और धनंजय में दृष्टिपात आता रहता है। यह दस रूप वाला जो प्राण है यही प्रकृति के कणों को विभक्त कर देता है और विभक्त करके इसको तुम्हें जाना ही विज्ञान में प्रवेश करना है। जिसने दसों रूपों के प्राणों को जान लिया है और प्रकृति के चरि के कणों को विभाजन करने वाले प्रतों ब्रह्मवाचाह मनस्तत्व माना गया है परन्तु दोनों का समन्वय ही तो उसकी विभक्तता में परणित हो जाता है। तो वही विज्ञान नाना प्रकारक े विज्ञान के रूपों में ब्रह्माण्ड अणुओं में दृष्टिपात आने लगता है।

तो मेरे प्यारे! मैं कहाँ चला गया हूँ। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपना यह उपदेश देकर के ये कहा कि तुम्हें वैज्ञानिक बनना है, प्रत्येक वस्तु को विज्ञान में लाना है जैसे आपोजल है, आपोजन ही माता के गर्भ में प्रवेश होते ही एक बिन्दु में एक शिशु प्रवेश होता है, देवताजन सर्वत्र शिशु को अपनाकर ही एक मनुष्य के रूप में परणित हो जाता है वही नाना प्रकार की योनियों के रूपों में योनित हो जाता है। वही भिन्न भिन्न रूपों

में एक ही रूप है, जो भिन्न भिन्न रूप में दृष्टिपात आता रहता है। वशिष्ठ मुनि बोले कि जब मैंने ये उपदेश दिया तो वही दीक्षान्त उपदेश मैं तुम्हें दे रहा हूँ कि तुम्हें वैज्ञानिक बनना है, तुम्हें विज्ञान के रूप में प्रवेश करना है तो तुम्हें पृथ्वी से ऊपर उत्थान करते हुए चंद्रलोक में, चंद्रलोक से उत्थान करते हुए देखो, बुद्ध में, बुद्ध से उत्थान करते हुए तुम मंगल में, मंगल से उत्थान करते हुए स्वाति में उत्थान करते हुए तुम कृमित लोकों में, कृमितलोकों में उत्थान करते हुए महतिलोकों में, महतिलोकों से उत्थान करते हुए श्वेतकेतु लोगों में, स्वेतकेतु लोकों से उत्थान करते हुए सूर्य लोगों में, और सूर्य लोक से उत्थान करते हुए ध्रुव लोक में सब तुम्हें गति करनी है। यह उपदेश दे करके और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में मौन हो गए और वशिष्ठ ने मौन होकर पुनः एक वाक्य कहा तुम अपने में ब्रह्मचरिष्यामि बन करके राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनानाहै क्योंकि ये उपदेश जो मैंने विज्ञान का दिया है इस विज्ञान के साथ साथ यदि तुम्हारा राष्ट्रीय कण प्रजा का सुंदर नहीं होगा, तो ये विज्ञान ये लोकों में यातायात तुम्हारा देखो, निष्फल हो जाएगा, क्योंकि यह यातायात उस काल में प्रिय लगेगा जब तुम्हारे राष्ट्र में शान्तना की, चरित्रता का जन्म हो जाएगा और राष्ट्र में यदि समाज में चरित्रवाद और प्रतिभा महानता का जन्म नहीं होता तो इस विज्ञान के देखो, ऊर्ध्वा में जाने से राष्ट्र समाज को लाभप्रदता नहीं प्राप्त होंगी। ये केवल विज्ञान का दुरूपयोग हो करके तुम्हारे रक्त परिक्रान्ति का अवशेष बन करके तुम्हारा समाज अग्नि के मुख में परणित होता चला जाएगा। तो वशिष्ठ जी यह उच्चारण करके मौन हो गए और मौन हो करके माता अरुणधती ने कहा ब्रह्मचारियों! आज तुम्हें ये दीक्षान्त उपदेश दिया है इसके ऊपर तुम्हें विचार करना है अपने जीवन को क्रियात्मक जो क्रिया कलाप तुमने विद्यालय में अपने में धारणा अपने में धारणा प्रवेस्तही अपने में क्रिया में लाने के लिए तुम्हें आगे प्रयास करना है। देखो, प्रातःकाल याग करना है, अपने राष्ट्र की प्रतिभा में याग को लाना है, परन्तु याग के पश्चात् वाजपेयी यागों में परणित हो करके तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाओ, जिससे याग की उत्पत्ति हो करके नाना प्रकार के खनिज पदार्थों को जान करके तुम अपने राष्ट्र कासे ऊँचा बनाते रहो, ऐसी मेरी सदैव कामना रहती है। हमारी

यह कामना है, अब तुम्हारा विद्यालय का पाठ शिक्षा का समाप्त हो गया।

जब भगवान राम ने इन वाक्यों को श्रवण किया, तो राम ने एक प्रश्न किया कि हे भगवन्! क्या हम वैज्ञानक बनें या हम राष्ट्रीयवेत्त बनें। हम कौन सी प्रतिभा को अपनाने के लिए तत्परहों। महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि तुम्हें सर्वत्र रूपों में अपने को ले जाना है, क्योंकि यदि योग नहीं होगा तो तुम्हाराजीवन महान् नहीं बनगा। यदि तुम्हारे में ब्रह्मचर्य नहीं होगा तो राष्ट्र को तुम ऊँचा नहीं बना सकते। यदि तुम्हारे में विज्ञान नहीं होगा तो राष्ट्र में तुम गति ही नहीं कर सकोगे और यदि तुम्हारे यहाँ जानकर उपासना नहीं होगीतो विद्वत् समाज को जन्म नहीं दे सकेगा। महर्षि वशिष्ठ ने यह वाक्य उच्चारा करके पुनः मौन हो गए। परन्तु राम ने पुनः यह प्रश्न किया कि भगवन्! क्या राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी होना अनिवार्य है? महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, हे राम! यदि राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी नहीं रहेगा तो राजा का राष्ट्र आज नहीं तो विडम्बनामयी, अज्ञानमयी समाज बन करके अग्नि के मुख में चला जाएगा। परन्तु देखो, बुद्धिजीवी प्राणी ही समाज को ऊँचाबनाते हैं, राष्ट्र कीसमय समय पर राष्ट्र को ऊँचा दिशा प्रदान कर देते े, और राष्ट्र राजा और प्रजा दोनों मिल करके अश्वमेध याग में परणित हो करेराष्ट्र को ऊँचा बनाते हैं। भगवान् राम ने कहा कि हे प्रभु! योग से राष्ट्र का क्या सम्बन्ध है? उन्हेंने कहा येग से तुम क्या अपने में अनुाव करते हो? उन्हेंने कहा हम योग योगाभ्यास याम्भविते देवाः। तो वशिष्ठ मुनि बोले कि योग से राष्ट्र का ये सम्बन्ध है कि जितने योगाचार्य होंगे उतना ही राष्ट्र का राजा के राष्ट्र में स्वास्थ्य विप्र महान् बनेगा। यदि स्वास्थ्य ऊँचा नहीं रेगा रूग्ण समाज रहेगा, तो राजा के राष्ट्र में सदैव चिंता बनी रहेगी। राम देखो, ! राजा के राष्ट्र में इसलिए योगाभ्यासी प्राणी होने चाहिए, जो योगाभ्यासी प्राणी होते हैं परन्तु जैसे विद्यालय में ब्रह्मचारियों को प्राण की प्रतिक्रियाओं में रत्त कराया जाताहे क्योंकि वह ब्रह्मचारी अपने में चरि कापालन कर सके, परमात्मा काचिन्तन करसके। परन्तु देखो, वो सुखद को अनुभव करता है, और जब तक मानव का शरीर स्वस्थ रहता है, तब तक देखो, वह अपने में आनंदम् भोग करता है राम ने कहा कि हे प्रभु! जैसेहमने बाल्यकाल से विद्यालय में युवाकाल तक याग किया है। आगे हमारे

याग का क्या तात्पर्य बन जाता है? उन्हेंने कहा हे राम! देखो, याग की प्रतिक्रियाएं हं तो गृहे में प्रवेश हो करके वे क्रिया में लाना बहुत अनिवार्य है। जब पति पत्नी याग करते हैं गृह में याग करते हैं, वो गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कही जाती है, उन याग के करने से तुम्हारे हृदय में पवित्रता आतीहै, उन याग के करने से तुम्हारे हृदय में पवित्रता आती है। राजा के राष्ट्र में प्रजा में महानता आती है, अग्नि के दुख में जब हम हत प्रदान करते हैं, वह अग्नि निगल कर देवताओं को प्रदान कर देती है और देवता समय समय पर वृष्टि करते तो नाना प्रकार का अन्न और खाद्य और खनिज पदार्थों को जन्म हो जाता है। इसीलिए देखो, राजा को, प्रजा को सभी को यह चाहिए क्योंकि संसार में जब माता के गर्भस्थल में शिशु पव्रवेश होता हेतो माता याग करती है, पित्र याग करताहैतब दोनों याग करते हैं स्वाहाकरते हैं वही स्वाहा शिशु के रूप में बाल्य के रूप मकें आता है। वही बाल्य जब स्वाहा की प्रतिभा का गान गाता हुआ वैज्ञानिक बन करके पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करताहै, नाना प्रकार के खनिजों को जान करके धातु पिपाद को जान करे विान राष्ट्र काप्राण कहलाता है। राष्ट्र को प्रजा को ऊँचा बनाने वालावह विज्ञानमयी स्वेत क्रिया कलाप कहलाया जाता है।

जब वशिष्ठ ने इस प्रकार का उपदेश दिया तो राम पुनः मौनहो करे और पुनः बोले कि प्रभु यह भी मैंने स्वीकार कर लिया परन्तु देखो, विज्ञान और लोकों में जाने का हमारा क्या तात्पर्य है? यदि हम समाज को ऊँचाबना लें राष्ट्र को चरित्रवान बना लजें, महान् बना लें, तो अणु और परमाणुओं को मिलान की हमें क्या आवश्यकता है। तब उन्होंने कहा क हम अपने मानवीयता को ऊँचा बनाने के लिए राष्ट्र को विकासदायक बनाने के लिए नाना प्रकार के अणु और परमाणुओं का निर्माण करते हैं, यन्त्रों का निर्माण करते हैं, संग्राम होने लगे, परन्तु देखो, एक राजा दूसरे से आक्रमण करने गये, परन्तु यदि आक्रमण भी न करे तो मानव का स्वभाव है ऊँची ऊँची उड़ान उड़ना और उस ज्ञान और विज्ञान की अपने में क्रियात्मक लाने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है। उसी प्रतिक्रिया में लगा रहता है क्योंकि मानव की नई नवीन नवीनता को एक ज्ञान है विज्ञान है, जो एक रसव रहने वाला उसको अपने में लाना चाहताहै, अपने में समेटना चाहताहै।

समेट करके प्रभु के विज्ञान में रत्त रह करके प्रभु को प्राप्त होना चाहताहै। यह वशिष्ठ मुनि महाराज ने इस प्रकार का उपदेश देकर के दीक्षान्त ऋशि मौनहो गए। बेटा! मैं कल दीक्षान्त भाषण की चर्चाएं लोमश और कागभुषंड जी जो कहते थे दीखान्त उपदेश की वे चर्चाएं मैं तुम्हें कल प्रकट करूंगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मुनिवरों! देखो, मानव ज्ञान कर्म उपासना में सदैव तत्परहो जाए। प्रभु को अपना वरणीय स्वीकार करे उसको वरुण उसका वर्णन करने को उसी को प्राप्त होना है। यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभ्रिपाय यह है कि हे मानव! तू अपने में मानवीयता को ऊँचा बनाने के लिए ऊँची ऊँची उड़ान उड़ाने का प्रयास कर, इससे तेरा जीवन महान् बने। ये है आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं इससे आगे के विद्यालय की चर्चाएं कल मैं शेष प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त वेदों का पठन पाठन। दिनांक 15 9 84 समयसायं 4 बजे ग्रामआकलपुर

६ 16 09 1984 पुष्प 53 राजाजनक की सभा में महर्षि याज्ञवल्क्य गार्गी संवाद

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आता रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात आता रहा है। प्रत्येक वेद का मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, जिस प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गाता रहता है। जिस भी वेदमन्त्र के ऊपर मानव किसी भी काल में विचार विनिमय करने लगता है और उसमें गम्भीर तप में हो करके चिन्तन करना प्रारम्भ करता है, तो उस

परमपिता परमात्मा का ब्रह्माण्ड में इस रूप का वर्णन अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान का वर्णन हमें प्राप्त होता रहता है। एक एक वेदमन्त्र के ऊपर ऋषिमुनियों ने प्रायः अनुसन्धान किया। ब्रह्मवर्चोसि को अपनाते हुए अपने में देवतव को प्राप्त करने वाला ही वेद की ध्वनि को अपने में समाहित कर लेता है।

हमने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें बहुत सी वार्त्ताएं वर्णन कीं। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र विष्णु की विवेचना कर रहा था। हमारा यहाँ विष्णु का केवल एक ही अभिप्राय है, विष्णु कहते हैं जो पालन करने वाला है। याग का नाम भी विष्णु माना गया है यजोमयी विष्णु। जहाँ यजोमयी विष्णु का वर्णन आता है, वहाँ माता का नामोकरण भी विष्णु के नामों से वर्णन किया जाता है। परन्तु जहाँ विष्णु की विवेचना आती रहती है, वहाँ माता वसुन्धरा का वर्णन भी आता रहता है। वेद का ऋषि कहता है हे माता! तू वसुन्धरा है, तेरे गर्भस्थल में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड वशीभूत हो रहा है। हमारे वैदिक साहित्य में जब ऋषि मुनि विचारने लगते हैं। तब नाना पर्यायवाची शब्दों की विवेचना आने लगती है। वसुन्धरा के नाना पर्यायवाची शब्द है, जैसे हमारे यहाँ धेनु के शब्द हैं, इसी प्रकार वसुन्धरा नाम मेरे प्यारे! प्रभु को कहा गया हैं वसुन्धरा नाम जननी माता को कहा गया है, और वसुन्धरा नाम इस पृथ्वी को कहा गया है। जब इसके ऊपर विवेचना करना प्रारम्भ करते हैं और वेदों के मन्त्रों की ध्वनियां होने लगती हैं और चिन्तन करने वाला चिन्तन करता है, तो फिर वसुन्धरा ही वसुन्धरा दृष्टिपात आने लगती है। आज हमारे वैदिक मन्त्रों में कुछ शिशु का वर्णन हो रहा था। शिशु की विवेचना में हम जाना नहीं चाहते हैं। संक्षिप्त परिचय अवश्य देना चाहते हैं। हमारे यहाँ शिशु नाम शिशोभवी सम्भवा देवाः। माता के गर्भस्थल में जब एक बिन्दु प्रवेश करता है और बिन्दु में भी एक शिशु होता है। परन्तु वह जो शिशु जहाँ माता के गर्भ में प्रवेश हुआ, वह शिशु इतना शक्तिशाली है कि सर्वत्र देवता उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं। शिशु के प्रवेश होते ही सूर्य प्रकाश देने लगता है, चन्द्रमा अमृत बहाने लगता है, वायु प्राण देने लगती है, अग्नि तपाने लगती है और अन्तरिक्ष अवकाश देने लगता है। वह तारा मण्डलों की माला बन जाती है। लोक लोकान्तर जितना यह ब्रह्माण्ड है, यह सब उसके

समीप विद्यमान हो जाता है। वह शिशु कैसा महान् है। माता के गर्भस्थल में विद्यमान होता है। परन्तु वह जो परमपिता परमात्मा जो सर्वत्र जगत् का नियन्त्रण, निर्माण करने वाला है वह निर्माण कर रहा है। माता के गर्भस्थल में निर्माण कर रहा है। मेरी भोली माता को ज्ञान नहीं है कि कौन निर्माण कर रहा है। परन्तु बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ दो नाड़ियों का निर्माण हो जाता है। वह शिशु कितना महावृत्ति कहलाता है।

विचार क्या मुनिवरों! कहीं मन की नाना प्रकार की धाराएं बन रही हैं। एक ही मन की धारा मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, अन्तःकरण का निर्माण हो रहा है। कहीं मस्तिष्क का निर्माण हो रहा है, कहीं लघु मस्तिष्क का निर्माण हो रहा है, कहीं स्वेती मस्तिष्क का निर्माण हो रहा है। तीन प्रकार के मस्तिकों का निर्माण हो रहा है। कहीं बुद्धि के नाना प्रकार के भेदन माने गए हैं। बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञाभि का निर्माण हो रहा है। वह प्रभु कितना महान्, कितना निर्माणवेत्ता हैं वो शिशु के आंगन में, शिशु के गृह का निर्माण कर देता है। कोई शिशु माता के गर्भस्थल से पृथक् हाकर के इस ब्रह्माण्ड में मानव पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करता है। हे मां पृथ्वी! तू कितनी महान् है, तू नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थो को प्रदान करती रहती है। इस पृथ्वी के गर्भ में कौन सी वस्तु नहीं है। कहीं अग्नि के परमाणु इसमें रत्त हो रहे हैं, अग्नि का भण्डार ही दृष्टिपात आता रहा है। जिस भी काल में वैज्ञानिकों ने इस पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश होकर के चिन्तन किया और उसके गर्भ में पहुंचे हैं, तो एक ब्रह्माण्ड, नवीन ही दृष्टिपात आने लगता है। कहीं खनिज पदार्थो का निर्माण हो रहा है तो कहीं खाद्य पदार्थो का निर्माण हो रहा है। पृथ्वी के गर्भ में कहीं जल को शक्तिशाली बनाया जा रहा है, कहीं स्वर्ण के परमाणुओं का आदान प्रदान हो रहा है, कहीं रत्नों की धातु का निर्माण हो रहा है। इस मां के गर्भ में कौन सी वस्तु नहीं है। इसीलिए इसको वेद वसुन्धरा के नामों से वर्णन कर रहा है। यह माता वसुन्धरा कहलाती है, जिसके गर्भ में जाने के पश्चात् अपने में रत्त हो करके जब ये चिन्तन करता है कि कैसी भोली और पवित्र ममतव को धारण करने वाली हैं मानव शिशु के रूप में माता के गर्भ से पृथक् हुआ, परन्तु वही बालक

जब माता पृथ्वी की गोद में आने के पश्चात् इसके आंगन में आ जाता हैं, तो यह नाना प्रकार की प्रतिभा को प्रदान कर देती है। वही युवा हो जाता है, वही वृद्धपन को प्राप्त होता है। यह माता वसुन्धरा की गोद में नाना प्रकार का अन्वेषण करने वाला वैज्ञानिक जब विज्ञान के युग में प्रवेश करता है तो इसे नाना प्रकार का धातु पिपात प्रतीत होने लगता है। नाना ब्रह्माण्ड इसी के आश्रित हो करके गति करने लगता है। जब वैज्ञानिकों ने यह विचारा कि यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा कैसे गा रही है, क्योंकि वेद का मन्त्र कहता है कि यह पृथ्वी भी ब्रह्माण्ड की गाथा गाती है तो वेद का ऋषि कहता है। मुनिवरों! यह जो पृथ्वी है यह कैसी विशाल है। तीस लाख पृथ्वियां हैं जो सूर्यमण्डल में ओत प्रोत हो जाती हैं। मैंने ओत प्रोत की चर्चा कई काल में प्रगट की हैं, आज भी मैं ओत प्रोत की क्या, वेद का मन्त्र इस प्रकार का पुनः से आ रहा है। तीस लाख पृथ्वियाएं सूर्य मण्डल में ओत प्रोत हो जाती हैं। यह सूर्यमण्डल इतना विशाल है, इसमें तेरह लाख पृथ्वियां समाहित हो जाती हैं। किन्हीं आचार्यों ने तेरह लाख पृथ्वियां समाहित हो जाती हैं, किन्हीं आचार्यों ने तरह लाख का वर्णन किया। परन्तु जब और गम्भीरता से अध्ययन किया गया तो तीस लाख पृथ्वियां इस प्रकार की हैं, जो इस सूर्यमण्डल में ओत प्रोत हो जाती हैं। मुनिवरों! एक सहस्त्र सूर्यमण्डल इसमें संभव देवभ्रामव्रत वृहस्पति लोकाम् यह बृहस्पति ओत प्रोत हो जाते हैं। एक सहस्त्र बृहस्पति है जो इस स्वाति नक्षत्र में ओत प्रोत हो होते हैं। एक सहस्त्र स्वाति नक्षा हैं जो ध्रुव मण्डल में ओत प्रोत हो जाते हैं। एक सहस्त्र ध्रुव मण्डल हैं, जो एक मूल नक्षत्र में ओत प्रोत हो जाते हैं। मूलाम् ब्रह्मःवाचोहो हिरण्यम् वृथ प्रवहा लोकाम् वाचन्नं वृत्ति वेद का आचार्य कहता है कि एक सहस्त्र मूल नक्षत्र पुष्य नक्षत्र, में ओत प्रोत हो जाते हैं। एक सहस्त्र पुष्य नक्षत्र है जो हिरण मंगलो वाचि कि लोकों में ओत प्रोत हो जाते हैं। एक सहस्त्र हिरणाय लाचक मण्डल, अचल मण्डल में ओत प्रोत हो जाते हैं। एक सहस्त्र अचल मण्डल हैं जो स्वाम वाचिक लोकों में ओत प्रोत हो जाते हैं। एक सहस्त्र वाचिक मण्डल, गन्धर्व लोकों में ओत प्रोत हो जाते हैं। एक सहस्त्र गन्धर्व मण्डल, इन्द्र में ओत प्रोत हो जाते हैं। तो यहाँ लोकों की सीमाबद्ध हो करके इतने मण्डलों का एक सौर मण्डल बन

जाता है। जो सौर मण्डल हैं वह आकाश गंगा में रत्त हो करके एक आकाश गंगा में, एक निहारिका में, एक सौर मण्डल नहीं, दो नहीं, परन्तु वेद के ऋषियों को समाधि में कहीं विज्ञान के क्षेत्रों में प्रवेश करते हुए ऐसे अरबों, खरबों सौर मण्डल एक ही निहारिका में दृष्टिपात आते रहते हैं। तो प्रभू का जो यह ब्रह्माण्ड है, यह कितना अनन्तमयी माना गया है। परन्तु आगे चिन्तन करने वालों ने कहा, जिस निहारिका में अरबों, खरबों सौर मण्डल गति करते हैं ऐसे निहारिका ऋषि मुनियों को नौ सौ बहत्तर आकाश गंगाएं निहारिकाएं उन्हें दृष्टिपात आती रही हैं।

मैं विशेष विवेचना में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। आज मैं विज्ञान के युग में तुम्हें ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। विचार केवल यह देने के लिए आया हूँ कि यह जो पृथ्वी है, यह ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। क्योंकि ब्रह्माण्ड की गणना का, ब्रह्माण्ड को जानने के लिए, जो मानव तत्पर होता है वह पृथ्वी से हुआ करता है। यह पृथ्वी क्योंकि गुरूतव प्रमाणि वाच की कहलाती है, इसलिए यहाँ से ही प्रारम्भ करता है मानव। जैसे यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस महान् देव की गाथा का वर्णन कर रहा है। जब यह मानव इस पृथ्वी से उपराम होता है तो माता वसुन्धरा जो चेतना हे, प्रभु है, उसके गर्भ में वह ओत प्रोत हो जाता है। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला वह मेरा देव है। अनुपम है, वही तो सर्वत्रता में धारण कर रहा है। यह वार्त्ता तो मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन की हैं। वेद का मन्त्र नाना प्रकार की गाथा गाता रहता है। मुझे स्मरण आता रहता है जब सूर्य की गणना करने वाले सूर्यो की गणना करने लगे तो अरबों, खरबों में की। यह अगणित सूर्यों में चले गए। परन्तु इसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड अनन्तमयी माना गया है। इसका स्वामीतव प्रभु करता है। इसको धारण करने वाला वह प्रभु है। जैसे यह मानव ब्रह्मवाचो माता अपने गर्भ स्थल में हमें धारण करती है। माता के गर्भ से पृथक् हुए तो पृथ्वी माता की गोद में आ जाते ही यह नाना प्रकार के खाद्य खनिज पदार्थों से हमारा पालन कर रही है। नाना प्रकार का वनस्पति विज्ञान इसी के आश्रित रहता है, जिसको जान करके वनस्पति विज्ञान को वैद्यराज अपने में उड़ान उड़ते हुए वैद्यराज बन जाते हैं। विचित्र बन जाते हैं। अश्वनी

कुमार जैसे वैद्यराज बनते हैं। राजा रावण के यहाँ सुधन्वा जैसे वैद्यराज बन करके जिनके स्वप्रवत् में औषधियां अपने गुणों का वर्णन करती रही हैं। केवल विचार विनिमय क्या? वह जो प्रभु है, जो चैतन्य है, जो संसार का भी पति है, उसमें यह मानव, सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओत प्रोत हो जाता है। इसी में मानव रत्त रह करके अपनी गाथा का वर्णन करता रहता है।

आज का वेद का ऋषि कहता था कि विष्णु यजोमयी वह विष्णु भी है। वे ममतव की धारण करने वालीमाता है जो हमें सर्वत्रता में धारण कर रही है। जीवन सत्ता है, वह यज्यमयी स्वरूप मानी गई है। उस परमपिता परमात्मा के ऊपर हम अध्ययन करने लगते हैं, चिन्तन करने लगते हैं, तो चिन्तन में यही आता है कि शून्यबिन्दु है, और विकास है। विकास का जो लोप होता है वह शून्य बिन्दु में होता है। विकासवाद का विकास होता है तो बिन्दु से हुआ करता है। शून्य बिन्दु में प्रवेश होना और शून्य बिन्दु में उसका लय होना प्रवेशाम लेवव्रहे और उसी से विकास की प्रतिभा का जन्म होता है। मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ बहुत पूर्व काल से तुम्हें दीक्षांत उपदेश देता चला आ रहा हूँ। दीक्षा के सम्बन्ध में बहुत सीचर्चाएं आती रहती है। दीक्षा के सम्बन्ध में नानाप्रकार की विवेचनाएं मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन की है। परन्तु आज मैं दीक्षा के सम्बन्ध में न जाता हुआ, यह वाक् तो मैं तुम्हें किसी द्वितीय काल में प्रगट करूंगा, आज का विचार तो केवल हमारायह चल रहा था कि विष्णु यजोमयी विष्णु। यह जो संसार रूपी याग हो रहा है, यह विष्णुमयी प्रतिभा का स्रोत कहलाता है।

जो कई काल में मैं तुम्हें चर्चा करता रहता हैं, कई काल में तुम्हें विवेचना देता रहता हूँ, आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाने के लिए आया हूँ, हमारे यहाँ राजा समाज को कैसे ऊँचा बना सकते हैं। क्योंकि हमारे यहाँ जो धीराज जो राष्ट्रीय निर्माण की प्रणाली है, उस प्रणाली में यह कहा गया है कि राजा को भी नाना प्रकार के यागों में संलग्न रहना चाहिए। हमारे यहाँ राजा जनक हुए हैं, राजा जनक के यहाँ तुमने दृष्टिपात किया होगा, राजा जनक के यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के यगों का चयन होता रहता था। उनके यहाँ देवयाग, ब्रह्मयाग होते थे। ब्रह्मयाग में ऋषि मुनि एकत्रित हो करके ब्रह्म की चर्चा

करते रहते थे। और ब्रह्म की विवेचना में परणित रहते थे।

मैं उसी क्षेत्र में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! महानन्द जी इन वाक्यों को बड़े चि वक्रतम् ब्रह्मवाचोः अव्रतहे इसको श्रवण में लाते रहते हैं। मैं भी, बारम्बार इन वाक्यों की पुनरुक्तियां करता रहता हूँ। और वह पुनरुक्तियां क्या है? राजा जनक की सभा में राजा जनक ने एक समय ब्रह्मवेत्ताओं की परीक्षा के लिए एक नियमावली बनाई, एक कृति बनाया। उन्होंने एक आलांकारिक रूपान्तरित किया। एक सहस्त्र गऊओं के सींगों पर स्वर्ण मढ़ करके, उन्होंने कहा कि जो तुम में ब्रह्मवेत्ता है, गऊओं को अपने आश्रम में ले जा सकता है। ऐसा मुझे स्मरण है कि मुनिवरों! किसी ब्राह्मण का या ब्रह्मवेत्ता का साहस न हुआ कि इन गऊओं को अपने आश्रम में ले जाएं। कुछ समय के पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने विद्यालय में से गमन किया और विद्यालय से गमन करके गमन ब्रह्मवाचा प्रहे लोकाम् उनके द्वारा कुछ ब्रह्मचारी थे, जिनमें यज्ञदत्त सोमकेतु ऋषि महाराज, ब्रह्म वाचो कृति यह नाना ब्रह्मचारी उनके समीप थे, ब्रह्मचारी कबन्धी भी विद्यमान थे। याज्ञवल्क्य ने सबसे प्रथम सभा में आते ही कहा इन गऊओं को अपने आश्रम में ले जाओ। यज्ञदत्त ब्रह्मचारी कवन्धी दोनों ने गऊओं को ले करके अपने आश्रम को गमन किया।

अब ब्राह्मणों में, ब्रह्मवेत्तओं में एक क्रान्तिमयी जीवन बन गया। प्रत्येक अपने में विचारने लगा। यह क्या हो रहा है? महात्मादिग्ध ने कहा कि तुम यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि भगवन्! क्यों यह आश्रम में गऊ जा रही है, विद्यालय में इनका दुग्ध ब्रह्मचारी आहार करेंगे। मैं तो इस सम्बन्ध से इनको गमन करा रहा हूँ। महात्मा दिग्ध ने कहा ऐसा क्यों कररही हो? उन्होंने कहा कि मैं इसलिए क्योंकि ब्रह्मचारियों के लिए मेरी शुभ इच्छा रहती हैं उनके पुरोहित महात्मा स्वयम् भी विद्यमान थे। महाराजा अस्वल ने कहा कि महाराज! यह तो ब्रह्मवेत्ताओं की परीक्षा है। उन्होंने कहा कि मैं ब्रह्मवेत्ता तो नहीं हूँ, परन्तु तुम बारी बारी मेरे से प्रश्न करो, मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकूंगा अन्यथा मैं मौन हो जाऊंगा। ऋषि ने जब यह वाक् कहा तो महातमा अस्वल ने तीन प्रश्न किए। उन्होंने याग के सम्बन्ध में तीन प्रश्न किए तो तीनों का उत्तर दिया। जब महात्मा अस्वल

मौन हो करके अपने आसन परविद्यमान हो गए, तो चाक्राणी गार्गीउपस्थित हो गयीं और चाक्राणी गार्गीने उपस्थित हो करके कहा कि हे प्रभु! आप अपने को ब्रह्मवेत्ता कहते हों उन्होंने कहा मैं ब्रह्मवेत्ता नहीं कहता, मैं तुम्ळारे प्रश्नों का यथायोग्य, यथोचित्त उत्तर दे सकता हूँ।

उन्होंने कहा तो प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं, प्रश्न करना चाहते हैं आप से, आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देंगे। याज्ञवल्क्य मुनि बोले, आवश्यक नहीं कि मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकूं। यदि मैं जानता हूँगा तो अवश्य दूंगा। ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा गार्गी तुम प्रश्न करो। याज्ञवल्क्य मुनि से कहा हे देव! मैं जानना चाहती हूँ कि यह जो ब्रह्माण्ड ै, यह जो मुझ चारों प्रकार की सृष्टि दृष्टिपात आ रही है यह चार प्रकार की सृष्टि कहलाती है, जिसमें सबसे प्रथम स्थावर, जगम और अण्डज है स्वेदज है, ये चार प्रकार की सृषि्अ कहलाती है, इन चारों प्रकार की सृषि्अयों कीप्रतिष्ड्ढाक्या कहलाती है? प्रतिष्ठायाम् प्रतिष्ठम् मैं इनकी प्रतिष्ठा को जानना चाहती हूँ किस में प्रतिषि्ड्ढत हो जाती है। याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि में तुम्हें संक्षिप्त में उत्तर दूं या विस्तार से। उन्होंने कहा देव मुझे तो संक्षिप्त में ही उत्तर दूं या विस्तार से। उन्होंने कहा देव मुझे तो संक्षिप्त में ही इसका उत्तर दीजिए। तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि यह जो चारों प्रकार की सृष्टि है, स्थावर कहते हैं।

जितना वनस्पति विज्ञान है, जितना वनस्पति सृष्टि है, उसका स्थावर कहते हैं। जो अंडे से उत्पन्न होने वाला प्राणी है उसको अंउज कहते हैं। जो जगम से उत्पन्न होने वाला गर्भजरा अप्रतोहो में होने वाला है, उसको जंगम कहते हैं। और जो अब्रहे जो उद्भिज जल और अग्नि के संयोग उत्पन्न से होने वाला उसको उद्भिज कहते हैं। इसलिएयह चारों प्रकार की जो सृष्टि है इसकी जो मानव वृहे व्रताम् देवाः इसकी जो ओतप्रोतता है, इसकी जो प्रतिष्ठा है, वह पृथ्वी मानी गई है। यह पृथ्वी में ओत प्रोत हो जाते हैं। पृथ्वी ही इसकी ममीव्रभी व्रत कहलाती है। उन्होंने कहा धन्य है भगवन्! मुझे उचित्त उत्तर प्राप्त हो गया। परन्तु यह वाक् तो मेरी प्यारी माता जब मैं माता की लोरियों का पान करती थी, तो माता प्रायः मुझे यही वाक् उच्चारण करती रहती थी, कि यह चारों

प्रकार की सृष्टि पृथ्वी में लय हो जाती है। मैं यह जानना चाहती हूँ कि यह वृहे रुद्रो देवाः ये जो पृथ्वी है, किसमें ओतप्रोत हो जाती है?
उन्होंने कहा देवी! यह जो पृथ्वी हैयह वृहे स्तुत कुप्रजाहा, यह आपो में लय हो जाती है, यह जल में ओत प्रोत हो जाती है। आपो वृहे वृताः उन्होंने कहा आपो किसमें ओत प्रोत हो जाता है? क्योंकि पृथ्वी की चर्चाएं मेरे पूज्यपाद विद्यालय में मुझे प्रवेश कराते रहते थे, मैं इसी विद्या को अध्ययन करती रही, परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ आपो किसमें ओत प्रोत हो जाता है। उन्होंने कहा देवी! यह आपो प्राण वर्धक है। प्राण को देने वाला सत् ऊर्ज्वा को देने वाला है। पवित्रता में परणित करने वाला है। परन्तु यह जो जल है, आपो है, यह अग्नि में ओत प्रोत हो जाता है। अग्नि ही इसकी प्रतिष्ठा मानी गई है। प्रतिष्ठाम् प्रतिष्ठम् प्रतिष्ठायाम् यह इसकी ओत प्रोतता मानी गई है। वेद की विदुषी मौन होकर के बोली कि प्रभु मैं जानना चहाती हूँ कि अग्नि प्रतिष्ठम् ब्रह्म वाचाः। यह जो अग्नि हे तुम्हें प्रतीत हे यह अग्नि कितने प्रकार की है? यही अग्नि ब्रह्मा अग्नि बन करके रहती है, यही अग्नि काष्ठों में रहती है, यही अग्नि मानव के हृदय में वाणी बन करके रहती है, यही अग्नि समिधाओं में परणित हो करके यह याग का मूलक बनी हुई है। यह अग्नि नाना प्रकार अणु और परमाणुओं के रूप में परणित हो जाती है। इसी अग्नि के परमाणुओं को जान करके नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण कर लेते हैं। यन्त्रवादी बन करके लोगों की यात्रा करते है। देवत्ताम् ब्रह्मवाचोः अग्नि में जल ओत प्रोत हो जाता है। उन्होंने कहाप्रभु मैं जानना चाहता हूँ कि यह जो अग्नि है इसको प्रतिष्ठा क्या है? यह किसमें ओत प्रोत हो जाती है। उन्होंने कहा यह जो अग्नि है, यह अग्नि वायु में ओत प्रोत हो जाती है। जहाँ वायु है वहाँ अग्नि है, वहाँ अग्न्याधान हो रहा है। जहाँ वायु नहीं है वहाँ अग्न्याधान भी नहीं होता। अग्नि प्रदीप्त नहीं हो रहीहै परन्तु अग्नि वायु ही गति का मूलक बना हुआ है। जब ऋषि ने यह कहा कि वायु ही प्राणवृहे इस वायु में प्राण रहता है, प्राण सूत्र में सर्वत्र ओत प्रोत रहते हैं, उसी सूत्र में यह ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है। नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में प्रवेश करोगे, तो प्राणसूत्र तुम्हें दृष्टिपात आयेगा। उसी प्राण सूत्र में लां की माला बनी हुई है। नाना तारा मण्डलों की

जो माला बनाती है वह माला भी प्राण सूत्र में पिरोई हुई है। इसीलिए वायु प्राण को देने वाला है वही प्राण सूत्र में पिरोई हुई है। इसीलिए वायु प्राण को देने वाला है वही प्राण शक्ति अग्नि में प्रवेश हो करके अणु और परमाणुओं के रूप में गतिवान। वृहेव्रतो देवाः वेद का ऋषि कहता है हे देवो! देखो, यह तीन प्रकार के परमाणु होते हैं। पृथ्वी परमाणु, जल परमाणु, अग्नि परमाणु इन्हीं तीनों प्रकार के परमाणु को गति देने वाली वायु है और गतिवान् ब्रह्मवाचोः यह वायु ही गति का श्रोत कहलाता जाता है। चाक्राणी बोलो कि प्रभु इस प्राण सूत्र की चर्चा तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे शिक्षा काल में प्रदान करते रहते हैं। मैं जानना चाहती हूँ कि वायु किसमें ओत प्रोत रहती है, यह किसमें प्रतिष्ठित हो जाती है। ये किसमें ओत प्रोत हो जाती है मैं यह जानना चाहती हूँ।

याज्ञवल्क्य मुनि बोले हे देवी! ये जो मानव ब्रह्मवाहाकृति ये जो वायु हैं अंतरिख में ओत प्रोत रहती है। क्योंकि अन्तरिक्ष में यह वायु गति करती है। यह नना प्रकार के शब्दों को लेकर के अन्तरिक्ष में लय कर देती है। मुझे ऐसा स्मरण है याज्ञवल्क्यने कहा कि एक समय मैं गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के आरम में पहुंच गया था। वहाँ से उद्दालक गोत्रीय शिक्षान्तकेतु ऋषि के द्वार पर पहुंचा। तो उन्होंने मुझे एक दृष्य दृष्टिपात कराया कि वह याग करते थे, उन्होंने यन्त्र का निर्माण किया और यन्त्र में अपने पूर्वजों के जो शब्द हैं जों अन्तरिक्ष में गति करते थे, उनका चित्रण करते रहते थे। उनका क्रिया कलाप ही दृष्टिपात होता रहता था। तो हे देवो! मुझे यह भान हुआ कि जो मानव ब्रह्मवाचो देव वृहीवृस्ताः इस वेद मन्त्र की विवेचना में यह आता है कि शब्द नित्य रहता है। शब्द नष्ट नहीं होता, शब्द अन्तरिक्ष में चित्र के सहित रहता है, क्रियाकलाप के सहित रहता है। उनके पूर्वजों की यहाँ इस प्रकार के यन्त्रों में मूझे दृष्टिपात कराया गया और वह यन्त्रम् ब्रह्मवाचो रेवस्ताः वेद का वाक् उच्चारण करते रहते थे और चित्रों का चित्रावलियों में दर्शन करते रहते थे। तो यह जो अन्तरिक्ष है, इसमें वायु अग्नि की धाराओं पर, तरंगों पर, शब्द गति पर, शब्द विद्यमान होता है, प्राण सूत्र में पिरोया जाता है और वह प्राण उससे अन्तरिक्ष में गति करा देता है। अन्तरिक्ष में वह शब्द लय

हो जाता है। परन्तु उनके पूर्वज एक एक पचासवें महापिता का दर्शन करते थे। ऋशि ने जब यह वर्णन कराया तो चाक्राणी मौन हो गई। उन्होंने कहा धन्य है। जब अन्तरिक्ष की चर्चा करने लगे, उन्होंने कहा यह अन्तरिक्ष शून्य बिन्दु में है, यह तत्त्व में ओत प्रोत हो जाताहे। यह तत्त्व की प्रतिभा में प्रतिभाषित हो करके वह ऋषि कुछ मौन होने लगे। परन्तु चाक्राणि मौन होने वाली नहीं थी। चाक्राणी ने यह तो शून्य बिन्दु में प्रवेश कर दिया जगत् को, अब जगत् के विकास की चर्चा करने लगी। उन्होंने कहा प्रभु! यह जो महातत्वेवा की प्रतिष्ठा क्या है? यह किसमें प्रतिष्ठित होता है? उन्होंने कहा यह चन्द्रलोकों में प्रतिष्ठित हो जाता है उसी में ओत प्रोत हो जाता है, और चन्द्रो भवासम्भवा देवो ब्रह्माः वाचप् पऽमृताः यह अमृत को देने वाला है। समुद्रों से समन्वय करता है, अमृतों को धारण करके संसार को शीतल और महानता की अमृत की प्रदानता करता रहता है। चाक्राणी से मौन नहीं रह गया, उन्होंने कहा प्रभु ये व्याख्या तो मैंने बहुत श्रवण की, परन्तु मैं जानना चाहती हूँ कि यह चन्द्रलोक किसमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं?

उन्होंने कहा देवी! यह सूर्य लोकों में ओत प्रोत हो जाते हैं? क्योंकि सूर्यो से इनका विकास होता है, सूर्य में ही लय हो जाते हैं। उसी में प्रतिष्ठों प्रतिष्ठम् ब्रह्मवाचो देवाः यह उसमें ओत प्रोत होते हुए दृष्टिपात आते रहते हैं। जब ऋषि ने इस प्रकार विवेचना प्रगट की, इस प्रकार की व्याख्या प्रारम्भ की, तो वेद की विदुषी ने कहा प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ, यह जो सूर्यलोक हैं यह किसमें ओत प्रोत हो जाते हैं। उन्होंने कहा देवी! यह गंधर्व लोगों में ओत प्रोत हो जाते हैं। े गंधर्व लोक ही इसकी प्रतिष्ठा मानी गई है। गंधर्भः नम ब्रह्मः गंधर्व की कई प्रकार की विवेचनाएं वैदिक साहित्य में आती है। गंधर्व नाम लोगों का भी कहा गयाहै। गंधर्व नाम बुद्धि को भी कहा गया है। जो गान गाने वाला उसको भी गंधर्व कहते हैं गंधर्व में यह सूर्य लोकों की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठम् ब्रह्मवाचो देवाः जब ऋषि ने यह वर्णन किया तो चाक्राणि से मौन नहीं रहा गया।

उन्होंने कहा प्रभु! यह गंधर्व लोक किसमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं? उन्होंने कहा देवी! ये जो गंधर्व है यह इन्द्रलोकों में ओत प्रोत हो जाते हैं। इन्द्र ही इसकी प्रतिष्ड्डा कहलाती है, उसी में ओत प्रोत होने वाली प्रहाः अस्वत कहलाया गया है। चाक्राणी बोली हे प्रभु!

वह इन्द्र किसमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं। उन्होंने कहा देवी! यह जो इन्द्र हैं, यह प्रजापति में ओत प्रोत हो जाते है। प्रजापति में प्रतिष्ठि प्रतिष्ठम् ब्रह्म वाचोः। यह इनद्र ही प्रजापित में ओत प्रोत हो जाते हैं। प्रजापित ही प्रजा का स्वामी है, संसार का भीपति है। ब्रह्माण्ड का अधिपति कहलाता है। चाक्राणि बोली प्रभु यह वाक् तो मेरे पूज्यपदा गुरु भी प्रगट कराते रहते थे मैं जानना चाहती हूँ यह प्रजापति है, यह किसमें ओत प्रोत हो जाता है? उन्होंने कहा यह प्रजापित याग में ओत प्रोत होजाता है। याग में जब वर्णन कराया, उन्होंने कहा यागाम् भविते देवाम् यागम्भवि वृतम् देवो पृहा वृतम् देव स्वाः। वेद के आचार्य ने कहा हे देवी! यह इन्द्र और प्रजापति सब याग में ओत प्रोत हो जाते हैं। संसार का जितना भी क्रिया कलाप हो रहा है, वह जितना भी क्रियात्मक हो रहा है, जितनी भी शुभ कामना से हो रहा है, जितना भी आत्मीय कर्म हो रहा है, वह सर्वत्र एक याग के रूप में परणित किया गया है। व हसर्वत्र एक याग है और याग में प्रजापति ओत प्रोत हो जाते है। स्वाहा कहते ही याग की प्रतिभा का जन्म हो जाता है। तो उस समय चाक्राणी ने कहा प्रभु! यह भी मैंने बहुत श्रवण किया है। मैं जानना चाहती हूँ, याग किसमें प्रतिष्ष्ठित हो जाता है। उन्होंने कहा यह याग दक्षिणा में ओत प्रोत होज जाता है। वेद के ऋषि ने कहा देवी! याग ही दक्षिणा में रहता है। दक्षिणा किसे कहते हैं? जो यज्ञमान पवित्र होता ह। यज्ञमान अपनी त्रुटियों को पुरोहित को प्रदान करता है, वह दक्षिणा में त्रुटि देता है, और आचार्य इसे वेद की प्रतिभा को अपने में धारण करता है। उसका नाम दक्षिणा कहलाया जाता है। द्रव्य देना तो उपार्जन के लिए है उदर की पूर्ति के लिए, परन्तु दक्षिणा का अभिप्राय यह है कि, हे यज्ञमान हे पुरोहिताम् आचार्यम् वृहे मैं अपने त्रुटियों को आपको अर्पित कर रहा हूँ। वेद के ऋषियों ने कहा है, याग रचाते यह जो होताजन है, यह यज्ञमान की वाणी को पवित्र बना देते हैं, वाणी का शोधन करते हैं। यही स्वाहा है जो अन्तरिक्ष में जाता है, यही स्वाहा है जो परमाणु में विभक्त हो जाता है, यही पर्जन्य में ओत प्रोत हो जाता है। उस पर्जन्य से, यही अन्न में ओत प्रोत हो जाता है। और अन्न को पान करने लगता है, उसी से रक्त और वीर्य

का जन्म हो करके वही शिशु के रूप में, मानव के रूप में, परणित हो जाता है।

ऋषि ने जब इस प्रकार से ब्रह्माण्ड का स्पष्टीकरण किया, तो चाक्राणी ने कहा कि अहा! प्रभु आपने तो मुझे मोक्ष की पगडंडी को प्राप्त राने का प्रयास किया है। प्रभु मैं परमात्मा और प्रभु को स्वीकार करके ही गति करती रहूँगी, भगवन्!

यह उपदेश दे करके महर्षि याज्ञवल्क्य ऋषि मुनि महाराज मौन हो गए। और आज्ञा पा करके वहाँ से उन्होंने गमन किया, वह कदली वनों में चले गए। कदली बनों में जा करके वह तप करने लगे। इन्द्रियों के साकल्य को एकत्रित करने लगे, पत्र पुष्पों का पान करना, अपने में मानबवृहे वाचक बन करके भयंकर बनों में अपने जीवन को व्यतीत कर रहे थे।

मैं विशेष विचार विनिमय न देता हुआ केवल तुम्व्हें वहाँ ले जा रहा हूँ, जहाँ मेरे उपदेश की इन्द्रियां प्रारम्भ होती हैं मानव को अपने जीवन को ऊँचा बनाना है। माता पिता को याग करने हैं, इससे गार्हपथ्यनाम की अग्नि की पूजा करके अपने गृह को स्वर्ग बना सकें। स्वर्ग कैसे प्राप्त होता है, स्वर्ग जभी प्राप्त होगा जब कि मानव सांर में अपनी आभा में परणित हो करके मानवीय जीवन को प्रभु के समीप ले जाने का प्रयास करते हैं, तो आनंद की प्रतिभा प्राप्त होती है, आनंद का स्रोत प्राप्त होता है। तो विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो,! प्रत्येक माता पिता अपने गृह में संतान को ऊँचा बनाना चाहता है और यह उनकी इच्छा बनी रहती है कि हमारा गृह स्वर्ग बने, हमारी संतान ऋषि मुनियों के मार्ग को अपनाकर केवल अपने जीवन को ही सार्थक न करें, अपितु सारे संसार का कल्याण करने में सवयम् को धन्य मानें।

आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? यज्ञोमयी विष्णु अर्थात् वहपरमात्मा विष्णु है, माता विष्णु है, यज्ञ विष्णु है, यह पृथ्वी विष्णु है। विष्णु के अनेक पर्यायवाची शब्द हमारे ऋषि मुनियों ने कहे हैं। यहाँ तो हम आज के वेदमन्त्र में जो वर्णन आया है उसी के अनुसार यज्ञ के भिन्न भिन्न स्वरूपों का चिन्तन करते हुए इस संसार सागर से पार हो जावें और उस परमपिता परमात्मा का गुणगान गाते हुए अपने जीवन को उसके वाम में ले जाने योग्य बनावें। तो आज के वाक्य का अभिप्राय क्या? मानव को

ब्रह्मवर्चोसि को अपना कर, इस सृष्टि को उस प्यारे प्रभु का विराट् यज्ञ मानकरर, इसमें अपनी आहुति समर्पित करते हुए मानव यात्रा को सफल बनाना है। यह है हमारा आज का वाक्। अब हमारा वाक्य समाप्त, समय मिलेगा तो बेटा! शेष चर्चा कल करेंगे। अब वेदों का पठन पाठन होगा। दिनांक 16 सितम्बर 1984 स्थान ग्राम आकलपुर समय सायं 4 बजे

७ 30 08 1985 पुष्प 54 55 श्रावणी पर्व

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस महादेव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे जो मेरा अनुपम प्रभु है, वह सर्वत्र माना गया है जितना भी संसार का मानवीय क्रियाकलाप है उस सर्वत्र मानवीयता की आभा में मानो वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है और वह मानवीयतव एक याग के रूप में परणित रहता है, मैंने बहुत पुरातन काल में, निर्णय देते हुए कहा था, कि हमारा एक मानव ये कहता है कि हम उस परमपिता परमात्मा की महती में सदैव रत्त रहे और वह जो यज्ञोमयी स्वरूप है यज्ञ बेटा! उसका एक आयतन माना गया है, मानो यह प्रेरणाएं प्राप्त होती रहती हैं, और विचार आता रहता है कि हम, मानो याग के गर्भ में अपने से प्रायः जुड़ जाएं जितना भी सुकर्म है, उस क्रियाकलाप का नाम तो याग माना गया है यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हैं परन्तु वह ब्रह्मचर्य रूप अपने में रत्त हो रहा है और विचार रहा है कि मैं उस परमपिता परमात्मा की, अनुपम, महान ज्योति में मैं सदैव रत्त हो जाऊं।

याग

तो मेरे पुत्रों! देखो, जितना भी सु विचार है सु चिन्तन है हे यज्ञमान! यही तो तेरा याग है। तो यज्ञशाला में देखो, तू अग्नि के समीप तू विद्यमान होता है तो तू वायुमण्डल को ऊँचा बना रहा है वायुमण्डल में परमाणुओं का भरण कर रहा है, जिस परमाणुवाद से

मेरे पुत्रों! मानव के जन जीवन का निर्माण होता है अथवा जन जीवन की उपलब्धियां होती हैं जैसे माता के गर्भस्थल में, मानव बनाने की प्रतिभा ही तो याग कहलाता है, और वह याग अपने में विचरण हो करके वही तो मेरे प्यारे! पिता पुत्र के रूप में परणित होता है। तो विचार विनिमय क्या, आज का हमारा वाक् यह कहता है यज्ञं ब्रह्म वाचं ब्रहे लोकाः हे मानव! तू शुभ कर्म कर, मानो तू अपनी अन्तरात्मा के अनुकूल कर्म करने वाला बन, क्योंकि जब तू अपनी आत्मा के अनूकुल कर्म करता है, तो मानो यह तेरा शरीर, तेरा जगत पवित्र बन जाता है तेरे जीवन में एक पुष्पांजलियों की प्रायः एक धारा का जन्म होने लगता है। तो बहुत पुरातन काल हुआ बेटा! जब ऋषि मुनियों का समूह विद्यमान होता रहता था, अपने स्थलियों पर विद्यमान हो करके, ब्रह्मवर्चोसि की प्रायः चर्चा करते रहते थे, नाना यागों की चर्चाएं होती रहती थीं यागां रुद्र भागा ब्रह्म वाचा मानो देखो, यह संसार रूपी एक यज्ञशाला है। तो इसीलिए यज्ञशाला में याग हो रहा है, अग्नि प्रचण्ड हो रही है, हूत किया जा रहा है मानो वही तो साकल्य मानव की प्रतिभा बन करके रहता है। तो मेरे प्यारे! आओ, आज का हमारा वाक् क्या कहता है, कि हम अपने में महान और पवित्र बन जाएं।

सूत्र

मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे कुछ प्रेरित कर रहे हैं, मानो इनकी कुछ प्रेरणाएं आ रही हैं, ये मुझे मानो श्रावणी पर्व के उपलक्ष्य में कुछ उद्गीत गाना चाहते हैं। इनकी प्रेरणा है कि वाचप्प्रहा वाचन मानो यह सूत्र कैसा है? मेरे प्यारे! देखो, यह सूत्र एक महान पवित्रता की एक धारा है। क्योंकि ये जो मानव का शरीर है, इसमें एक एक परमाणु हैं और वह परमाणु सूत्रों में पिरोया हुआ है, तो बेटा! यह मानव शरीर का निर्माण हो गया। यदि उसमें मानो देखो, जो भी प्रवाह गति कर रहा है, जो परमाणु गतियों में गतिशील हो रहा है, बेटा! वह कितना प्रिय सूत्र है। ऐसे ही मानो देखो, समाजिक जब हम पद्धतियों में परणित हो जाते हैं, तो मुनिवरों! देखो, यह शब्द मानो देखो, सूत्र कहलाता है मानो देखो, आप्राणि भवे सम्भवा ब्रहे वाचन्न कृति मानो देखो, मेरे प्यारे!

देखो, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक सूत्र की भांति हैं और यह सूत्र अपना क्रियाकलाप कर रहा है बाह्य जगत के व्यापार में भी मानो एक सूत्र ही अपना क्रियाकलाप कर रहा है प्रत्येक प्राणी बेटा! अपने सूत्र में पिरोया हुआ है उसमें वह अपना क्रियाकलाप हो रहा है उसी में वह जीवन की सत्ता को प्राप्त करता है। आज मैं विशेष चर्चा नही प्रगट करूंगा केवल आज का विचार हमारा ये कह रहा है कि हम यज्ञोमयी मानो ये संसार एक प्रकार की यज्ञशाला, यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान हो करके बेटा! अपने जीवन को ऊर्ध्वा में पंहुचाने के लिए, प्रेरणा में लगा हुआ है, संसार के वैभव की चर्चा नही कर रहा है। आत्म कल्याण की चर्चा कर रहा है और वह अपने में महान बनने के लिए सदैव तत्पर होना चाहता है तो मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा नही देने आया हूँ, मेरे प्यारे! महानन्द जी कुछ दो शब्दों की विवेचना करेंगें क्योंकि इनकी सदैव कामना रहती है ये राष्ट्र की चर्चाएं करते रहते हैं, मानवीयवाद की चर्चा भी करते हैं। परन्तु उसमें वेद का अनुशासन में लाने के लिए हैं, हम प्रायः यह कहते रहते हैं अनुशासन एक मानवीयता का एक व्यवहारिक गुण कहलाता है। मानो देखो, अनुशासन में लाना यह तप कहलाता है अब मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यशश्चां दिव्यं गरुणां सर्वाणि ममत्वां गतेषु शम भवा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे भद्र समाज! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे, जैसे मानो एक गागर है, उस गागर में सागर को भरण कर रहे थें, और हमें ऐसा प्रतीत होता है क्या गागर में सागर की ही कल्पना प्रत्येक मानव के जीवन में प्रायः आती रहती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, अभी अभी कुछ सूत्रों की चर्चाएं की, तो श्रावणी पर्व के ऊपर इन्होंने कुछ अपना महत्व प्रगट किया कि मानो यह पर्व क्या है परन्तु इस सम्बन्ध में, मैं आज जब अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप, परन्तु ये विचार, जो कि संसार में दृष्टिपात आया है इस श्रावणी पर्व

के सम्बन्ध में, भिन्न भिन्न प्रकार की कल्पनाएं रहती हैं।

श्रावणी पर्व

तो आओ, इन कल्पनाओं में एक कल्पना यह रहती है, कि महाभारत के काल में, जब अभिमन्यु युद्ध भूमि में संग्राम के लिए पंहुचे, तो वह वहाँ माता कुन्ती के द्वारा पंहुचे और उन्होने एक बुद्धिमान एक सूत्र को सूत्रित किया और यह कहा कि जब तक यह सूत्र तुम्हारे भुजों में रहेगा, तब तक कोई तुम्हें विजय नही कर सकता। एक तो मानवीय धारा वह कहलाती है परन्तु द्वितीय यह है क्या मानो देखो, भगिनी, विधाता के द्वार पर जाती है और भ्राता के मानो देखो, वह उसके भुजों में एक बन्धन सूत्र सूत्रित कर देती है और यह कहती है कि मैं जिस समय मेरा प्राण रहा आपको रक्षा करनी है। हे विधाता! मेरा गोत्र परिवर्तन हो सकता है यह द्वितीय कल्पना मानी गई है परन्तु तृतीय कल्पना यह है क्या श्रावणी पर्व पर चन्द्रमा मानो पूर्णिमा का दिवस है, पूर्णिमा के दिवस में, श्रावणी समाप्त हो जाती है और भाद्रपद का प्रारम्भ होने के लिए तत्पर हो जाता है। तो मानो देखो, एक कल्पना यह मानी गई है क्या, श्रावणी पर्व जैसे ही समाप्त हुआ, भाद्रपद का प्रारम्भ हो गया। मानो देखो, पृथ्वी अपने विशुद्ध रूप में परणित होने लगी, विशुद्ध रूप में वह भी महान बनने लगी है एक मानो यह पक्ष माना गया है और जो चतुर्थ पक्ष है जो यह स्वीकार करता है क्या यह जो मानो वेद का पठन पाठन क्यों होना चाहिए श्रावणी पर्व पर। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो यह कहा करते हैं मानो परिचय दे नही पाए यह तो सूत्रों में रह गएं परन्तु हमारा तो यही विचार आया है। मानो आचार्य कहता है क्या यह जो श्रावणी पर्व पर वेदों का पठन पाठन होता है, यहाँ पर ऐसा माना है क्या ऋषि मुनियों ने, सबसे प्रथम इसी दिवस में मानो यह जो ऋत की उत्पति हुई मानो ऋत की उत्पति हुई है कुछ ऐसा स्वीकार करने के लिए रहते हैं मानो वेद रूपी इसका जन्म हुआ है। मानो देखो, यहाँ जन्म की प्रतिभा आती है यदि इसका हम ज्ञान स्वीकार करते हैं तो परन्तु वेद की उत्पति का कारण क्या स्वीकार करें मानो क्योंकि यह तो ईश्वरीय ज्ञान है और ईश्वरीय यह एक संसार की रचना है

जब संसार की रचना और ईश्वरीय ज्ञान की रचना दोनों का एक ही काल कहा जाता है। तो यह रचना का विषय भी समाप्त हो जाता है तो उससे यह भी ऋषि मुनियों की सभा में यह निर्णायक नही हुआ निर्णय नही हो सका है। परन्तु देखो, जब हम और गम्भीरता में जाते हैं। तो उसके ऊपर प्रहा मानो देखो, बुद्धिमान जन विद्यमान हो करके, वेद का पठन पाठन करते हैं उसकी उपलब्धि के सम्बन्ध में मानो यह नही कहा जा सकता। परन्तु विचार यह है कि सब महापुरूष अपनी अपनी स्थलियों पर रहते हैं पुरोहित जन मानो देखो, वर्षाकालीन में मुनिवरों! देखो, अपने अपने गृह में याग करते थें मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो यह सब प्रतीत ही है परन्तु मैं धृष्टता कर रहा हूँ जो यह मैं आज उच्चारण करने के लिए मैं तत्पर हो गया हूँ। परन्तु जब मैं आया हूँ तो इसको सम्बन्ध में अपने विचार अवश्य व्यक्त करूंगां। आज का हमारा विचार यह मानो देखो, श्रावणी पर्व के उपलक्ष्य में हैं मानो देखो, वास्तव में जो कल्पना करते है। वह कल्पना भी यथार्थता में रत्त रहती है परन्तु देखो, जो वास्तविक स्वरूप होते हैं। वह अपनी स्थलियों में प्रियतम होते हैं।

बन्धन सूत्र

परन्तु देखो, विचार यह आता है, विचार यह कि पूज्यपाद गुरुदेव मुझे कई समय वर्णन कराया है जहाँ मैं ब्रह्म सूत्र की चर्चा करता हूँ। जहाँ मैं मानो देखो, इस श्रावणी पर्व के उपलक्ष्य में बन्धन सूत्रों की चर्चा करता हूँ, तो मानो जगत में यह एक सूत्र कहलाता है, जिस बन्धन में इस मानो देखो, सूत्र में यह मानव सूत्रित हो रहा है अथवा पिरोया हुआ प्रतीत होता है परन्तु देखो, यह मेरे विचार में कोई प्रियतमता का विषय नही हैं परन्तु विचार केवल यह है कि जो वह हो रहा है क्या यह जो पर्व है यह इसीलिए मानो हम उपलक्ष्य के रूप में हम याग के रूप में मानो इसमें परिणत हो जातें हैं हमारे विचार में तो यह आता है कि जिस समय सृष्टि का प्रारम्भ हुआ, सृष्टि के प्रारम्भ के समय मानो देखो, यज्ञशाला के रूप में सुगन्धि करनी है, हमें इस संसार के प्रभु के राष्ट्र को सुगन्धि में ले जाना है, सुगन्धि जो प्राप्त कर लेता है तो दुर्गन्ध मानो सुगन्धि

में परिवर्तित रहता है। यह जो परिवर्तन है यह महान और विचित्रता में परणित होता है। परन्तु देखो, वास्तव में यह विचारा जाएं, कल्पना करने के लिए, तो यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड ही एक सूत्रवत माना गया है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी प्रगट किया है क्योंकि राजा प्रजा के और प्रजा राजा के लिए सूत्र है और मुनिवरों! देखो, पुत्र के लिए माता पिता भी सूत्र कहलाते हैं इसी प्रकार यह जो आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों एक दूसरे के पूरक सूत्र की कल्पना करते हैं ब्रह्म वाक्यों में के लिए ऐसा दृष्टिपात आता है मुनिवरों! यह संसार सदैव एक दूसरे में सूत्रित हो रहा है, परन्तु केवल इसी उपलक्ष्य में, यह रहा श्रावणी का एक प्रसंग और आता है चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त होता है, मानो देखो, सृष्टि के प्रारम्भ में, सृष्टि का जब प्रादुर्भाव होता है। तो मानो देखो, यह ब्रह्माण्ड की रचना होती है। जब ब्रह्माण्ड की रचना होती है इस ब्रह्माण्ड की रचना के साथ मानो देखो, सूर्य द्यौ से प्रकाश लेता है और द्यौ तक मानो सूर्य का प्रकाश मुनिवरों! देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया, क्या सूर्य का जो प्रकाश है, वह चन्द्रमा में जा करके जब उद्बुद्ध होता है चन्द्रमा मानो देखो, अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो जाता है, चन्द्रमा अमृत को बिखेरता है। जैसे वेद के पठन पाठन करने वाला मानो देखो, पठन पाठन कि प्रक्रिया में वह रत्त रहता है परन्तु उसकी जो पठन पाठन की जो प्रतिक्रियाएं हैं, पठन पाठन का जो स्रोत है, वह एक महानता में परणित हो जाता है, यदि देखो, पठन पाठन के स्रोत हैं मानो जानने यह क्या कि चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है ऐसे हमारा जीवन भी सम्पन्न कलाओं से युक्त होना चाहिए, और युक्त हो करके हम मानो देखो, श्रावणी पर्व ऊपर इससे हमें प्रतीत हुआ है।

वेद का ज्ञान

एक पक्ष मेरे विचार में आया है क्या इसी दिवस मानो देखो, वेद रूपी प्रकाश का प्रादुर्भाव होता है। यह मुझे कई काल में आता रहता है क्या देखो, वेद के प्रादुर्भाव का वेद का ज्ञान जो कि निष्पक्ष ज्ञान होता है उसकी उपलब्धियां मानव के हृदयों में मानो

उत्पन्न होने दें, क्योंकि मानव का सदैव निष्पक्ष होना एक बड़ी महत्वता आभा कहलाती है। जब विचार आता है कि कोई शुक्ल पक्ष में चला जाता है परन्तु देखो, यहाँ एकोकी पक्ष रहता है, वेद के प्रकाश का, एकोकी पक्ष रहता है जो इसे अपना लेता है वह इस प्रकाश में रत्त हो जाता है यह मानो देखो, अपनी रूढियों को, अपनी त्रुटियों को त्याग करके महती में परणित हो जाता है, वह जो महतीतव है, वह मानवीयता की एक धारा में, प्रायः मुनिवरों! देखो, रत्त हो जाता है। मैने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई कालों में वर्णन करते हुए कहा था, मानो अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा, क्या यह जो वेद का ज्ञान है, इसीलिए प्रादुर्भाव की प्रतिक्रियाएं परम्परा से चली आ रही हैं परन्तु रहा यह, क्या यह सूत्र क्यों परणित किया जाता है? मानो सूत्र क्या यह प्रतीत है, कि इससे धर्म और मानवता की परम्परागतों से रक्षा होनी चाहिए, मानो देखो, रक्षा का यह प्रतीक है, जो रक्षा नही कर पाते वे सूत्र के अधिकारी नही होते परन्तु देखो, मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था।

गुरुड़म्बावाद

अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन कराते हुए गुरुदेव से क्षमा पाते हुए क्या यहाँ इस प्रकार रूढ़ियाँ पनपती जा रही हैं, रूढ़ियों का प्रादुर्भाव हो गया है और देखो, अज्ञान ब्रह्मे याग का लुप्त वेद की प्रतिभा लुप्तवाद में परणित हो रही है जब मैं इन वाक्यों में जाता हूँ यहाँ नाना प्रकार का गुरुड़म्बावाद भी प्रतीत हो रहा है जब देखो, इस समाज का विनाश और विनाशता को चला जाता है और मानवता लुप्त हो करके, मानव दर्शन लुप्त हो करके, एक रूढ़ियों का प्रादुर्भाव हो करके रूढ़ियाँ पनपती रहती हैं। गुरुड़म्बावाद पनपता रहता है मानो देखो, वेद के वाक् उच्चारण करके वह अपनी मनोकृतियों में प्रगट हो करके, आवेशों में परणित हो करके नाना प्रकार के गुरुड़म्बावाद श्रोत्रो में लेना प्रारम्भ कर देता है तो मैंने बहुत पुरातन काल में, अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था क्या संसार में रूढ़ि नही रहनी चाहिए, संसार में रूढ़ि न रह करके प्रकाश हो जाना चाहिए। अन्धकार समाप्त होना चाहिए प्रकाश होना चाहिए और प्रकाश में समाज को रत्त होना

चाहिए, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ऋषि मुनियों ने एक क्रियाकलाप बनाया था।

आचार संहिता

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन कराया मैं भी यह वाक् कहता रहता हूँ, क्या एक ही क्रियाकलाप मानव की आचार संहिता जानने का क्योंकि प्रत्येक मानव, आचार संहिता को बनाना चाहता है। आचार संहिता मानव के जीवन में आ जानी चाहिए, परन्तु आचार संहिता क्या है? जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हैं, पुरोहित अपनी स्थली पर विद्यमान है वह पुरोहित आज्ञा देता है हे यज्ञमान! आओ, अब हम तुम मिलल करके एक याग करना चाहते हैं। हम यागों में परणित होना चाहते हैं तो यज्ञमान कहता है प्रियतम आईए, पुरोहित! मानो देखो, हम परा को जाने, परा जो ज्ञान है, परा जो शब्द है उसे अन्तरिक्ष में देखना प्रारम्भ करते हैं परन्तु देखो, इसी सूत्र को ले करके, वह अपनी अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके क्रियाकलाप बनाते हैं, प्रातःकालीन याग हो रहा है प्रातःकालीन सुगन्धि होनी है, गृह को सुगन्धित बनाना है उसके पश्चात मानो सूत्रों की आभा में रत्त हो करके यागों में रत्त होते रहें ब्रह्म सूत्र को जानना है जब मानव अपने में गुरुड़म्बावद के लिए, एक रूढ़ियाँ बन जाती हैं, तो अपने को प्रभु स्वीकार कर रहा है, वह अपने को मानो देखो, यह नही स्वीकर कर रहा है क्या यह जो पञ्च महा भौतिक जो पिण्ड बना हुआ है इसका कोई रचयिता है वह मानो देखो, गुरुड़म्बावाद में, गुरु जब यह स्वीकार करता है कि वह जो परमपिता परममात्मा है। वह परमात्मा की आभा में हैं परन्तु देखो, यही स्वीकार करता है कि परमात्मा के बिखरे हुए ज्ञान में लाने का प्रयास करता है तुम्हारे समीप, परन्तु ईश्वरीय कल्पना करना उसमें यह मानो हमारी धृष्टता हो जाएगी जिससे समाज में एक अज्ञान की प्रतिभा का प्रायः जन्म हो जाता है वह अज्ञान नही रहना चाहिएं, हमारे ऋषि मुनियों की सबसे प्रथम जो एक अनुपम देन है वह यह है कि मानव विवेक होना चाहिए। विवेक में परीक्षा हो जाए वह परीक्षा हो करके तो परमात्मा की पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है वह मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह वाक् कई

काल में यह वाक् वर्णन करते हुए कहा था, परन्तु मैं आज उन वाक्यों में जाना नही चाहता हूँ विचार क्या क्या रूढ़ियाँ समाज में रूढ़ियाँ समाप्त हों मानो रूढ़ि नही होनी चाहिए क्योंकि धर्म एकोकी वचन है। मानव एकोकी वचन है वेद एकोकी वचन है मानो देखो, ये भिन्न भिन्न नही कहलाती हैं। जब ये भिन्न भिन्न नही होती उसी एकोकी वचन में ही तो हैं इसके गर्भ में तो ही प्रवेश करना है तो उस एकोकी वचन में ही तो मानव को अपनी प्रतिभा में मानो देखो, रत्त हो जाना है।

पांच क्रियाक्काप नित्य

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे बहुत सूक्ष्म अपना विचार देते रहते हैं आज मैं उन सूक्ष्म धाराओं में तो जाना नही चाहता हूँ परन्तु मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन करने जाना चाहता हूँ क्या यह रूढ़ि एक दूसरे के रक्त की पिपासी हैं परन्तु मैं तुम्हे उच्चारण .... यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान होता है और हे यज्ञमान! तू प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन कर मानो द्वितीय तू देवपूजा कर मानो जिससे तेरा जीवन प्रकाश में चला जाए, उसके पश्चात तू पितर याग करना चाहिए देखो, पितरों की सेवा कर, पितरों की आज्ञा का पालन कर और पितर तेरे पितर कौन से होते है? जो मानो पितर हमें देते हैं मानो पितर वही देते हैं जो पितरं ब्रह्मे जो देने वाले हैं, जैसे माता पितर है, पिता पितर है, आचार्य पितर है, सूर्य पितर है, चन्द्रमा पितर है, परमात्मा पितर है, वायु अपने में पितर कहलाते हैं, क्योंकि जो हमें लाभप्रद होते हैं जो हमारी रक्षा करते हैं पितर कहलाते हैं मानो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में पितरों की बड़ी विलक्षण व्याख्या की है, मैं पूज्यपाद गुरुदेव के आगे पितरों के सम्बन्ध में प्रश्न बहुत से हम करते रहते हैं कोई चर्चा नहीं बहुत से उत्तर दे देते हैं परन्तु उच्चारण करना चाहता हूँ पितरों के सम्बन्ध में विशेष विवेचना यह कि देखो, यह पितर याग है, पितरों की आज्ञा का हम पालन करें मानो यदि सूर्य प्रकाश देता है तो वह पितर है तो हम अग्नि में हवि देने वाले बनें यदि मानो वायु हमें प्राण देता है तो अपने प्राणो की रक्षा कर यदि मानो वह पितर अग्नि के रूप में रहता है तो ... यह चन्द्रमा अमृत को बहाता है आज हम भी सत्यवादी बन

करके देखो, पितरों की आज्ञा का पालन है माता तू चाहती क्या है, जो माता हमारी पितर है वह चाहती है कि मेरा बालक विचित्र बन जाएं जैसा मैने मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया था माता यह चाहती है कि जीवन को उपलब्ध्य में लाने के लिए माता की यह आकांक्षा है क्या मेरा पुत्र मानो पवित्र बन जाए। मेरे पुत्र में माता का दिग्दर्शन हो जाए, एक तो यह आता है कि मात यह चाहती है। पितर क्या चाहता है? मेरे कुल की परम्परा ऊँची बन जाए, मेरे कुलों की मर्यादा महान बन करके, मेरे पितरों का नामोकरण ऊर्ध्वा में गति करता रहे। मानो देखो, आचार्य क्या चाहता है? आचार्य शिशु को चरणों में ओत प्रोत कराता है और यह आचार्य कहता है, ब्रह्मचारी तू आ जितनी भी तेरी इन्द्रियां हैं तेरे समीप तू इन्द्रियां को मुझे इसका वर्गीकरण कर दे। हे ब्रह्मचारी! आ, तू अपनी वाणी प्रत्येक इन्द्रिय को मुझे प्रदान कर दे, मैं उसका शोधन कर दूंगा आचार्य उनका शोधन कर देता है आचार्य प्रत्येक इन्द्रिय, उनके क्रियाकलापों से लाभान्वित करता हुआ, उसे यह निर्णय करा देता है कि इसमें तेरा लाभ वृत्तियाँ कहलाती हैं। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, मैं तो आपके इस पथ पर चला गया हूँ जो आपने मुझे वर्णन कराया है, आज मैं राष्ट्रवाद में नही जा रहा हूँ परन्तु विचार क्या है कि पितरजन क्या चाहते हैं कि महान बनाना है जो पितर कहलाते हैं। उनकी आज्ञा का पालन करना, उनके विज्ञान के सार्थक स्वरूप को जानना और उसको क्रिया में लाने का नाम ही मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया उनको क्रिया में लाने का नाम ही मानो देखो, एक पितर याग कहलाता है। तो पितर याग होना, कहीं बलिवैश्व याग होना, देखो, जहाँ परमब्रह्म वृतां देवाः यह भिन्न भिन्न याग की चर्चाएं प्रायः वैदिक साहित्य में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे वर्णन कराते रहते हैं मैं उन मानो देखो, विशेषताओं में तो तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा का पालन करता हुआ, अपने विचार हम देते चले जा रहे हैं और वह विचार क्या यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके, वह पुरोहित, इन क्रियाकलापों का उद्गीत गा रहा है। उद्गीत गाता हुआ, यज्ञमान अपने में प्रसन्न हो रहा है। वेद के पठन पाठन करने का नाम ब्रह्मयाग है। मानो जब हम वेद का पठन पाठन करते हैं, प्रकाश को अपने में लाने

का प्रयास करते हैं, तो प्रकाश में रत्त रह करके मानव अपनी ऊर्ध्वा गति बना लेता है, ऊर्ध्वा में रत्त रहता हुआ इस संसार की प्रतिभा को उड़ान देता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में मुझे यह वर्णन कराया है मैं इन वाक्यों ऊपर तो टिप्पणी नही दे सकता कि देखो, यह यहाँ पांचो नित्य क्रियाकलाप न रह करके, मानव समाज एक गुरुम्ड़बावाद की वेदी पर रत्त हो गया है।

गुरुम्ड़बावाद

वह गुरुड़म्बाद क्या कहता है कि न तो दर्शन ही कुछ है न उपनिषद ही कुछ है, इस वेद के पठन पाठन भी मानो बुद्धिमान समाज में तुम्हें एक कृतिका में रत्त कर दिया है। वह धृष्टता कहते हैं कि हम कृतिका कहते हैं। कितना अन्तर्द्वन्द्ध माना गया है परन्तु वह जो गुरुड़म्बाद वह कहते है कि हम ही प्रभु हैं, हम ही मानो एकोकी कहलाते है। जब इस प्रकार की घोषणा करते हैं तो धर्म के नामों पर एक रूढ़ियां बन जाती है और वहीं तक नही रहती, गुरुड़म्बाद में अग्नि प्रचण्ड हो जाती है रक्तभरी क्रान्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। जब बुद्धिमान पुरोहितों के द्वारा जब मानो देखो, यह याग जैसे श्रावणी पर्व पर परम्परागतों से ऋषिकाल में याग होता रहा है, उस याग में नम्रता है, उस याग में ओजस्विता है, उसी में पवित्रता है, उसको हमें अपना करके अपने जीवन को ऊँचा बनाना है, आज जब मैं इन वाक्यों पर जाता हूँ। तो वह कहते हैं याग को भी एक पाखण्ड कह देते हैं वह यह कहते हैं कि याग भी पाखण्ड है और देखो, घृत अग्नि में प्रविष्ट करना यह पाखण्ड कहते हैं। परन्तु मैं यह कहता हूँ हे भोले प्राणियों! यह वायुमण्डल कैसे पवित्र बनेगा जब घृत को तुम अग्नि में नही दोगे, अग्नि के मुखारबिन्दु को पवित्र नहीं बनाओगे, तो यह वायुमण्डल कैसे पवित्र होगा। मानो देखो, आधुनिक काल का विज्ञान यह स्वीकार कर रहा है, मैं अपने गुरुदेव को वर्णन करा रहा हूँ, कुछ ही समय हुआ है समुद्र के तट पर एक वैज्ञानिकों का समूह एकत्रित हुआ, और वह कुछ ही समय में यहां घोषणा करने वाला है, कि याग होना चाहिए तभी इस दूषित वायुमण्डल को समाप्त कर सकेंगें। मेरे भोले प्राणी! तू जो यों कहता है कि अग्नि में

घृत को अर्पित करना पाप है तो तू अगर और तगर, चन्दन की समिधा द्वारा इनके हूत के द्वारा तू मानो अगरबती के रूप में अपने यहाँ सुगन्धि क्यों कर रहा है, मुझे इसका तो कोई उत्तर प्राप्त नही होता। किसी के कोई भी रूढ़िवाला, रूढ़ि आचार्य हो, रूढ़िवादी हो, कोई उत्तर नही दे पाता। परन्तु मुनिवरों! देखो, जब मैं मुहम्मद के मानने वालों के द्वार पर जाता हूँ तो वे पिशाच योनियों के अगले जन्म में प्राप्त होंगें, परन्तु उस सम्बन्ध में तो कुछ नही कहूंगा, क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे परिभाषित करते रहते हैं। मैं केवल इतना उच्चारण कर रहा हूँ कि जो दूसरे प्राणों की रक्षा नही कर सकते, तो दूसरे प्राणों को लेने का भी उन्हें कोई अधिकार नही होता, क्योंकि अधिकार उस काल में प्राप्त होता है जब परमात्मा उन्हें यह अधिकार देता है, उस योनि में भेजता है जैसे सिंहराज अधिकार परमात्मा की एक धरोहर कहलाती है आत्मा को धरोहर कहलाती है। इसके ऊपर विचार करना चाहिए।

रुढ़ियां

वाह रे समाज! नाना रूढ़ियां दूसरे प्राणी को हनन करना पाखण्ड नहीं कहते, यज्ञ करने को पाखण्ड कहता है, कैसा दुर्भाग्य समाज का आ गया है कैसा दुर्भाग्य है उस राष्ट्रवाद का दुर्भाग्य है, जो मांसों का पान करना तो प्रियतम है। और जहाँ सुगन्धि का प्रसंग आता है, कर्मकाण्ड का प्रसंग आता है वहाँ रूढ़ि कहा जाता है। मैं आश्चर्य में जाता हूँ, पूज्यपाद गुरुदेव से मैं प्रश्न करता रहता हूँ पूज्यपाद गुरुदेव भी मुझे एक आंगन में परणित करा करके शान्त हो जाते हैं परन्तु विचार में नही आ रहा है कि आज जब राष्ट्रवाद की वेदी के ऊपर, नाना प्रकार की रूढ़ियों की चर्चाएं, मैं श्रवण करता हूँ मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में कहा है कि पूज्यपाद गुरुदेव ने भी यह प्रसंग लिया है मैं भी इस वाक् को लेता हूँ। नाना प्रकार की चित्रावली, पूर्व काल में भी रही हैं। महर्षि भारद्वाज के काल में भी रही हैं, रावण के काल में भी रही हैं, विष्णु काल में भी रही हैं, शिव के काल में भी रही हैं आज भी वह काल है कि उसमें भी ज्यों का त्यों वह चित्रण प्रणाली है, प्राचीन चित्र प्रणालियों में जहाँ ऋषि

मुनियों के चरित्र आते थे, वहाँ आधुनिक काल में बलियों की प्रतिभा का चित्र मानव को प्रदर्शित कराए जाते हैं और यह कहा जाता है कि हमारे देश का गौरव है इसे गौरव कहते हैं प्राचीन संस्कृति कहते हैं। अरे, मानव! तेरे मुखारबिन्दु में अग्नि क्यों प्रदीप्त नही हो जाती, जो यह शब्द उच्चारण कर रहा है। तू एक प्राणी को नष्ट करने को, तू एक बलि की प्रतिभा को ले करके कहीं आंगन में पीड़ित कर रहा है। वैदिक साहित्य में, वेद की प्रतिभा में कहीं भी ऐसा शब्द नही कि किसी की बलि का वर्णन हो। बलि का एक नृत्य आता रहता है बलि कहते हैं हमारे यहां अपने को समर्पित कर देना। यदि प्रभु को तुम्हें प्राप्त करना है तो अपने को समर्पित कर देना है, अपने को समर्पित करना ही एक बलि कहलाती है। जैसे हमारे यहाँ वृष्टि प्रारम्भ होती है, वृष्टि का जब प्रारम्भ हुआ, तो यह पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों को जन्म देने वाली बनी है व्यञ्जनों को जन्म दे करके यह पृथ्वी मानो देखो, कृति बन गई, वो गो के बछड़े की बलि हो गई और गो के बछड़े की बलि कैसे? कृषक गो के बछड़े को ले करके इस पृथ्वी की चमड़ी को उधेड़ करके इसमें बीज की स्थापना करता है और उसकी रक्षा करता है और बैल का जो योगदान है वही अन्न बन करके उसके समीप आ जाता है, वही नाना प्रकार का अन्न बन करके उसके समीप आता है। उसको आज का मानव कहता है, जो पामर प्रवृत्ति के याज्ञिक है वे भी कहते हैं कि बलि का वर्णन वाजपेयी याग में आता है। अरे, भोले प्राणी! तुझे विचारना है, तुझे अपने जीवन को विचारना है कि यहाँ एक प्रकार का नृत नही करना है तुझे तो अपने जीवन की प्रतिभा को महान बनाते हुए, जीवन की सार्थकता को अपनाना है, जिससे तेरा राष्ट्र समाज ऊँचा बन जाएं। आज का मानव यह कहता है कि हमारे राष्ट्र में इच्छाओं की ऐसी स्थापना आ जाए, लेकिन जहाँ नाना प्रकार के धर्म हों और परमात्मा के नामों पर बलियां देखो, यहां इनकी दाह हो वह वायुमण्डल को कैसे पवित्र बनाएंगी और कैसे यह मानव समाज ऊँचा बन सकेगा। बहुत पुरातन काल में, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन कराया था, मैंने यह परिचय कराने के लिए कहा था, कि समाज को ऊँचा बनाना है, तो यहाँ एक घोषणा होनी चाहिए। राजा को यह घोषणा करनी चाहिए कि धर्म के नामों पर

किसी भी प्रकार का किसी भी प्राणी का वध नही होना चाहिए। क्योंकि धर्म के नाम पर प्राणी का वध होता है रसास्वादन के लिए देव, दवेता तो परम्परा से चले आ रहे हैं परन्तु धर्म के नामों पर रूढ़ियां हैं जो मानव इन रूढ़ियों में नाना प्रकार के हिंसा करता है उन रूढ़ियों को समाप्त कर देना चाहिए। और वैदिकता को ला करके बलि के ओर समर्पित होने के उन रहस्यों को उद्गीत गाना चाहिए। उन रहस्यों का जब उद्गीत गाता है तो मानव में रजोगुण क्यों आयेगा? तमोगुण क्यों आएगा, सतोगुण आता रहेगा और देखो, राष्ट्र का समाज का पवित्र बनता रहेगा। मेरे प्यारे! माताओं का जीवन पवित्रतम बना रहेगा और समाज भी ऊँचा बनेगा। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में वर्णन करते हुए कहा है कि समाज में न तो गुरुड़म्बावाद होना चाहिए न वहाँ देखो, धर्म के नामों पर किसी भी प्राणी का हनन होना चाहिए। केवल धर्म अपनी जगह धर्म रहता है। धर्म कोई भी धर्म अधर्म के रूप में नही ला सकता। धर्म का अभाव नहीं होता, अधर्म का सदैव अभाव हो जाता है।

तो मैंने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन करते हुए कहा कि मैं श्रावणी पर्व के पवित्र दिवस को आज दृष्टिपात कर रहा हूँ इस दिवस को मैं परम्परागतों से स्वीकार करता रहता हूँ यह वह दिवस है जिस दिवस परमात्मा की पवित्र विद्या, जो वैदिक ज्ञान है, उस वैदिक मन्त्रात्माओं के लिए साकल्य ले करके, साकल्य यज्ञमान के शब्दों पर होताओं के उदगाता उद्गीत गाने वालों के शब्दों पर साकल्य विद्यमान हो करके वायुमण्डल के अशुद्ध परमाणु को निगलता रहता है मेरा अन्तरात्मा हृदय यह ऋषि मुनियों की धरोहर है, यह जो याग जैसा कर्म है यह ऋषि मुनियों की धरोहर है क्योंकि ऋषि मुनि अपने आश्रम को पवित्र बनाने के लिए, शुद्ध पवित्र वेदमन्त्रों के द्वारा उद्गीत गाते रहे हैं। अपने पूज्यपाद गुरुदेव से मैं विशेष में भी चर्चा करना नही चाहता हूँ। उद्गीत गाने के लिए जो मैं गाता ही रहूँगा एक एक वाक् के ऊपर टिप्पणियां करता ही रहूँगा, अपना विचार देता रहूँगा। परन्तु इस राष्ट्र के राजा को चाहिए अपनी संस्कृति को लाना है तो उन चित्रावलियों पर यज्ञ होते हुए पुरोहित जनों को उपदेश देते हुए वेदमन्त्रों का चलन करें। राजा ही अपने अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है, यदि विज्ञान के ऊपर अपने को

ऊँचा बनाना चाहता है विज्ञान को अपने में प्रतिष्ठित करना चाहता है तो उसे चाहिए कि चित्रावलियों में वेदध्वनियां हों, पवित्र ध्वनि होनी चाहिए, जिसमें वायुमण्डल मानव के विचार के साथ पवित्र बन जाए। पुरातन काल में भी इस प्रकार की चित्रावलियां थी, जहाँ चित्रों का दर्शन होता रहता था उन चित्रावलियों को वहाँ पर जितने भी दृष्टिपात करते थे वह अहा! कह करके वायुमण्डल उनकी वाणी से और परमाणुवाद से साकल्य से ऊँचा बनता रहता था। मेरा तो एक ही मन्तव्य रहता है कि यह समाज कहाँ तक अपने स्वार्थ, स्वार्थपरता में द्रव्य को लोलुपतता में कहाँ तक चला जा रहा है। मैं यह कहता हूँ, हे परमात्मान्! तुम वेद सर्वज्ञ हो, तुम प्रकाश सर्वज्ञ हो हे यज्ञमान! तुम मानव के यज्ञमान हो तुम यज्ञमानों का इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हो हे प्रभु! तुम्हारा अन्तर्जगत है यह कैसी महान ओर पवित्र है मेरी यह कामना रहती है भगवन! कि वह कौन सा समय आयेगा मेरे समीप जब राष्ट्र अपने राज्य में यह घोषणा करेगा कि मेरे राष्ट्र में धर्म के नामों पर कोई भी प्राणी का हनन नही होगा, बलि तो नही होगी, परन्तु प्राण नही लिए जाएंगें। वह पुरूषार्थ रूपी बलि मेरे राष्ट्र में कब आएगी प्रभु! हे भगवन! मेरी तो यह कामना रहती है कि आप भगवन! देखो, उदबुद्ध करने वाले! आप महान हैं पवित्र हैं, सखा हैं, यज्ञमयी स्वरूप हैं, मानव के अन्तर्हृदय को पवित्र बनाने वाले, मेरे यज्ञमान के यज्ञमान सपत्नीक उनके हृदयों को पवित्र बनाते रहते हो। आज मेरी यह मनोकामना रहती है कि यज्ञमान के साथ हे यज्ञमान! तुम बहुत ऊँचा क्रियाकलाप कर रहे हो, अपनी शुद्ध पवित्रता से तुम्हारी आहुति लोक लोकान्तरों में जा रही है पूर्ण रूपेण तो नही जा पाती परन्तु प्रत्येक दिन उसमें से कुछ आहुतियां तो चली ही जाएंगी। मन विचलित होता है तो इसको भी विशुद्ध रूप में लाया जा सकता है। वेद अपने में सर्वत्रता में परणित रहता है हे यज्ञमान! मेरा तो हृदय यज्ञमान के साथ रहता है इनके जीवन का सदैव सौभाग्य अखण्ड बना रहे महान ओर पवित्र क्रियाकलाप करते रहें अपने जीवन में महानता की ज्योति बिखरते रहें। इसके साथ मैं अपने वाक्यों को पूर्ण विराम देने जा रहा हूँ पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अभी अभी अपने

ओजस्वी विचार दिए। परन्तु आज का इनका विचार दर्शनों से गुंथा हुआ विचार था जो मानवीय दर्शनों से गुंथा हुआ विचार है कि वह वास्तव में ऐसा होना चाहिए क्योंकि मानव को वास्तव में अपने जीवन में अपनी धारा को ऊँचा बनाना है। प्रत्येक मानव को उस यज्ञमयी स्वरूप में रत्त रहना है जिस यज्ञोमयी ज्योति श्रोत्रं ब्रह्म वाचो में रह करके अपनी मानवीय धारा को ऊँचा बनाना है मेरे पुत्र ने अभी अभी यज्ञमान के सम्बन्ध में कुछ उद्गीत उदगारं दिए, मेरा अन्तर्हृदय भी सदैव यह कहता रहता है कि आचारं ब्रह्मः आचार संहिता पवित्र बनाते हुए हे यज्ञमान! तू अपने जीवन को ऊँचा बना यह है आज का वाक् आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा।

८ 18 10 1985 पुष्प 53 व्यष्टि में समष्टि

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिवेद मत्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्रवेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है, वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं। जितना भी यह जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है, चाहे वह जड़वत् के रूप में हो, चाहे वह चैतन्यता के रूप में हो, परन्तु उस सर्वत्र आभा में वे परमपिता परमात्मा ही दृष्टिपात आते हैं। जब भी हम किसी वेदमन्त्र के ऊपर, अध्ययन करना प्रारम्भ करते हैं अथवा उसके ऊपर मनन करते हैं, तो प्रायः उस परमपिता परमात्मा की महती दृष्टिपात आने लगती है। क्योंकि उसका जो अनुपम प्रकाश है वह एक एक परमाणुवाद में दृष्टिपात आता है। ब्रह्माण्ड उसमें निहित रहने वाला है। मानो एक एक तरंग में और तरंगों में भी जो परमाणु हैं, उस परमाणु के गर्भ में भी बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतिभा दृष्टिपात आने लगती है। परन्तु जब हम किसी भी वस्तु पर विचार विनिमय प्रारम्भ करते हैं, तो उसमें एक अनन्तमयी ब्रह्माण्ड हमारे समीप आ जाता है और अन्तिम छोर उसका ये होता है कि हमारी जो इन्द्रियाँ हैं वह शान्त हो जाती है, इन्द्रियाँ अपना क्रिया कलाप समाप्त कर देती है। तो इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की जो अनुपम जो एक महती

है, उसका जो अनुपम प्रकाश है, उसमें हम सदैव रमण करने वाले बनें, क्योंकि प्रत्येक मानव का जो अन्तिम सूत्र है, वह चेतना मानी जाती है। परन्तु प्रारम्भ और अन्तिम में, दोनों में ही, सूत्र की प्रतिभा दृष्टिपात आने लगती है। इसीलिए हमें अपने में सूत्रित हो जाना चाहिए और सूत्र में अपने को पिरो करके हम उस परमपिता परमात्मा की महती में सदैव रत्त हो जाएं।

तो आओ मेरे प्यारे! आज मैं बहुत पुरातनकाल की वर्ताएं तुम्हें प्रगट कराता चला जाऊं, जहाँ ऋषि मुनि, अपने में बेटा! अनुसन्धान करते रहे, अपने में विचार विनिमय करते रहे। क्योंकि ये संसार दोनों प्रकार के विज्ञान की एक उपलब्धि कहलाती है। जब भी मानव ने इस संसार के ऊपर विचार विनिमय प्रारम्भ किया है तो दोनों प्रकार का विज्ञान इसके समीप आया है। एक आध्यात्मिक विज्ञान और द्वितीय भौतिक विज्ञान कहलाता है। परन्तु भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान, अपने में बड़ा अनूठा बन करके रहा है। मैंने बहुत पुरातनकाल से बेटा! कहा था कि भौतिक विज्ञान तो अपने में उपलब्धियों वाला है, परन्तु आध्यात्मिक विज्ञान उससे भी एक महानता में रत्त होने वाला है। जिसके ऊपर प्रायः हमारे ऋषि मुनि परम्परागतों से ही, बेटा! अध्ययन करते रहे हैं। आज मैं तुम्हें उस अध्ययनशाला में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ मानव अपने में मृत्युञ्जय बनने के लिए कल्पना करता रहा है और विचारता रहा है कि मैं मृत्युञ्जय बन जाऊं। मेरा नामोकरण विचित्रता में परणित होता चला जाए, ऐसा मानव सदैव अपने में चिन्तन करता रहा है अथवा मनन करता रहा है। उस मननमयी शैली के ऊपर मानव अपनेपन को ले जाता है और विचारता रहता है कि मैं परमपिता परमात्मा की महती में, सदैव रत्त हो करके और मृत्युञ्जय बन जाऊं। क्योंकि मृत्युञ्जय बनना प्रत्येक प्राणी चाहता है। हमने इससे पूर्वकाल में, तुम्हें प्रगट करते हुए कहा था, चाहे वह प्राणी इस पृथ्वी मण्डल का हो, चाहे वह किसी भी लोक लोकान्तरों का प्राणी हो, मानव अपने में मृत्युञ्जय बनने की कल्पना करता रहता है। मेरे प्यारे! जब मानव, द्वितीय लोक लोकान्तरों के विज्ञान के, वांगम् ब्रही व्रताम् उस विज्ञान की आभा में उड़ान उड़ता हुआ, लोक लोकान्तरों की यात्रा करने लगता है तो मानो लोकों की स्मृतियां उसके समीप

आनी प्रारम्भ हो जाती है और वह लोक लोकान्तरों को भी दृष्टिपात करने लगता है। मानो वहाँ का वायुमण्डल, वहाँ की प्रतिभा, वहाँ का चित्रण, वहाँ का राष्ट्र, वहाँ का अनुशासन उसके समीप आना प्रारम्भ हो जाता है।

ब्रह्मयाग

तो मेरे प्यारे! आज मैं अपनी विचारधारा को, इस क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। केवल क्या हमारे यहाँ, ऋषि मुनि परम्परागतों से ही, बेटा! देवपूजा के सम्बन्ध में नाना प्रकार का पूजन करते रहे हैं। मानो हमारे यहाँ तीन प्रकार का एकोकी आभा में ब्रह्मयागां भविते लोकाम्। मेरे प्यारे! महानन्द जी ने कई काल में यह प्रगट कराते हुए कहा कि हमारे यहाँ कितने प्रकार के याग कहलाए जाते हैं। तो मैंने बहुत पुरातनकाल में कहा कि हमारे यहाँ सबसे प्रथम ब्रह्मयाग होता है। ब्रह्मयागी जो प्राणी है, वह प्रातःकालीन ब्रह्म के ऊपर चिन्तन करता रहता है और ब्रह्म की महती में अपने को रत्त करा लेता है। और गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो करके, यह विचारता है कि मैं गृह वस्सुतं ब्रह्माः वच्यं ब्रही वृतं ब्रह्म लोकाम् मैं ब्रह्मलोक में चला जाऊ, मैं ब्रह्म की आभा में रत्त हो जाऊं। क्योंकि ब्रह्म अपने में ब्रह्मवर्चोसि कहलाता है और मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्म का चिन्तन करना, ब्रह्म की सृष्टि को निहारना यह उसका एक मनोनीत कर्त्तव्य बन जाता है। एक विचार उसके समीप आता है कि मैं ब्रह्म के एक एक परमाणुवाद के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करूं, अपने को उसमें रत्त कराऊं। मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है जब गुरु और शिष्य दोनों एक स्थली के ऊपर विद्यमान हो जाते हैं तो गुरु कहता है, हे ब्रह्मचारी! आओ, मैं तुम्हें ब्रह्मवर्चोसि बनाना चाहता हूँ तो वह ब्रह्मवर्चोसि बना देता है, परन्तु देखो, जब और ऊर्ध्वा में ब्रह्मतत्त्वमसि के ऊपर विचार विनिमय होने लगता है।

कर्त्तव्यवाद

मुझे स्मरण आता रहता है देखो, महाभारत के काल में अव्रतं ब्रह्मे वाचस्तमं मेरे प्यारे! भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों का सम्वाद सेनाओं के मध्य में प्रारम्भ हुआ। जब सेना

के मध्य में दोनों का संग्राम प्रारम्भ हो गया विचारों का, विचारों में मत भेदन हुआ, नाना प्रकार के विचार, एक दूसरे के विपरीत बने। परन्तु विपरीतता में यह हुआ, कि भगवान् कृष्ण ने कर्त्तव्यवाद के ऊपर अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! तू तो अपने कर्तव्य का पालन कर, क्योंकि कर्त्तव्य ही संसार में एक महान् है। कर्त्तव्य ही मानव को ऊँचा बनाता है। उन्होंने कर्त्तव्य की विवेचना करते हुए कहा कि मानव को ब्रह्म को अपना साक्षी करते हुए, हे अर्जुन! ऐसा हो जाना चाहिए, कि उसमें आशक्ति नहीं होनी चाहिए। एक मानव आशक्ति वाला होता है एक मानो उससे रहित होता है, आशक्ति रहित होना जो प्राणी है वह कर्त्तव्यवाद का पालन करता है। जैसे एक मानव न्यायालय में न्यायाधीश है। और मानो देखो, उसका पुत्र और एक समाज का प्राणी है, परन्तु न्यायालय में न्यायकर्त्ता न्याय करना चाहता है, तो यदि न्याय को निष्पक्ष हो करके करता है तो वह कर्त्तव्य का पालन करता है। परन्तु कर्त्तव्य का पालन करके दोनों ही एक ही प्रकार के दोषारोपण होने वाले प्राणी हैं, परन्तु जब अधिराज इस प्रकार की दशा में परणित हो जाता है, तो वह कर्त्तव्य का पालन कर रहा है।

कर्त्तव्य का पालन

तो इसीलिए भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा, हे अर्जुन! तुम कर्त्तव्य का पालन करो, क्योंकि कर्त्तव्य ही मानव को ऊँचा बनाता है। संसार में जब मानव को विवेक होता है, और विवेक में यह जान लेता है कि जितना भी यह स्थूल जगत् है। यह स्थूल जगत् आज नहीं तो कल मानो इसकी विकृतता होनी है और यह स्थूल नहीं रहेगा। सूक्ष्म बन जाना है और सूक्ष्म को स्थूल बनना है। परन्तु देखो, इस प्रकार की जब जागरूकता मानव के अन्तर्हृदय में विद्यमान हो जाती है, वही अन्तर्हृदय उसका पवित्र बन करके ऊर्ध्वा में ले जाता है। वह ऊर्ध्वा की वेदी पर ले जा करके अन्त में जब गुरु शिष्य का घनिष्ठ भाव बन जाता है, तो आचार्य यह कहता है, पूज्यपाद कहता है, कि हे शिष्य! तू आ, मुझे अच्छी प्रकार से जान, तू अच्छी प्रकार से मुझे दृष्टिपात कर, तेरा कल्याण होगा। जब तू संसार को, प्रभु को या और भी अकृतियों को बाह्य जगत में अपने से

दूरी दृष्टिपात करेगा, तो तेरा कल्याण नहीं होगा। तेरा कल्याण उस काल में होगा जब तू अपने को कर्त्तव्यवादी बना करके, कर्त्तव्यनिष्ठ बना करके, और कर्त्तव्यनिष्ठ बनता हुआ और वह अपने में आसक्त न होता हुआ क्रिया कलाप करता चला जाता है। वह मानव महान बनता है, वह परिमार्जित बनता है। जिससे तुम्हारा हृदय पवित्र हो जाएं, मानो देखो, जब इस प्रकार अर्जुन ने कहा, कि प्रभु! यह मैं कैसे जानूंगा, इसको मैं कैसे अनुभव में लाऊं। तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि तुम संसार को, अपने से कृतियों में दृष्टिपात कर, जिससे तेरा मानवीय जीवन उस आभा में न रहे, परन्तु देखो, जब तू अपने कर्त्तव्यवाद का पालन करेगा, ममता को त्यागेगा, तो उस समय तेरी प्रतिभा ऊँची बन करके रहेगी।

व्यष्टि से समष्टि

इस प्रकार, जब गुरु के समीप विद्यमान होके, बहुत विचार विनिमय होता रहा, आत्मा के सम्बन्ध में, यौगिक विचारधारा में, तो मेरे प्यारे! अन्तिम उन्होंने अपने में सूत्रित हो करके और उनसे यह प्रश्न किया कि ब्रह्मरूपं ब्रहा वचप्पृही व्रतम् देवो उन्होंने कहा हे भगवन्! मैं तो यह जानना चाहता हूँ, जैसा आप मुझे उच्चारण कर रहे हैं वैसा मुझे दृष्टिपात कराइये। आप मेरे सखा है, आप मेरे पूज्य हैं, आप मुझे उस रूप को दृष्टिपात कराइये जिससे मेरा कल्याण हो और मैं विश्वसनीय बन जाऊ। तो भगवान् कृष्ण ने अपने वास्तविक स्वरूप को दृष्टिपात कराया। उन्होंने कहा जब मानव का व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश होता हे तो समष्टि में साम्यता आ जाती है और साम्यता को तू दृष्टिपात कर। उस समय उन्होंने अपने ब्रह्ममयी स्वरूप का वर्णन कराया और वर्णन कराकर इसके अन्तरात्मा में शक्ति मानो अपने को उसने प्रवेश किया, तो उन्हें नाना प्रकार की प्राण सखा में, प्राण के ही रूपों में ले गए। जैसे बेटा! देखो, प्राणसूत्र ब्राह जब प्राण की प्रतिक्रिया में योगी अपने शिष्य को ले जाता है, तो नाना प्रकार की जो नस नाड़ियां, उनमें जो विचरण करनेवाला प्राण है, प्राणत्व को आभा में लाना प्रारम्भ करता है। जब आभा में लाता है, तो वही प्राण कहीं रेचक, कहीं कुम्भक में परणित हो जाता है। वही

प्राण कहीं कुम्भक में आता हुआ अपने में शून्यता को प्राप्त करा देता है। वही प्राण जब किसी एक ही अंग में लाना होता है, वहाँ का अंग बलिष्ठ बन जाता है। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इसी आभा में नियुक्त कराया और यह प्राणत्व ब्रह्मः प्राणसूत्र की विवेचना उन्होंने की। उस प्राण में अपने को पिरो करके यह कहा कि हे अर्जुन! तो मुझे दृष्टिपात कर, तू मेरे में अर्पित हो, और मेरे में अर्पित हो करके तू मुझे अन्तर्हृदय से दृष्टिपात कर।

मेरे प्यारे! देखो, कोई भी संसार का गुरु शिष्य का कोई भी सम्वाद हो, वह उसी प्रकार उसे जागरूक करते रहे हैं। आधुनिक काल का यह जगत् नहीं है, परम्परागतों से ही, अतीत के काल में भी, प्रायः ऐसा होता रहा है क्या प्रत्येक मानव, मानव में, अपनी प्रेरणा दे करके, प्रेरित करके, उसे प्रभावित करके, उसमें उसे लाता रहा है। उसी स्वरूप में परणित करता रहा है। मैंने बहुत पुरातनकाल में वर्णन करते हुए कहा था कि मानव को अपनी मानवीयता पर इतना गौरव और इतना विचित्र सूक्ष्मवाद होना चाहिए कि वह अपनी प्रतिभा को जानने वाला बनें।

परन्तु देखो, पुरातनकाल में जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वार पर जाते थे, तो गुरु के द्वार पर जा करके शिक्षा अध्ययन करते, अध्ययन करते करते जब कोई शिक्षा उनके आंगन में नहीं आती, उनसे बारम्बार प्रश्न करते रहते थे। जब प्रश्न किया तो वे उसका उत्तर देते थे। भली भांति उसका उत्तर देते रहे थे और देते देते उस आभा में प्रायः परणित हो गए। उन्होंने कुछ औषधियों का पान भी कराते रहते थे जिससे मानव के प्रज्ञा चक्षुओं में एक शक्ति प्रायः आती चली जाए। तो इस प्रकार हमारे यहाँ मानो परम्परगतों से ही प्रायः ऐसा होता रहा है। वह सखा, सखा कृतियों को वार्त्ता है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या हमें विचारना है कि हम कर्त्तव्यवाद में इतने महान् इतने प्रज्ञावी बन जाएं जिससे हम देवपूजा के सुयोग्य बन करके उससे पूर्व हम ब्रह्म याग में परणित हो जाएं। जब ब्रह्म को अपने में दृष्टिपात करता है, और अपने को ब्रह्म में, ब्रह्म को अपने में, तो एक दूसरे में सजातीय बन जाते हैं। जब एक दूसरे में सजातीय बन जाते हैं तो वही प्रतिभा महान् बन करके मानव के क्रिया कलापों में प्रायः परणित हो

जाती है। उन्हीं क्रिया कलापों में मानवीय जीवन की धारा महान बनती चली जाती है। तो विचार क्या है मैं विशेष विवेचना देने नही आया हूँ कि यह जब हम पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करते तो मानो देखो, वह भयंकर बनों में ले जाते, कहीं आत्मा की चर्चा करते, कहीं देवपूजा में परणित कराते रहते थे। क्योंकि हमारे यहाँ कई प्रकार के शब्द हैं। जैसे जमदग्नि शब्द है, जमदग्नि शब्द का अभिप्राय यह है कि अपने अन्तर्हृदय में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उस अग्नि को जागरूक करना ही अग्न्ााधान करना है। हमारे यहाँ दो प्रकार के अग्न्ााधान परम्परागतों से होते रहे हैं। एक वह अग्न्ााधान है जो बाह्य जगत् में यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में अग्नि को प्रदीप्त करता है, अपनी अग्नि को प्रदीप्त करके कहता है, हे अग्नि! तू उद्बुद्ध हो, मैं तेरे समीप आया हूँ, मैं अपने को अर्पित करना चाहता हूँ। एक तो वह अग्न्ााधान है। एक अग्न्ााधान वह है जो जमदग्नि कहलाता है, जो अग्नि को अपने अन्तर्हृदय में जागरूक करता है। इस अग्नि को जागरूक करने से, मानव मृत्युञ्जय बन जाता है। वह अग्नि कौन सी है? जो जमदग्नि कहलाती है? मानो वह नित्यप्रति अग्न्याधान करता है। प्रातःकाल का समय है, सूर्य उदय होने से पूर्व वह अपने में अग्न्ााधान कर रहा है। अग्न्याधान करके प्राणसूत्र को मन में पिरोना चाहता है, मन को प्राण में पिरोना चाहता है। वह दोनों एक दूसरे के सखा बन जाते हैं और जब एक दूसरे के सखा बनते हैं तो वह अग्नि का चयन कर रहा है, वह जो ज्ञान रूपी अग्नि है, जो मानव के हृदय में, मानो देखो, वह आन्तरिक जगत् में, प्रदीप्त हो रही थी, उसका बाह्य जगत् भी बन गया है। मानो वही अग्नि है जो कई रूपों में परणित हो गई है, नेत्रों से बाह्य रूप का निर्माण होने लगा है। वही अग्नि वाह्य जगत् में पहुंची तो शब्दों का भान होने लगा। वही अग्नि जब बाह्य जगत् में पहुंची तो सुगन्ध को लेने लगा। वही अग्नि जब बाह्य जगत् में पहुंची तो नाना प्रकार के रसों का स्वादन देने लगा। वही अग्नि जब बाह्य जगत् में पहुंची तो स्पर्श करने लगी, प्रीति करने लगी। तो विचार क्या मानो देखो, कहीं कि यह अग्नि कहीं अन्तर्हृदय में जागरूक हो रही थी, अन्तर्हृदय में जमदग्नि याग कर रहा था। जन्म ब्रह्मा जयंव्रतीही वह स्थिर हो करके अपने में अग्न्याधान जमदग्नि बन रहा है। वह अपने में धारण कर रहा है, धारण

करता हुआ एक समय वह विचारने लगता है कि बाह्य अग्नि का तो मुझे भान करना है, बाह्य अग्नि को भी जानना है। तो बाह्य अग्नि के समीप पहुंचा। बाह्य अग्नि काष्टों में रत्त रहती है, साकल्यों में रत्त रहने वाली है। जब बाह्य अग्नि का चयन करने लगा, तो बाह्य अग्नि वायु के रूप में परणित हो गई। जब वायु के रूप में परणित हो गई, तो अग्नि का चयन करने वाला, वायु का चयन करने लगा। वायु का चयन करके वह बाह्य जगत् वाली अग्नि को गति के रूप में दृष्टिपात करने लगा। जब गति के रूप में वह अग्नि दृष्टिपात होने लगी, तो उस अग्नि का वायु में समावेश हो गया। वायु एक गति बन गई। तेजो में उष्णा न रह करके, वह एक गति बन गई और उस गति में अग्नि समाहित हो गई, अग्नि शान्त हो गई। गति के ऊपर जब और गम्भीरता से मनन करने लगे, चिन्तन करने लगे, और गति के द्वार पर पहुंचे, तो वह गति प्राण के रूप में परणित हो गई। योगी जन उसको प्राण के रूप में लाता है, प्राण के रूप में उसको कहीं सूर्य प्राणायाम कर रहा है, कहीं मानो देखो, उसको कहीं रेचक और कुम्भक के रूप में ला रहा है, कहीं पूरक के रूप में उसका भरण कर रहा हैं। तो विचार क्या, वह कहता है इदन्नमम् ब्रह्मा अग्निम् व्रहे वर्चोसम्भवा अग्निः। मैं अग्नि का चयन करना चाहता हूँ, मेरे प्यारे! वह अग्नि गति के रूप में परिवर्तित हो गई, वहीं अग्नि वायु प्राण के रूप में परणित हो गई। हमारे इस मानव शरीर में प्राण बन गए हैं, प्राणों के विभाजन हो गए हैं, प्राणों का जब विभाजन हो गया तो भिन्न भिन्न रूपों में अग्नि प्रदीप्त होने लगी, उस अग्नि को ऋषि अपने अन्तर्हृदय में अग्न्याधान करने लगा। अग्न्याधान करके वह ब्रह्मचारी को कहता है, शिष्य को कहता है, हे ब्रह्मचारी! आ तू इस अग्नि का अपने में चयन कर, जिस अग्नि को मैं चयन कर रहा हूँ। वह संकल्पमयी अग्नि का बना लेता है। वह संकल्पों में हो वायु का चयन करता है। जैसे मानो देखो, प्राण को स्वतः प्राण चन्द्रमा को अपने में दृष्टिपात करता हुआ संकल्पोमयी बन जाता है। वह संकल्प उसका इतना महान्, इतना विचित्र बन जाता है कि क्या वह सर्वत्र संकल्पमयी ब्रह्माण्ड ही दृष्टिपात आने लगता है। यह संकल्पोमयी मानव जैसे प्राणाधान हो करके प्राणों को उग्ररूप बना करके अपने में चयन करने लगता है, तो वह प्राणायाम करता

हुआ, प्राण को मन में, मन को प्राणम् ब्रह्मेः मनका बना लेता है, प्राण सूत्र बन जाता है, और प्राणसूत्र बन करके वह विभक्ति क्रिया को त्याग करके, प्रकृति जो जड़वत् है,उसको चैतन्यता में दृष्टिपात करने लगता है। वह अपने में ध्यानावस्थित हो जाता है। तो विचार विनिमय क्या? मैं तुम्हें बहुत गम्भीर रूप में ले गया हूँ। यह इसका बहुत गम्भीर क्षेत्र है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा चिन्तन और मनन करते थे, क्रियात्मक क्रिया कलाप करते थे, तो उस समय वह विद्याएं हमारे समीप आती रहती थीं। इसका अपने में ध्यान अवस्थित हो करके, अपने में चयन करते रहे हैं। तो विचार क्या मानो वह रेचक और कुम्भक करने से अपने में ही वह सूत्र बन जाता है। मन प्राण को अपने में प्राणेयाम प्राणम् ब्रह्मः मनाः समाहित कर लेता है। जब वह समाहित हो जाता है, तो एक गति बन जाती है। मन गति में प्रवेश हो गया, प्राण सखा के द्वार पर चला गया, यही प्राण बेटा! देखो, गतियों का केन्द्र है। यह वायु ही प्राणत्व कहलाता है, वायु के रूप में यह आयु बन जाता है। जितना आयु है वह प्राण सखा के आधारित पर रहता है। यह प्राण ही आयु है, आयु के देने वाला है। जब यह प्राण आत्मा के सहित निकल जाता है, तो केवल यह वायु निकल गया है, प्राण निकल गया है, प्राण चला गया है।

तो बेटा! यह शून्य बिन्तु बन गया है, यह शून्य बिन्दु बन जाता है, अपने में सान्त्वना को प्राप्त हो जाता है। तो विचार विनिमय क्या कि बेटा! हमें देवपूजा के सम्बन्ध में वायु का पूजन करना है। जैसे हम अग्नि का पूजन करते हैं, ऐसे ही वायु का पूजन करना है। ये जो वायु है, गति है इसको जानना है। ये कहाँ कहाँ क्या कार्य करता है? बेटा! यह जो ब्रह्माण्ड है, नाना प्रकार का जो ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ रहा है, नाना लघु मस्तिष्क में, जो ये ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ रहा है, वह ब्रह्माण्ड प्राणसूत्र में पिरोया हुआ है। प्राणसूत्र में पिरोए होने से एक माला बन गई है। मैं माला की चर्चा बहुत करता रहता हूँ, मानव को माला धारण करनी चाहिए। परन्तु माला बड़ी बड़ी विचित्र बन जाती है। हम जिन मालाओं की गणना भी नहीं कर पाते, प्राण ब्रह्म लोकाम् वृहे व्रताम् वेशो सम्भवा वह प्राण सूत्र बन करके इस ब्रह्माण्ड को धारण कर रहा है। वह ब्रह्मयागी, ब्रह्मयाग कर

रहा है, देवयागी, देवयाग कर रहा है। देवताओं के समीप चला जाता है। ब्रह्म लोकाम् अश्वतम् और वह ब्रह्माण्ड की प्रतिभा को प्राण ही संसार में पिरोया हुआ है। जिस लोक में तुम चले जाओगे, उस लोक का एक दूसरे से समन्वय रहता है और वह जो समन्वय है वह केवल प्राण के ही कारण हैं वह प्रकृतिवाद है और प्रकृतिवाद को अपने सूत्र में धारण करने वाला प्राण कहलाता है।

मैं कहाँ चला गया हूँ? बड़े गम्भीर रूप में रत्त हो गया हूँ। मेरे प्यारे! देखो, ये जो नाना प्रकार का प्राणी मात्र है, ये भी प्राण से ही वाची कहलाता है। एक दूसरा प्राणी एक दूसरे में पिरोया हुआ हैं पिरोए हुए का अभिप्राय क्या? उसके मध्य में प्राण गति कर रहा है और वह प्राण में पिरोया हुआ है, वह सूत्र में पिरोया हुआ है। वह प्राणियों को आहार कर रहा हैं कि प्राणी एक दूसरे का सहायक बना हुआ है, मानो एक प्राणियों को आहार कर रहा है, वह सहायक बन गया है, वह उसका भोजन बन गया है। मानो इसी प्रकार एक प्राणी, प्राणी का सहायक बना हुआ है। माता से जब ये प्रश्न करते हैं, माता! तेरा कौन सहायक है तुझे कौन निर्णित कराने वाला है? तो माता उत्तर नहीं दे पाती। परन्तु जब दर्शनों में मानव परणित होता है, तो माता का जो सहायक है, वह पुत्र है। पत्नी का जो सहायक है, वह पति है, रक्षक है। इसी प्रकार संसार एक दूसरे में पिरोया हुआ दृष्टिपात आने लगा। मानो देखो, माता से माता पिरोई हुई है, माता से भी कोई माता पिरोई हुई है। अन्त में झड़ी लगाते चले जाओ, लोकों में चले जाओ, एक लोक दूसरे को सहायता दे रहा है, शक्ति दे रहा है, ऊर्ज्वा दे रहा है और वह उसके गुणों का बखान कर रहा है। जैसे सूर्य है, वह चन्द्रमा को अपनी सत्ता दे रहा है और चन्द्रमा उसके गुणों का बखान करता हुआ अमृत दे रहा है। वह शीतल बन करके ऊर्ज्वा दे रहा है। एक ऊर्ज्वा कहाँ से लेता है। उसी चन्द्रमा का समन्वय समुद्रों से होता है, समुद्रों से परमाणुओं को लेता है। वह एक परमाणु दूसरे में पिरो रहा है, वह परमाणु स्थूल बन रहा है, वही मेघों के रूप में परणित हो रहा है और वही वृष्टि के रूप में है, और वही नाना प्रकार के व्यंजनों को जन्म देने वाला है। और वही चन्द्रमा पुनः अमृत प्रदान करता है। कैसा मेरे प्यारे! प्रभु का यह अनुपम जगत् है। इसके ऊपर

जब विचार करते हैं, तो एक दूसरा एक दूसरे में पिरोया हुआ सा यह जगत् दृष्टिपात आता है। यह चन्द्रमा अमृत देता है, इसी अमृत का सम्बन्ध माता के वीरतव के रूप में आता है, वही वीरतव ममतामयी के रूप में परणित हो जाता है, वही वीरतव के रूप में स्थूल बन करके, प्राण धारी बन करके, जत् में आ जाता है। यह कैसी मेरे प्यारे! प्रभु की रचना हैं विचार आता है वही चन्द्रमा है जिसका समन्वय समुद्रों से होता है। समुद्रों से जलों का उत्थान हुआ और जलों को ले करके परमाणु रूप में मधुर जल बना देता है, अन्तरिक्ष में प्रवेश करा देता है। वही इन्द्र वायु से उसका समन्वय होता है, वायु से समन्वय हुआ, वह इन्द्र नाम की वायु बन करके उसको विच्छेद कर देती हैं वही मूल में अग्नि आ जाती है, अग्नि की जब ऊष्णता विचित्र बनती है, वही सूर्य द्यौ से प्रकाश ले करके, द्यौ से ऊर्ज्वा ले करके, इन्द्र अग्नि को तपाता है। वह अग्नि अपने में तपायमान है, उसी से मेघ और मेघ से जल वृत्तियां ब्रह्म लोकाम् ब्रहे देवाः यह देवता हमारे कितने पूजनीय है? कितनी ऊर्ज्वा दे करके मानव को शक्तिशाली, वायुमण्डल को शक्तिशाली बना रहे हैं। तो विचार विनिमय क्या मेरे पुत्रों! वही चन्द्रमा है, वही समुद्र हैं। जो अग्नि समुद्रों में है वही अग्नि साधारण अग्नि है। जो अग्नि बड़वानल नाम की है, वही अग्नि वैश्वानर है। जो अग्नि वैश्वानर है, वही अग्नि आह्वनीय अग्नि कहलाती है।

मेरे प्रभु! तू कितने अग्नि के स्वरूप को निर्माणित कर देता है। वही अग्नि भिन्न भिन्न रूपों में सूर्य से समन्वय करके पृथ्वी से उसका मिलान होता है, तो पृथ्वी में जल को तपाया जाता है, जल अपने स्वरूप को धारण कर लेता है। इसी प्रकार वही अग्न्यायाधान करता हुआ, अग्नि को अपने में धारण करता हुआ, रूप को धारण कर लेता है। वही अग्नि है, जो पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो करके रत्नों का निर्माण करती है। वह अग्नि है, जो सूर्य की किरणों के साथ जा करके अग्नि का अग्नि से समन्वय हुआ तो अन्न की उत्पत्ति कर देती है। कैसा विचित्र यह जगत् है, एक दूसरे में कैसे पिरोया हुआ है, एक दूसरे में कैसे संगतिकरण हो रहा है। वही संगतिकरण नाना वनस्पतियों का, नाना धातुओं का रस बन करके रजत्व के रूप में, पुरुष के रूप में आ जाता है। तो विचार

विनिमय क्या मेरे पुत्रों! क्या प्रभु का कैसा अनूठा जगत् है, प्रभु का कैसा अनूठा ये ब्रह्माण्ड है, जिसमें बेटा! कितना उज्ज्वल एक संगतिकरण हो रहा है। मैं संगतिकरण की चर्चा तो कल प्रगट करूंगा। आज तो केवल तुम्हें यह परिचय देने आया हूँ, क्या लोक लोकान्तरों का भी कैसा संगतिकरण हो रहा है, कैसा विचित्र यह संगतिकरण है? वही सूर्य है, वही चन्द्रमा है, वही चन्द्रमा है, तो वही सूर्य है। वह इन्द्र बन रहा है, तो वह गौतम बन रहा है। वह गो के अन्धकार को अपने में लय कर रहा है, और वह इन्द्र को भी धिराज बना करके, अपने में धारण कर रहा है। ऊर्ज्वा में प्रवेश करता हुआ वह द्यौ में प्रवेश करता है, और द्यौ पृथ्वी के और अन्तरिक्ष के मध्य में रहती है। मानो वही द्यौ एक दूसरे के मध्य में रहने वाली, जो एक दूसरे से मिलान कराती है जो मध्य में नहीं रहेगी, तो मिलान और समन्वय नहीं हो सकता, उसका संगतिकरण भी नहीं हो सकता। इसी प्रकार हमें विचार विनिमय करना है, कि हम अपने में संगतिकरण करके अपनी आत्मा को चेताने वाले बनें। वही आत्मा स्वरूप आत्मा का सम्बन्ध, चित्त के मण्डलों से होता है, चित्त के मण्डल का समन्वय इस अन्तरिक्ष से होता है, अन्तरिक्ष का समन्वय प्रभु के चित्त से होता है। चित्त का चित्त से मिलान हुआ तो वह परमात्मा के आँगन में लय होने लगता है।

तो विचार विनिमय क्या? आज मैं विशेष विवेचना प्रगट करने नहीं आया हूँ और मैं व्याख्यता नहीं हूँ केवल परिचय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की महती में सदैव ध्यानावस्थित हो जाएं। बेटा! वह परमपिता परमातमा वरणीय है। आज हम उसको अपना वरुण बनाएं। उसको वरुण बना लेते हैं, वह चेतनावादी है, हम में प्रवेश हो रहा है, वह हमारा सूत्र है, हम उसके मनके हैं। जैसे ब्रह्माण्ड एक दूसरे में सूत्र बना हुआ है, इसी प्रकार वे परमपिता परमात्मा भी हमारा सूत्र है, हम मनके बने हुए हैं। प्रभु कैसा अनुपम है! इसी प्रकार प्राण परमाणु में पिरोया हुआ है, माला बनी हुई है। जैसे हमारे यहाँ सौर मण्डल है, सौर मण्डलों की माला निहित हो करके आकाश गंगा बनती है। जब नाना आकाश गंगाएं एक समूह में हो जाती हैं, तो निहारिका बन जाती हैं, नाना निहारिका एक समूह वर्धक हो जाती है तो अवन्तिका के रूप में दृष्टिपात आती

हैं। यह ब्रह्माण्ड तो बड़ा अनुपम है, बड़ा अनूठा है। इसके ऊपर विचार विनिमय हम करते रहते हैं आज का विचार हमारा क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए अथवा एक दूसरे में पिरोया हुआ जगत् हम दृष्टिपात करें। हमारे यहाँ यज्ञकर्त्ता के रूप में, संगतिकरण आता है, परमपिता परमात्मा याज्ञिक है, वे परमपिता परमात्मा संगतिकरण कर रहा है। इस ब्रह्माण्ड का संगतिकरण करता है, पदार्थों का संगतिकरण होता है। संगतिकरण की चर्चा तो बेटा! मैं कल ही प्रगट करूंगा। आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने प्राणसूत्र को जानने वाले बनें। आचार्य के समीप विद्यमान हो करके एक दूसरे में हम पिरोने वाले बनें, हम उसमें पिरोए जाएं, वह हमें अपने में पिरोले तो हमारा कल्याण हो जाता है। हम कल्याण के मार्ग पर जाना चाहते हैं, हम मृत्युंजय बनना चाहते हैं। हम मृत्युंजय जभी बनेंगे जब एक दूसरे में पिरोया हुआ अपने को स्वीकार करेंगे। हम किसी के मनके हैं, कोई हमारा मनका है, मानो देखो, मनके मनके जब एक दूसरे में पिरोएं जाएंगे तो माला बनेगी। उस माला को हम धारण करेंगे, तो हम चिन्तन, मनन करने वाले बनेंगे, अपने में संगतिकरण, आत्मा को चेताने वाले बनेंगे।

ये है बेटा! आज का वाक्, अब समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं संगतिकरण की कल प्रगट करूंगा, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय ये कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, जड़वत् में, चैतन्यवत् में, हम प्रभु को दृष्टिपात करते चले जाएं। यह है आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज मैंने कुछ बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करके तुम्हारे समीप लाने का प्रयास किया। ये आज का विचार हमारा समाप्त। मैं जमदग्नि की चर्चा कर रहा था। अग्नि का अग्नि को चेतना यह हमारा कर्त्तव्य है। अग्नि को चेतना ही हमें जमदग्नि बनना है। जमग्नश्च व्रह्म वाचो देवाः कल में चर्चा करूंगा कि हमारे यहाँ नाना ऋषि इस प्रकार के हुए हैं। अब वेद चर्चाएं होंगी। अब वेद का पठन पाठन होगा इसके पश्चात् वार्त्ता

समाप्त। ओ३म् देवाः माणां त्वा रथं आभ्यां दधि ब्रह्म गायाः। दिनांक 18 10 1985।

९ 07 11 1985 पुष्प 53 राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य गार्गी संवाद

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चेतन जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है, क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन कर रहा है अथवा उसके गुणों का गुणवादन कर रहा है। प्रत्यक मानव परम्परागतों से ही, उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की उड़ानें उड़ता रहा है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना प्रकार के वैज्ञानिक हुए हैं, परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। क्योंकि उसका ज्ञान और विज्ञान नितान्त माना गया है। जितना भी यह ब्रह्माण्ड है, उस ब्रह्माण्ड के अन्तिम जो सूत्र हैं, अथवा जो मन का है, वह उस परमपिता परमात्मा की आभा में निहित रहता है।

आज के हमारे वेद के पठन पाठन में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रायः विवेचना होती रहती हैं। आज का हमारा वेद मन्त्र उस वरुण सूत्रों में गति कर रहा है उस महान् शिशु में गति कर रहा था जो इस ब्रह्माण्ड का एक सूत्र बना हुआ है। हमारे यहाँ शिशु प्राण को कहते हैं। परन्तु जब वैदिक साहित्य में और गम्भीरता में रत्त होता हैं तो माता के गर्भस्थल में जो शिशु होता है वह मानव के स्वरूप में विद्यमान होता है। जब और भी गम्भीरता से मनन और अध्ययन करते हैं तो शिशु उस परमपिता परमात्मा को कहा जाता है क्योंकि वह सर्वत्रता में विद्यमान है, वह शिशुओं को भी शिशु है, जिस आभा में वह रहने वाला हैं परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्र आत्म चिन्तन के लिए भिन्न भिन्न

प्रकार की आभा में मानव रत्त हो रहा था। जिन वाक्यों को हम बारम्बार प्रायः उद्धृत करते रहते है और विचारते रहते हैं कि हमारा मन और जीवन एक आध्यात्मिक शिशु के रूप में विद्यमान रहता है। क्योंकि हम प्रत्येक मानवीय क्षेत्रों में आत्मा के ऊपर अपना विचार विनिमय करते हैं, प्रत्येक वेदमन्त्र हमें यही कहता है।

हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, दो प्रकार के विज्ञानवेत्ता हुए हैं, एक विज्ञानवेत्ता वह कहलाते हैं जो भौतिक विज्ञानवेत्ता हैं, एक विज्ञानवेत्ता वह कहलाते हैं जो आध्यात्मिकवाद की उड़ान उड़ते रहते हैं। परन्तु हमारे ऋषि मुनियों की एक बड़ी विचित्र एक देन रही है कि आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान दोनों एक सूत्र में पिरोने का उन्होंने प्रयास किया है। जिसके ऊपर हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, अन्वेषण होता रहता है। हमारे यहाँ इस प्रकार के राजा हुए हैं जिन राष्ट्रों ने आध्यात्मिकवाद की उड़ानें उड़ी हैं जैसे राजा जनक के राष्ट्र की चर्चाएं आती हैं। राजा के जनक के यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की सभाएं होती रही हैं। राजा जनक के यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की सभाएं होती रही हैं और उन सभाओं में ब्रह्मवेत्ताओं का आगमन होता रहा है और वह ब्रह्म की उड़ान उड़ते हुए राष्ट्र को ऊँचा बनाने का प्रायः प्रयास करते रहते थे। और अपनी अनुभूति का प्रयोग जो अन्तरात्मा की प्रेरणा थी उसके आधार पर अपने विचार देने का वह प्रायः प्रयास करते रहते थे। मुझे वह काल जब स्मरण आता रहता है, नाना ऋषि मुनियों की चर्चाएं प्रायः हमारे समीप आती रही हैं और उनका विचार एक गम्भीर मुद्रा में मुद्रित रहा है। जैसा मुनिवरों! देखो, राजा जनक के यहाँ एक समय आध्यात्मिक याग होने लगा। परन्तु जिसे हम ब्रह्मयाग भी कहते हैं, ब्रह्म का चिन्तन करना और दर्शनों के ऊपर भिन्न प्रकार की टिप्पणियां होना। तो वह राजा जनक के यहाँ एक समय नाना ऋषि मुनियों का एक समूह एकत्रित हुआ। जब ऋषि मुनियों में अस्वल जैसे महान् ब्रह्मवेत्ता थे, अष्टावक्र जैसे ब्रह्मवेत्ता थे। जिनका जीवन ही आध्यात्मिकवाद में प्रायः रत्त रहा है। मुझे स्मरण आता रहता है कि राजा जनक ने एक सहस्र गऊओं के सिंहों के ऊपर स्वर्ण को मढ़ा और ब्रह्मवेत्ताओं के समाज में यह घोषणा की कि तुममें जो सबसे ऊँचा ब्रह्मवेत्ता हो, ब्रह्मनिष्ठ हो इन गऊओं को अपने आश्रम में ले जा

सकता है। तो राजा जनक की इस घोषणा को पान करके, कोई ब्रह्मवेत्ता सभा में ऐसा नहीं हुआ जो उन गऊओं को अपने आश्रम में ले जाए।

परन्तु कुछ समय के पश्चात् याज्ञवल्क्य ऋषि अपने ब्रह्मचारिओं के सहित, उनके शिष्य यज्ञदत्त, रोहिणीवृत्तीका दोनों ब्रह्मचारी जब राजा जनक की उस ब्रवेत्ता समाज में आए तो उन्होंने कहा कि हे यज्ञदत्त ब्रह्मचारी! इन गऊओं को अपने आश्रम ले चलो। दोनों ब्रह्मचारियों ने उन गऊओं को अपने आश्रम ले चलो। दोनों ब्रह्मचारियों ने उन गऊओं को ले करके अपने आश्रम को उन्होंने प्रस्थान किया। परन्तु राजाजनक अपने आसन पर विद्यमान हो गए और याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आसन पर जब विद्यमान हो गए, तो ब्रह्मवेत्ताओं के हृदयों में अग्नि प्रदीप्त हो गई और उस ब्रह्म समाज ने कहा हे याज्ञवल्क्य! यदि तुम हम में सबसे ऊंचे ब्रह्मवेत्ता हो, तो हमारे प्रश्नों का उत्तर दो? महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि मेरे से तुम प्रश्न करो, तुम्हारे प्रश्नों का यथोचित्त उत्तर दूंगा। यदि जानता हूँगा तो अवश्य उत्तर दूंगा। ऋषि मुनियों के हृदयों में एक महान् उदारता रही है और यह उदारता रही कि ब्रह्मवाचो देवाः उनमें अभिमान नहीं होता था। क्योंकि जिनमें पूर्णज्ञान होता है विवेक होता है, उनमें अभिमान नहीं हुआ करता है। तो राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हो गए, ऊर्ध्वा में आसन लग गया और यह कहा हे ब्रह्मवेत्ता! अब हम तुमसे कोई प्रश्न करना चाहते हैं। राजा जनक के जो पुरोहित थे जिनका नाम अस्वल था, उन्होंने यह प्रश्न किया कि हे ऋषिवर! हम यह जानना चाहते हैं कि यह जो यज्ञशाला है यह ब्रह्मवेत्ताओं की यज्ञशाला है। यहाँ यज्ञमान मृत्युञ्जय बनना चाहता है, मृत्यु से पार होना चाहता है। तो हे ऋषिवर! हम यह जानना चाहते हैं कि यज्ञमान कैसे मुक्ति पाएगा। कैसे यह मृत्युञ्जय बनेगा? क्योंकि याग होना है और उस याग में ब्रह्मवाची देवाः उस याग में आहुति देना है। तो राजा जनक के उन वाक्यों को पान करने वाले ब्रह्मवाचो देवाः उनके पुरोहित अस्वल ने जब याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से यह प्रश्न किया तो राजा और उसके जो पुरोहित थे उनके वाक्यों को पान करके याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा, हे भगवन्! हे अस्वल! यह जो यज्ञमान आहुति देना चाहता है यह मृत्यु से पार

जब होगा जब इसके द्वारा यह तीन होत्ताओं से आहुति देगा। एक आहुति पूर्ण उक्ति आहुति कहलाती है, उस पूर्ण उक्ति आहुति से ब्रह्म का ज्ञान होता है, एक आहुति चटाचट होती है जिससे राष्ट्रवाद का ज्ञान होता है और एक पृथ्वी में ओत प्रोत होने वाला साकल्य है जहाँ वह अप्रतं अमृताम् लोकाः वह विज्ञानवेत्ताओं के लिए महत्वपूर्ण है। इन तीनों को जानने वाला ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म के समीप चला जाता है। जब उन्होंने यह कहा, अस्वल ने कहा भगवन्! यथार्थ है। परन्तु देखा महात्मा अस्वल एक प्रश्न और करते हुए बोले, कि हे प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि अमृताम् ब्रह्मलोकाम् यह जो यज्ञमान है इसकी पूर्णउक्ति जो आहुति है वह उसका समन्वय कहाँ रहता है? तो उन्होंने कहा कि उसका समन्वय मानव के अन्तर्हृदय से होता है क्योंकि हृदय में ही पूर्ण उक्तियों का गमन होता रहता है। तो वह मौन हो गए। अस्वल जब मौन हो गए तो मुनिवरों! उनसे कोई प्रश्न करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ। जब कोई भी प्रश्न करने के लिए उपस्थित नहीं हुआ तो ब्रह्मवेत्ता सब मौन हो गए, महात्मा अस्वल भी मौन हो गए।

तो मेरे प्यारे! देखो, कोई भी ब्रह्मवेत्ता उस समाज में उपस्थित नहीं हुआ, तो भगवन्! ब्रह्मावाचो मुनिवरों! देखो, चाक्राणी गार्गी उपस्थित हो गई और चाक्राणी गार्गी ने कहा हे प्रभु! आप मौन ब्रह्मावाचो सब ब्रह्मवेत्ता से आज्ञा पाती हूँ कि मैं इस ब्रह्मवेत्ता से कुछ प्रश्न करना चाहती हूँ, यदि तुम्हारी आज्ञा हो। तो ब्रह्मावेत्तओं ने एक स्वर में होकर के कहा कि देवी! तुम प्रश्न करो। याज्ञवल्क्य मुनि के द्वारा वह विराजमान हो गये। उन्होंने कहा हे भगवन्! मैं आपसे कोई प्रश्न करनाचाहती हूँ। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले, देवी! जो तुम्हारी इच्छा हो तुम प्रश्न कर सकती हो। उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूँ कि जिस यज्ञशाला में हम सब विद्यमान हैं यह यज्ञशाला क्या है? उन्होंने कहा यह ब्रह्मवेत्ताओं का एक समूह है उन्होंने कहा यह जो ब्रह्मवेत्तओं का समूह है इस ब्रह्मवेत्तओं के समूह में क्या है? याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि इनके मध्य में इनके वद्धप्रवह, प्रवाह से गति करने वाला ज्ञान है। तो उन्होंने कहा प्रभु! मैं ज्ञान के सम्बन्ध में अपने को ले जाना चाहती हूँ तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे तो उन्हेंने कहा हे देवी!तुम प्रश्न करो। उन्होंने कहा हे भगवन्! मैं यह जानना चाहती हूँ कि संसार मेंयह विज्ञान क्या है? उन्होंने कहा

देवी! यह जो विज्ञान है यह दो प्रकार का माना गया है, एक भौतिक विज्ञान है, एक आध्यात्मिक विज्ञान है। उन्होंने कहा कि भौतिक विज्ञान किसे कहते हैं? उन्होंने कहा कि भौतिक विज्ञान उसे कहते हैं जो अणु और परमाणुओं के आंगन में रत्त रहने वाला है। आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं जो ब्रह्मवेत्तओं के मध्य में विद्यमान हो करके आत्मा को अपने में ही आत्मा का चिन्तन करता रहता है। तो गार्गी ने कहा प्रभु! भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान का क्या समन्वय है, जो दोनों का समन्वय हो करके मानव के जीवन को ऊँचा बना सके। उन्होंने कहा हे देवो! जो भी आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता है, वह भौतिकवाद के मार्ग से हो करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता रहता है।

तो उन्होंने कहा प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ कि यह आध्यात्मिकवाद के मार्ग पर यह भौतिक विज्ञान के मार्ग से हो करके कैसे मनन करता है, मैं उसी को जानना चाहती हूँ। इस आभा में याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले कि हे देवी! तुम प्रश्न करो और मैं प्रश्नों का उत्तर दूंगा। उन्हेंने कहा तो प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि भौतिक विज्ञान का सबसे प्रथम मनका क्या है? जो सू में पिरोया जाता है। उस समय ऋषि ने कहा हे देवी! सबसे प्रथम जो मनका है वह सूर्य कहलाता है। यह जो सूर्य है यह प्रकाश का देने वाला है, प्रातःकालीन यह प्रकाश को ले करके आता है। मेरी प्यारी माता जागरूक हो करके अपने पुत्रों! से कहती है, हे बाल्य! आओ तुम जागरूक हो जाओ। यह भानु उदय हो गया है। यह प्रकाश देने के लिए तत्पर है, दिवस आ गया है। तो मुनिवरों! देखो, वह माता अपने पुत्रों! को आगरूक कर देती है, विद्यालय में विद्या का अध्ययन प्रारम्भ हो जाता है। और वैज्ञानिकजन अपने में अनुसन्धान करने लगते है। हे देवी! प्रातःकालीन यह सूर्य द्यौ से प्रकाश ले करके, यह प्रकाश का द्यौतक बन करके आ जाता है। मानव के नेत्रों का प्रकाश बन करके आता है, नाना प्रकार की वनस्पतियों को यही तो तपाने वाला है। हे देवी! तुम्हें यह प्रतीत है यही सूर्य है जो नाना प्रकार की देखो, स्थावर सृष्टि में प्राणसत्ता को प्रदान करने वाला है। तो चाक्राणी बड़ी हर्ष ध्वनि अपने में करने लगी। उन्होंने कहा तो भगवन्! यह जो सूर्य है यह हमारे व्यापार का एक द्यौतक कहा गया है, इसीलिए सूर्य को अपना प्रकाशमान स्वीकार करके गमन

वाले बनें। उन्होंने कहा हे भगवन्! ब्रह्म लोकाम् हिरण्यम् वृथाः वाचोः ब्रह्म लोकां, सम्भूति लोकाम् देवाः क्या यह सूर्य ही है जो मानव को प्रकाश देने वाला है? उन्होंने कहा देवी! यही तो प्रकाश है, यही तो प्रकाश का द्योतक बना हुआ है।

तो मुनिवरों! उन्होंने कहा भगवन्! मैं यह जानना चाहती हूँ कि दूसरा मनका क्या है? इस माला का दूसरा मनका क्या है? उन्हेंने कहा दूसरे मनके का नमा हमारे यहाँ चन्द्रमा कहा जाता है, यह चन्द्रमा अमृत के देने वाला है अमृत के बहाने वाला है। यही तो दूसरा मनका कहलाता है जिसमें विज्ञान विद्यमान रहता है, यही चन्द्रमा है जो पूर्णमा के दिवस यह अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त हो करके और इसका समन्वय समुद्रों से होता है समुद्रों से जलों का उत्थान होता है। और उसी का अमृत बना करके यह शीतल आभा में रमण करने वाला हैं यह कांति को देने वाला है, रात्रि का पति है। मेरे पुों माता के गर्भस्थल में जो शिशु रहता है उसको अमृत को बहाने वाला है। भूमि के गर्भ में जो नाना प्रकार की कृषि उपज रही है उसको अमृतमयी बनाने वाला है। जो विज्ञानवेत्ता है वह यह जानते हैं कि यह विज्ञान अपने में कितना अद्वितीय रहता हैं यह अद्वितीय बन करके अमृत मयी कहलाया गया है, जिस अमृत को पान करने वाला अपने में अमृमयी बहाने लगता है। चाक्राणि ने कहा प्रभु! यथार्थम् ब्रह्मा भगवन्! यही मानव का सूत्र है, क्या यही मानव के मानव को अमृत प्रदान करने वाला है। हां देवी! यही अमृत के देने वाला है, यह अमृत को बहाता रहता है, अमृतमयी मानव को बनाता रहता है। इस अमृत को हमें पान करना चाहिए। यही तो देखो, समुद्रों को आभा को अपने में धारण करने वाला है, अपने में ओत प्रोत कराने वाला है, इस अमृत को पान करके मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है।

चाक्राणि ने कहा प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ यह दूसरा मनका कौन सा है। जो विज्ञान के वाङ्मय में रत्त होने वाला है। याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे देवी! इसका तृतीय जो मनका है वह अग्नि कहलाया जाता है। अग्नि अपने में अद्वितीय कहलाती है। यह अग्नि ही तो प्रकाश के देने वाली है। यह अमृत ही तो, यह अग्नि ही दूसरा मनका कहलाती है, जो अग्नि मानव के जीवन का साथी बन करके, अग्नि ही तो प्रकाश को देने वाली

है। जब यह अग्नि के हम समीप जाते हैं तो कितने प्रकार की अग्नियां हमारे समीप आ जाती है। एक अग्नि गार्हपथ्य नाम की अग्नि होती है, गृहस्वामी और गृह स्वामिनी इस अग्नि का चयन करते हुए अपने गृह को स्वर्ग बनाते हैं। प्रत्येक मानव, प्रत्येक मेरी प्यारी माता के हृदय में यह आकांक्षा लगी रहती है कि मैं अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता हूँ। माता भी यही कहती हैं, पितर भी यही कह रहा है गृह कैसे स्वर्ग बनते हैं। जब मुनिवरों! देखो, माता पिता अपने में ऊर्ध्वा में चयन करते हैं महान क्रिया कलाप करते हैं और गार्हपथ्य नाम की अग्नि को अपने में धारण करने लगते है। वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि क्या है? प्रातःकालीन अपनी वाणी को ले करके अग्नि का चयन करता है और यज्ञमान स्वाहा कह करके अपने गृह को अग्नि में परणित कर देता है। माता पिता जिस चयन को कर रहे हैं, जिस क्रिया कलाप को कर रहे हैं, वही बाल्य उनका अनुसरण करते हैं। जब बाल्य अनुसरण करते हैं तो गृह स्वर्ग बन जाता है। वह गृह महानृ बन करके अपने स्थलियों में ऊर्ध्वा में गति करने लगता है। इसीलिए कोई भी मानव यह चाहता है कि मैं अपने गृह को विज्ञानवेत्ता, अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता हूँ, तो मुनिवरों! देखो, स्वर्ग उस काल में बनता है जब कि वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करता है। अग्नि हमारे यहाँ विद्रोह के रूप में परणित की गई है। वह भी अग्नि है जिस अग्नि में मेरी प्यारी माता हमें भोजनालय तपाती है और भोजन तपा करके अन्नाद् को पान कराती है और वह भी अग्नि है जो आयुर्वेदाचार्यो के गृहों में जिस अग्नि का चयन होने लगता है। वह अग्नि मुनिवरों! दो अब्रहो वाचक अग्नि कहलाती है पिच्यासी प्रकार की अग्नियों का आयुर्वेदाचार्यो ने चयन किया है। वह भी अग्नि कहलाती हे जो वैज्ञानिकों के मध्य में विज्ञान के युग में प्रवेश हो करके वैज्ञानिकजन इस अग्नि का चयन करते हैं और अग्नि का चयन करते हुए अग्नि को अपने में ध्यान करते हुए सम्भवा लोकाम् देवाः अग्नम् ब्रह्म लोकाम वह अग्नि ही तो कहलाती है जो अणु और परमाणुओं के रूप में रत्त रहती है। वैज्ञानिक अपनी स्थलेयां पर विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते रहते हैं, अन्वेषण करते रहते हैं, विचारते रहते हैं यह अणुवाद क्या है? यह परमणुवाद क्या है? इसके पश्चात् वह यन्त्रों का निर्माण करते हैं, जिन यन्त्रों में

वैज्ञानिकजन विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष की यात्रा करते हैं। मेरे पुत्रों! विचार विनिमय क्या यह भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नियों का चयन प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में होता रहता है। हमें वेद की उस मौलिक वस्तुओं को विचारना है जो हमारा वेद और दर्शनशास्त्र कह रहा है। हमारा मानवीय दर्शन कह रहा है। हे अग्नि! तू हमारे हृदय में आ करके प्रवेश कर। हे अग्नि! तेरा हम आह्वान करते हैं। हे, अग्नि! तू वैज्ञानिकों के युग में प्रवेश हो करके वैज्ञानि कजब तेरा चयन करते रहते हैं तो अणुओं के रूप में, यन्त्रों के रूप में दृष्टिपात होने लगती है। तो इस प्रकार जब ऋषि ने चाक्राणि को उत्तर दिया तो चाक्राणी मौन हो गई।

चाक्राणि बोली, कि प्रभु! मैं एक समय उद्दालक गोत्र के ऋषियों में पहुंची थी। तो उद्दालक गोत्र के ऋशि इस अग्नि के द्वारा अपने यन्त्रों का निर्माण करके अन्तरिक्ष में अपने पूर्वजों का दर्शन कर रहे थे। उन्हेंने कहा देवी! प्रायः विज्ञान तो उसी को कहते हैं जो देखो, अपने पूर्वजों का दर्शन करता है। परन्तु इतने में चाक्राणी बोली कि हे प्रभु! मैं इससे आगे मनके की चर्चा करना चाहती हूँ, इस अग्नि से आगे मनका कौन सा है, जो विज्ञान में प्रवेश कर जाता है। उन्होंने कहा चतुर्थ जो मनका है वह मनका हमारे यहाँ शब्द कहलाता है। यह शब्द अपने में ध्वनित हो रहा है। प्रत्येक मानव शब्दों की आभा में निहित रहने वाला है। प्रत्येक मेरा प्यारा मुनिजन क्या, मेरे पुत्रों! देखो, जितने भी यह लोक लोकान्तर है अथवा वायु हैं इनमें प्राण अपने में ध्वनित हो रहा है। वह ध्वनि अपने में ध्वनित होती है जैसे मानव का शब्दों ब्रह्मवाचो देवाः हम अपने वाक् की रचना कर लेते हैं। वेदमन्त्रों की ध्वनि में हम ध्वनित हो जाते हैं और वह शब्द कैसे निर्मारित होता है। मानव के शरीर में तालु के और रसना का दोनों का समन्वय हुआ तो शब्द की रचना हो गई हैं शब्द का ज्ञान का जो स्रोत है वह आत्मा माना गया है। परन्तु देखो, वही स्रोत शुद्ध हो करके हमारे समीप आ जाता है। हमारे यहाँ वेद का मन्त्र यह कहता है शब्द ब्रह्मवाचो देवाऽहम् भविषा रुद्रो मोसन। वेद का वाक् कहता है कि यह जो शब्द है यह अपने में ध्वनित होता रहता है। और यह शब्द ही मानव को पण्डित बना देता है। यही मानव को महान् बना देता है। जैसे राजा जनक के यहाँ

यहसभा हो रही है और राजा जनक यह चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र पवित्र बन जाए। हमारा राष्ट्र महान् बन जाए, तो राजा के राष्ट्र में ध्वनि पवित्र होनी चाहिए। प्रत्येक मानव सभ्य होना चाहिए। प्रत्येक मेरी प्यारी माता विचारशील होनी चाहिए। उसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक भी अपने में ध्वनित होने वाला हो। राष्ट्र में पाण्डित्य, राजा के राष्ट्र में जो पाण्डित्य है वह विचित्र होना चाहिए। राजा के राष्ट्र में जब तक पाण्डित्य नहीं होगा, बुद्धिजीवी प्राणी राष्ट्र में नहीं होंगगे, तो राष्ट्र कदापि भी ऊँचा नहीं बनेगा। इसीलिए हमारा वेद का मन्त्र कहता है हे राजन्! तेरे राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी होने चाहिए। तेरा राष्ट्र महान् और पवित्र उसी काल में बन पाएगा। तो हे चाक्राणी! राजा जनक का यह कर्त्तव्य है कि बुद्धिजीवी प्राणी हों और पाण्डित्य होना चाहिए। पाण्डित्य उसे कहते हैं यहाँ राजा के राष्ट्र में बुद्धिमान वाणी से शुद्ध और पवित्र यथार्थ वाक्यों का उत्पादन करने वाले हों, उद्गीत गाने वाले हों। जब राजा के राष्ट्र में यथार्थ उच्चारण करने वाला समाज होता है, राजा का राष्ट्र पवित्र बन करके रहता है। मेरी प्यारी माता जब गृह को ऊँचा बनाना चाहती है तो सत्यवादी बनना होगा, वाणी से उद्गीत गाना होगा। राजा स्वतः ऊँचा सत्यवादी बन करके अपने राष्ट्र को विचित्र बनाएगा।

आज मैं विशेष चर्चा नहीं देने आया हूँ। विचार विनिमय क्या? याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं कि यथार्थ उच्चारण करने वाले को ही मानव कहता है जो कुछ कह रहा है, वह यथार्थ है, वह सत्य है। उसका महत्त्व विशेष कहा जाता है। इसीलिए हमारा जो शब्द है, हमारी जो वाणी हैवह पवित्र होनी चाहिए। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में हे देवी! अश्वपति के राष्ट्र में मैं चला गया। तो अश्वपति के राष्ट्र में जो विद्यालय में मैं प्रवेश हुआ, तो राकाचार्य ने ब्रह्मचारी से एक वचाक् मिथ्या उच्चारण किया जब मिथ्या उच्चारण किया तो ब्रह्मचारी ने कहा कि हे आचार्यजन! आपने यह वाक् मिथ्या उच्चारण किया है, यह सुशोभनीय आपको नहीं देता है तो आचार्य गुरुतेश्वर ऋषि आचार्य ने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम यथार्थ कह रहे हो, मैंने यह वाक् मिथ्या उच्चारण किया है। गुरुतेश्वर ऋषि महाराज भयंकर बनो में जा करके तप करने लगे और वाणी का शोधन करने लगे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि 12 वष्र तक उन्होंने

गायत्रागीछन्दों का पठन पाठनकिया, वेदों का अध्ययन किया। मानव दर्शन को विचारने लगे 12 वर्ष तक उसी सत्य को ले करके उन्हेंने अपनी वाणी को पवित्र बनाया है। वाणी जब तपायमान हो जाती है तो विद्यालय पवित्र बन जाते हैं। ऋशि कहता है हे चाक्राणी! राजा को अपने राष्ट्र में विद्यालयों को ऊँचा बनाना है, तो आचार्य सत्यवादी होना चाहिए। जिससे ब्रह्मचारी का हृदय पवित्रतम् बन करके विद्यालय महान् और पवित्र बन जाए। ऐसा ज उन्होंने उच्चारण किया तो मुनिवरों! देखो, ब्रह्मवाचो देवो ब्रह्माः वह बोले ब्रह्मः चाक्राणी बोली भगवन्! यथार्थ है। तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा इसलिए प्रत्येक मानव को सत्यवादी बनाना चाहिए।

यदि कोई आध्यात्मिकवादी महान् बनना चाहता है, आध्यात्मिकवाद को ऊँचा बनाना चाहता है, तो मानव को सत्यवादी बन करके इस संसार सागर से पार होना होगा। विद्यालय क्या, राष्ट्र क्या, गृह क्या, मुनिवरों! देखो, जब ऊंचे बनते हैं जब मानव अपने सत्य की निष्ठापर निष्ठित हो जाता है और पवित्र बना लेता है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा देवी! यह वाणी हमारा यह चतुर्थ मनका कहलाताहै। आज हम इस मनके को ले करके अपने सूत्र में पिरोना चाहते हैं। हे देवी! यही तो मन वृत्ति कहलाता है जिससे मानव पवित्र बन जाता है। एक समय हे देवी! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि हे ब्रह्मचारी! तुम सत्य का पालन करो। तो मैंने वाणी का उद्गीत गाया औरवाणी का उद्गीत गाते हुए मैं शुद्ध पवित्र अन्न को आहार करने लगा, तो मेरी वाणी में पवित्रवाद आ गया। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से चाक्राणी ने कहा प्रभु! मैं पञ्चम मनके को जानना चाहती हूँ। उन्होंने कहा हे देवी! यह जो पांचवां मनका है, वाणी से पृथक् हो करके पांचवां मनका है वह आत्मा कहलाता है। आत्मा के साथ ही यह मनके अपने में गति करते रहते हैं जितना भी संसार का अतीत से ले करके वर्तमान के काल तक जितना विज्ञान है ह सबसे आ करके निहित हो जाता है, स्थिर हो जाता है। जितना भी संसार का यह विज्ञान है यह सत्य विज्ञान सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस सत्य विज्ञान पर आ करके ऋषि मुनि भी मौन हो जाते है। यहाँ आ करके परमाणुवाद अपने में परमाणु वृत्तियों मेंरत हो जाता है, यह भौतिक विज्ञान है और भौतिक विज्ञान ही ध्वनियों

में परणित रह रहा है। वह ध्वनियों में अपना ध्वनित होता रहा है। तो इसीलिए हमें विचारना है, हमें अपनी उस आभा में रत्त होना है जहाँ मुनिवरों! देखो, हमारा शब्द स्थिर हो करके और भौतिक विज्ञान सीमित हो जाता है। आध्यात्मिक विज्ञान अपने में आध्यात्मिकवादी बन करके महान् बनने लगता है। वेद का ऋषि कहता है कि इस आत्मा को जानने का प्रयास करो। आत्मा के कारण ही मानव के शरीर में यह शबद कहलाता है, आत्मा के कारण ही यह अग्नि अपना क्रिया कलाप करती रहती है। आत्मा के कारण यह चन्द्रमा अमृत देता रहता है। हे देवी! तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए कि आत्मा न रहेगी, तो यह जो ौौतिक विज्ञान है यह अपनी सार्थकता में कुछ न रहेगा। परन्तु जब तक आत्म विज्ञान है जब तक आत्मा इसके समीप है जब तक शरीर में आत्मा है, जब तक इस विज्ञान के ऊपर सूर्य को निहार रहा है चन्द्रमा से अमृत ले रहा है, अग्नि से ऊष्णता ले रहा है और सत से मानव ध्वनि ले रहा है और ध्वनित होता हुआ अपने को महान् स्वीकार करके आत्मतत्त्व में रत्त हो जाता है। तो देवी! हमें आत्मा के ऊपर विचार विनिमय करना है। यह जो आत्मतत्व है यह महान् कहलाता है। इसके ऊपर हम सदैव विचारें, भौतिक विज्ञान की उपलब्धियां उसी समय होती हैं जबकि आत्मा हमारे शरीरों में विद्यमान रहती है। आत्मा यदि निकल जाती है तो भौतिक विज्ञान की उपलब्धि नहीं होती। भौतिक विज्ञान अपृतम् ब्रह्महे और आत्म विज्ञान को अपने में स्वतः विज्ञान है वह अपने में पूर्ण है क्योंकि वह मृत्युञ्जय होना चाहता है। तो हे चाक्राणी! संसार में देखो, कितनी भी सभा हों, ब्रह्मवेत्तओं का समूह जिस भी काल में एकत्रित हुआ है उसी काल में यह आध्यात्मिक विज्ञान अपने में अद्वितीय बन करके मानव का सार्थक एकत्र बन करके रहा है। किसी ऊपर ऋषि मुनि परम्परागतों से अनुसन्धान करते रहे हैं अथवा अन्वेषण करते रहे हैं। इसीलिए याज्ञवल्क्य बोले हे देवी! तुम आत्मा को जानने का प्रयास करो। यदि राजा अपने ब्रह्मयागी बना हुआ है, यह याग कर रहा है तो आत्मा को जानना होगा। यदि आत्मा को राजा नहीं जानेगा यज्ञमान तो उसका यज्ञ सफलता को प्राप्त नहीं होता। तो हे देवी! तुम आत्मा को जानने के लिए तत्पर हों। आत्मा उस काल में जाना जाता है यदि तीनों मनकों को शुद्धिकरण

करके और यह भौतिक विज्ञान की आभा में त्याग करके हम आत्मा के गर्भ में पहुंचेंगे। अंतरात्मा में स्वतः अपने को जानने के लिए तत्पर हो जाएंगे। मेरे प्यारे! प्रभु की संरक्षणता में उस आत्मा को जाना जाता है। हम अंतरात्मा के जानने के लिए सब उपस्थित हुए हैं और आत्मा के लिए हम अन्वेषण और अनुसन्धान करने वाले बनें। आज कोई भी मानव को संसार में बिना आत्मा के चेतनता नहीं रह पाती। हमें आत्मा के ऊपर अन्वेषण करना है, आत्म को जानना है। चाक्राणी मौन होने लगी।

महर्षि याज्ञवल्क्य बोले कि देवी! तुम मौन क्यों होने लगी हो? आगे प्रश्न क्यों नहीं कर रही हो? उन्होंने कहा प्रभु! आगे प्रश्न नहीं रहा है। क्योंकि आपने हमें आत्मा तक पहुंचाया है। और यह आत्मा जो विज्ञान है उसके आगे चल करके उससे आगे क्या रहा? केवल यह आत्मा भौतिक विज्ञान की जो उपलब्धियां हैं, वह उससे पूर्व ही हो लेती हैं और आध्यात्मिक जो विज्ञान है वह अपने में महान् कहलाता है। याज्ञवल्क्य मुनि बोले देवी! तुम यथार्थ जान गई हो, तुम यथार्थ विज्ञान को जान गई हो। अब और कोई चिन्तन करना हो तो कहो उन्होंने कहा भगवन्! यह तो आत्मा का चिन्तन ही करना चाहिए। विचारविनिमय क्या, हमारा वेद का मन्त्र क्या कहता है, हमारा वेद का ऋषि क्या कहता है? आत्मा के जानने के लिए मानव को सदैव प्रयास करना चाहिए। मेरी प्यारी माता अपने में अंतरात्मा के जानने के लिए तत्पर होती है। मुझे माता मल्दाल्सा का साहित्य स्मरण आने लगता है। उनका जीवन कितना अंतरात्मा में निहित था। माता वही पवित्र बनती है जो माता अपने हृदय में अंतरात्मा को जानने के लिए अंतरात्मा के प्रकाश में अपने को प्रकाशित करती रहती है। जैसे सूर्य का प्रकाश अपने में सवतः प्रकाशित है प्रकाशित रहता है और वही प्रकाश संसार को सजातीय बनाता है अथवा प्रकाश में ले जाता है, तो इसलिए सदैव मानव को अपने प्रकाश में जाने की आवश्यकता रहती है, अपनी अंतरात्मा में ही रत्त होना है। मैं विशेष चर्चाएं तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ, मैं तुम्हें यह विचार प्रगट करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को आत्मा को जानने का प्रयास करना है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है वेद का मन्त्र भी कहता है, मुनिवरों! देखो, वे परमपिता परमात्मा आत्मा का

भी आत्मा का सूत्र यदि कोई है, तो परमपिता परमात्मा है, जो संसार का नियन्ता है, निर्माण करने वाला है। जिसकी आभा में प्रत्येक मानव अपने में रत्त रहा है। आज का विचार हमारा यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है। वेदमन्त्र यह कहता है कि प्रत्येक मानव को परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में परमात्मा को अपने अन्तर्हृदय में धारण करके अपने को जानना चाहिए और अपने इस ब्रह्माण्ड को जानना चाहिए। भौतिक विज्ञान के आंगन में प्रवेश होना चाहिए। पृथ्वी से ले करे और शब्द विज्ञान तक मानव की प्रतिभा का जन्म हो जाता है। वही तो विज्ञान अपने में सार्थक बन करके रहता है।

आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है। हमें परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहिए। क्योंकि वह जो परमानन्द है वह महानृ कहलाता है। उसी की आभा में सदैव रत्त और जीवन को ऊँचा बनाते हुए दोनों प्रकार के विज्ञान से मानव के जीवन का समन्वय रहता है। एक भौतिक विज्ञान है जो प्रकाश से ले करके मानव तक पहुंचने का प्रयास करता है। आध्यात्मिकवाद देखो, आत्मा से ले करके परमात्मा तक जानने का नाम देखो, आध्यात्मिकवाद कहलाता है। यह है बेटा! आज का वाक्! अब हमारा आज का वाक् समाप्त होने जा रहा है, शेष चर्चा समय मिलेगा तो कल प्रकट करेंगे। अब वेद का पाठ।

१० 20 11 1985 पुष्प 53 गर्भवती माता मल्दाल्सा का शिशु निर्माण हेतु ब्रह्म चिन्तन

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वे परमात्मा की महिमा का

गुणागान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा शिशु रूप में परणित रहते हैं। वे एक रस रहने वाले हैं। इसीलिए उस परमपिता परमात्मा को शिशु के रूप मे स्वीकार किया गया है। हमारे आचार्यों ने ऊँची ऊँची कल्पनाएं की हैं और उसके ऊपर अनुसन्धान प्रारम्भ किया तो ऐसा प्रतीत हुआ है कि वे परमपिता परमात्मा विशाल से विशाल है और सूक्ष्म से सूक्ष्म, शिशु रूप में रत्त रहने वाले है। तो इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा के उस ज्ञान और विज्ञान की ऊर्ध्वा में प्रायः हम उड़ान उड़ते चले जाएं। जिससे हमारा मानवीयतव प्रायः ऊँचा बना रहे। हे शिशु! तू मानो सृष्टि का मौलिक तत्त्व माना गया है। जिस भी काल में वैज्ञानिकों ने अथवा दार्शनिकों ने उस शिशु रूप की कल्पनाएं की हैं। तो वह इतना विशाल और इतना सूक्ष्म प्रायः दृष्टिपात आता रहा है कि मानव अन्त में अपनी वाणी से उद्गार और कोई वाक् उच्चारण करने में असमर्थ हो जाता है। तो इसीलिए आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान की प्रायः हम अपने में उड़ान उड़ते रहे हैं।

मेरे प्यारे! ऋषि मुनियों ने जब ये वेदमन्त्र स्मरण आया शिशुं ब्रह्मा वर्णा स्वस्त ब्रहे व्रताम् गतौशन्नः रुद्रोभागा वेद का वाक् कहता है कि वे परमपिता परमात्मा जब सृष्टि का सृजन करते हैं, अथवा निर्माण करते हैं तो इस ब्रह्माण्ड में एक शिशु के रूप में अपने को ही मुनिवरों! देखो, ब्रह्माण्ड का सूत्र बना लेते हैं। जैसे माता के गर्भ स्थल में एक शिशु है और शिशु के अन्तर्गत नाना प्रकार के परमाणु अपने में परणित रहते हैं और वह जो शिशु है वह प्रत्येक परमाणुओं का सूत्र बना हुआ है। मानो परमाणुओं का ही नहीं पञ्च महाभौतिकता में जो एक सूत्रपात हो रहा है, वह भी मानो उसी में पिरोया हुआ उसका सूत्र कहलाता है। तो आज हमें विचार विनिमय करना चाहिए, हे शिशु! तू अपने में महान् हैं मानो देखो, इसी प्रकार ये जो ब्रह्माण्ड हमें जो दृष्टिपात आ रहा है यह ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया हुआ है और वह सूत्र कौन है? वह चेतना है, वह सूत्र कौन है? वे परमपिता परमात्मा जो सबका सृजनहारा, सबको उत्पन्न करने वाला है। तो विचार क्या चल रहा है? वेद का मन्त्र अपने में कितना महत्त्वपूर्ण है। मानो वह सूत्र की चर्चा कर रहा है। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय माता मल्दाल्सा

जब वह पूर्णता के गर्भब्रहा अपने एक समय पति से बोली कि हे प्रभु! मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कुछ प्रतिज्ञायें की हैं, कुछ संकल्प किए हैं। मेरी इच्छा ऐसी है कि मेरे गर्भ में शिशु का प्रवेश हुआ है और मैं अपने आचार्य कुल में भ्रमण करना चाहती हूँ। मेरे प्यारे! उनके मनुवंश में उत्पन्न होने वाले राजा ने माता मल्दाल्सा को अपने वाहन में ले जा करके कजली बनों में जहाँ उनके पूज्यपाद गुरुदेव का आसन था उस आसन पर पहुंचे, विद्यालय में प्रवेश हुआ। विद्यालय में जब प्रवेश हुआ तो उनके आचार्य ने कहा, देवी! ब्रहो सम्भवा कुत्रो हे पुत्री! आओ विराजो। वे विराजमान हो गई। तो आचार्य ने यही प्रश्न किया सहो सम्भवा सूत्रां ब्रह्मवाचो देवाः उन्होंने कहा हे पुत्री! तुमने बड़ा अध्ययन किया है दर्शनों का और विशेषकर आध्यात्मिकवाद में तुम्हारी बड़ी विचित्र गति रही है, तो मैं आध्यात्मिक के वाङमय में प्रवेश हो करके तुमसे यह जानना चाहता हूँ कि कस्मां ब्रहे सूत्रो भवा सम्भवा क्या तुम्हारे अन्दर कौन सूत्र, कौन मानव शिशु है जो सूत्र बना हुआ है?
तो माता मल्दाल्सा ने कहा हे प्रभु! इस ब्रह्माण्ड का जो सूत्र है वे परमपिता परमात्मा शिशु रूप में इस ब्रह्माण्ड का सूत्र बना हुआ है। जब भी लोक लोकान्तरों के ऊपर विचार विनिमय किया जाता है, अथवा पृथ्वी के पिण्ड के रूप में भी चिन्तन किया जाता है, अग्नि को प्रदीप्त होने वाली, विशालता का वर्णन किया जाता है और समुद्रों में जो जलाशय अपने में सुगठित हो रहा है। उसके ऊपर विचार विनिमय किया जाता है, तो मानो एक शिशु ही दृष्टिपात आता है, वह इन सबको धारण किए हुए हैं, वह सबका सूत्र बना हुआ है। मानो जैसे माला है, माला में एक सूत्र है, नाना प्रकार के मनके हैं, जब उसमें पिरोएं जाते हैं। तो माला दृष्टिपात होने लगती है। इसी प्रकार ये ब्रह्माण्ड, ये मानवतव, ये सर्वत्र एक माला के रूप में ही दृष्टिपात आ रहा है। मेरे प्यारे! उस समय ऋषि ने कहा देवी! तुम्हारा उत्तर यथार्थ है। परन्तु मेरा प्रश्न और है ममत्वां ब्रह्मः स्वऽस्वतां सूत्रोभवा शिशु वेद के आचार्य ने कहा है हे पुत्री! तुम्हारे गर्भस्थल में कौन सूत्र है, मनके हैं? मल्दाल्सा ने कहा हे प्रभु! शिशु रूप में तो आत्मा है और वह जो नाना प्रकार के जो परमाणु हैं, कोई परमाणु वायु का है, कोई परमाणु अग्नि का

है, कोई परमाणु अपने में आपोमयी माना गया है। और कोई परमाणु पृथ्वी का है वह तेजोमयी मानो सूर्य है, अमृतमयी चन्द्रमा है। मेरे प्यारे! देखो, वह जो सूत्रोभा और अवकाशमयी अन्तरिक्ष माना गया है, तो मानो देखा उस सर्वत्र जो जितने मनके हैं इन मनकों का जो सूत्र है मेरे गर्भस्थल में आत्मा है, आत्मा सूत्र बना हुआ है, वह शिशु के रूप में है। जब आत्मा का प्रवेश हुआ, तभी सर्वत्र देवता, सर्वत्र ऋद्धो मानो देखो, यह मनके पिरोए जाने से एक माला बन गई है और वह माला कैसी विचित्र बनी है कि मानव इतना स्थूल रूप बन जाता है। उसी में देखो, सूक्ष्म और कारण भी उसी में निहित हो जाते है। मेरे प्यारे! देखो, माता मल्दाल्सा ने कहा हे भगवन्! हे मेरे पूज्यपाद! आप तो महान् हैं, परन्तु देखो, मैंने दर्शनों में जो अध्ययन किया है वह दार्शनिक विचार यह कहता है कि देखो, माता के गर्भस्थल में आत्मा शिशु है और बाह्य जगत् में ब्रह्माण्ड में परमपिता परमात्मा शिशु के रूप में रत्त रहता है। इस ब्रह्माण्ड के जो धारण कर रहा है, नाना प्रकार की माला बना देती है और वह माला संसार में पांच मनकों में, पांच ही मनके कहलाते हैं। संसार के और पांच ही मनके मानो आत्मा के सहित रहते हैं वह पांचों मनके कौन से हैं? माता के रूपों में तो पांच ज्ञानेन्द्रियां कहलाती हैं। और बाह्य जगत् में वही पांचों मनकों पञ्च महाभूत कहलाते हैं। एक एक रूप में पांच मनकों की माला कहलाती है। इस माला में से भिन्न भिन्न प्रकार के मनकों का जन्म हो जाता है और वह परमाणु रूप में गुथे जाते हैं। मानो वही परमाणु सूक्ष्म बन करके लेपन हो जाता है वही सूक्ष्म बन करके अन्तरिक्ष में गति करते रहते हैं।

तो विचार विनिमय क्या? वह जो गतियां होती रहती हैं, मानव जैसे श्वास लेता है। यदि परमाणु नहीं होंगे वायुमण्डल में तो श्वास नहीं ले सकता, क्योंकि मानव मरण को प्राप्त हो जाता है, मरण के तुल्य बन जाता है और यदि यह परमाणु अपने जीवाणु रूप में नहीं रहेंगे क्योंकि जीवन शक्ति इस प्रकृति के एक एक परमाणु में निहित रहती है। तो मेरे प्यारे! देखो, वही जीवाणु के रूप में रत्त रह करके हम बेटा! श्वासों की गतियों में गति करने लगते हैं। यही वांगमय वैज्ञानिकों के मध्य में आता रहा है, माता मल्दाल्सा ने जब बुद्धियुक्त दर्शन की चर्चाएं प्रगट की, तो ऋषि ने कहा हे पुत्री! तुम्हें धन्य है।

जो तुमने ब्रह्मचर्य आश्रम में पान किया है, वह तुम्हारा ज्यों का त्यों मानो देखो, उसकी आभा एक महानता में सदैव रत्त रही है। तो मुनिवरों! देखो, माता मल्दाल्सा मौन हो गई। कहते हैं, हे देवी! तुम्हारा वाक् यथार्थ है। एक समय जब हम बाल्यकाल का हमारा समय था हम ऋषि मुनियों की सभाओं में विचार विनिमय करते रहे हैं। ऋषि मुनियों के जो विचार हैं वह बड़े सार्थक और गम्भीरतव कहलाते हैं। एक एक वाक् पर अनुसन्धान और वैज्ञानिक और आध्यात्मिक रूपों से उसका निरूपण करते रहे हैं। मुनिवरों! देखो, माता मल्दाल्सा का और ऋषि दोनों का सर्वत्र दिवस इस प्रकार का विचार विनिमय होता रहा है। कैसा विचार है, बेटा! कैसा गम्भीर मनोवृत्तियां है? मानो देखो, आत्मा के साथ में चित्त का मण्डल होता है और चित्त के मण्डल में भी संस्कार निहित रहते हैं, उसी कारण से वह संसार में आता है। इसी प्रकार वह पञ्चमहाभूत अव्रतों में वह रत्त रहते हैं, तीनों गुण ऐसे मानो देखो, जैसे रथ के पहिये में अरे, लगे रहते हैं, इस प्रकार रजोगुण, तमोगुण अरों के सदृश्य वह गति करता है। तो आओ मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या है? वेद का ऋषि कहता है क्या यह परमपिता परमात्मा कितना महान् निर्माणवेत्ता है, कैसा वह शिशु सबका सूत्र बना हुआ है और सूत्रों में सूत्रित हो रहा है। तो मुनिवरों! देखो, इसके ऊपर हमें प्रायः विचार विनिमय करना चाहिए, संस्कारों की उद्बुद्धता कितनी विचित्र रहती है।

मेरे पुत्रों! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है जब माता मल्दाल्सा अपने जो आत्मा शरीर में विद्यमान है, गर्भाशय में वह समाधिष्ट हो करके अपने मनस्तत्व, प्राणतत्व की आभा को नियुक्त करके, वह मानो देखो, आत्मा से चर्चा कर रही थी, आत्मा से वार्त्ता प्रगट करना चाहती है। वह कह रही है, वह कहती है, आत्मा! तू मेरे शरीर में, गर्भाशय में तेरा प्रवेश हुआ है। मैं नहीं जानती इसका मौलिक कारण क्या है, क्या सम्बन्ध है आत्मा तेरे से मेरा, मैं यह नहीं जान पाती। परन्तु देखो, आत्म ब्रह्म वाचो वह उसके पश्चात् गम्भीर और अध्ययन करती रहती है और अध्ययन करती कहती है शुद्धम् ब्रह्मा वाचो प्रहे लोकाम् हे आत्मा! तू तो शुद्ध है, तू मेरे गर्भ में क्यों प्रवेश हो गई है, जब तू शुद्ध है, और बुद्ध है। तो वह आगे के लिए जब शुद्ध का प्रतीक हो गया बुद्धं ब्रह्माः तू बुद्ध

भी है, और अखण्ड रहने वाली है सदैव, तू निरंजन भी है। तो मानो देखो, तू तीनों रूपों में रत्त रहने वाली है, मैं नहीं जान पाती इसके पश्चात् भी तू नार्किक क्षेत्र में क्यों आ पहुंची है? जब यह कहती है नरवद् ब्रव्हा वाचम् ब्रह्म लोकाम् वेद का ऋषि यह कहता है कि आत्मा के लिए नार्किकता, तो परमाणुओं का सहयोग लेना है, परमाणुओं की उसे तो सूत्र बनना है। तो सूत्र को स्थूल व्याप्य व्यापक दोनों का समन्वय हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, माता मल्दाल्सा इस प्रकार अपना अन्वेषण और अनुसन्धान करती रहती थीं, विचार विनिमय करती रहती। तो मेरे प्यारे! कोई ऋषि एक समय प्रातःकालीन यह चिन्तन कर रहे थे, तो कहीं से महर्षि सुकेतकाम सुकेतम् वाचकेतु ऋषि महाराज कहीं से भ्रमण करते हुए आ गए। राष्ट्र गृह में उनका प्रवेश हुआ जब ऋषि राष्ट्र गृह में आए तो माता मल्दाल्सा ने ऋषि के चरणों को स्पर्श करके उन्हें आसन दिया। आइए भगवन्! विराजिए वह विराजमान हो गए। उन्होंने कहा देवी! कहो तुम अब क्या चिन्तन कर रही हो? उन्होंने कहा प्रभु! मैं शिशु के ऊपर चिन्तन कर रही हूँ क्योंकि शिशु का वाह्य जगत् बना रही हूँ। आन्तरिक जगत् बना रही है, बाह्य जगत उसका बनाना है, उन्होंने कहा हे मातम्! ब्रह्माः देवी! बाह्य जगत् उसका बनाना है और आन्तरिक जगत् क्या है? उन्होंने कहा कि आन्तरिक जगत् तो मेरा गम्भीरतव में एक चिन्तन रहता है और मनन करती रहती हूँ उससे उस मेरे शिशु का देखो, आन्तरिक जगत् बनेगा और बाह्य जगत् के लिए यह मैं चाहती हूँ कि यह जो संसार की मोह ममता है, संसार का यह जो विडम्बनावाद है, या प्रपञ्चवाद है इस प्रपञ्च से मेरा बाल्य उपरामता को प्राप्त हो जाए, जिससे वह आत्मवेत्ता बन करके, ब्रह्मवेत्ता बन करके ब्रह्म की आभा में सदैव वह रत्त होता रहे और ब्रह्म में ही वार्त्ता प्रगट करता रहे।

उन्होंने कहा देवी! यह जो राष्ट्र है यह कैसे महान् बनेगा? क्योंकि राजा होना चाहिए तुम्हारे गर्भ से, तुम ब्रह्मवेत्ता चाहती हो? उन्होंने कहा कि राष्ट्रवेत्ता तो नार्किकवत् कहलाता है, क्योंकि दूसरों के ऊपर जो मानव शासन करता है वह जो शासन प्रवृत्ति है। यह कए नार्किकता के विचार है क्योंकि वह सदैव इसी आभा में लगा रहता है कि मैं इसके ऊपर कैसे अनुशासन करूं? ये राजा है, दूसरे राजा को विजय करके मैं कैसे

अनुशासन करूं प्रजा के ऊपर मेरा अधिपथ्य कैसे हो? तो उसमें रजोगुण की प्रतिभा को अपनाता है। परन्तु देखो, यह जो आत्मवेत्ता होता है आत्मज्ञानी होता है यह राष्ट्रवेत्ताओं से ऊर्ध्वा में गति करता रहता है, ये राजाओं की भी शिक्षा देता है, राजाओं को भी कहता है कि राजन्! तू सुचरित्रता को अपना करके, महानता को अपना करके तू याज्ञिक बन करके तू याग के क्रिया कलाप में परणित हो जा। माता मल्दाल्सा ने कहा मैं यह चाहती हूँ कि जो तत्त्वों के ऊपर अन्वेषण करने वाला हो, अपने मानवीय जीवन को वे परमपिता परमात्मा की प्रतिभा से मिलान करने वाला हो, वह ज्ञान मानव के समीप होना चाहिए। वही यथार्थ में ज्ञान होता है वही मानो विवेकता में परणित करा देता है और जितना भी ज्ञान और विज्ञान है वह आभा में रत्त करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता रहेगा।

तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा कि देवी! यह तो यथार्थ है। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ, तुम ये कहाँ से प्रेरणा लेती हो, कहाँ से तुम्हारे हृदय में यह आकांक्षा जागरूक हुई है, क्योंकि यह तो राष्ट्र गृह है, राष्ट्र का अन्न भी दूषित होता है, राष्ट्र के अन्न को तुम ग्रहण करती हो और अन्न से कहते हैं कि मन की उत्पत्ति है। जब मन को उत्पत्ति ऐसी मानी गई है, तो ये विचारों का प्रादुर्भाव कहाँ से हुआ? तब माता मल्दाल्सा ने कहा हे ऋषिवर! तुम्हें ये प्रतीत है कि मैं उस अन्न का ग्रहण करती हूँ, मैं उस अन्न को पान करती हूँ, जिस अन्न से मेरी प्रवृत्ति ऊँची बनी रहे, जिससे मेरी अन्तरात्मा में घृणात्मक विचार न आ जाएं। मैं सदैव उस अन्न को ग्रहण करती हूँ। जिस अन्न पर देखो, राष्ट्र का अधिकार नहीं होता। मानव का भी उस पर अधिकार नहीं होता, मैं उस अन्न को ग्रहण करती हूँ। मेरे हृदय की यह आकांक्षा रहती है कि मेरे गर्भ से ऐसे बाल्य का जन्म हो जो राष्ट्रवेत्ताओं को शिक्षा देने वाला हो, ब्रह्मज्ञानी हो। ब्रह्मज्ञान किसे कहते हैं? जहाँ प्रत्येक इन्द्रियों का देखो, विघटन अप्रताम ब्रह्मे वह समष्टि और व्यष्टि में प्रवेश हो जाएं। समष्टि और व्यष्टि को विचार विनिमय करने वाला हो। तो मेरे पुत्रों! देखो, मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि माता मल्दाल्सा इस प्रकार की ऋषि से जब वार्त्ता प्रगट कर रही थी, तो उन्होंने कहा हे देवी! मैं जानना चाहता हूँ यह ब्रह्म

ज्ञान क्या है? ब्रह्मज्ञान किसे कहते हैं?

उन्होंने कहा ब्रह्मज्ञान उसे कहते हैं, जो मानव प्रत्येक इन्द्रियों के साकल्य को बना करके, मानो देखो, रूप, रस और गंध, शब्द, स्पर्श इन सबको एकत्रित करता हुआ, पञ्च महा भौतिकता के ये गुण कहलाते हैं यह उनमें दृष्टिपात करता है और प्रत्येक ज्ञानेन्द्रियों को इनमें दृष्टिपात करके इनका साकल्य बना करके और जो अपने अन्तर्हृदय में जो ज्ञानरूपी अग्नि प्रदीप्त हो रही है, ज्ञानरूपी अग्नि जहाँ प्रदीप्त हो रही है उसमें इन साकल्यों की जो आहुति देता है स्वाहा कहता है और स्वाहा कह करके आहुति दे देता है वह मौन हो करके अपने अन्तरात्मा में याग कर रहा है। वह हमारे यहाँ ब्रह्मज्ञान के लिए, वह मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करना चाहता है, वह मानो एक दूसरे को ऊँचा बनाना चाहता है। ज्ञान और विज्ञान में जितना भी वह विचारता है कि जितना भी ज्ञान है संसार में विज्ञान है इसे हम भौतिकवाद कहते हैं। वह भी पांच इन्द्रियों का ही पञ्चीकरण कहलाने वाला व्रत कहलाया जाता है। हे भगवन्! जब वैज्ञानिकजन यह अपने में अनुसन्धान करता है कि मैं प्रकृति के इस ब्रह्माण्ड के सूत्रों को जानना चाहता हूँ, तो वह पांच सूत्रों में लग जाता है और पांच सूत्रों में जब सूत्रित होता है। तो पञ्चीकरण बनाता हुआ पांच प्रकार की प्रकृति को गति को जान लेता है। उस पर विज्ञान निहित हो जाता है, पञ्चमहाभूत उसी में निहित हो जाते हैं, पांच ज्ञानेन्द्रियां उसी में निहित हो जाती हैं, पांच ज्ञानेन्द्रियों में समाहित हो करके चित्त के मण्डल में प्रवेश हो जाती है। तो जो चित्त में मण्डल को दृष्टिपात करता हुआ यह विचारता है अरे, यह आत्मा तो जागरूक भी नहीं है, जो हम जागरूक करते हैं इसे यह कौन जागता है यह मनम् ब्रह्माः यह आत्मा ही जागरूक रहता है। आत्मा का प्रकाश आया, नेत्र दृष्टिपात करने लगते हैं, वह सम्भूति ब्रह्म लोकाम् वाचो सम्भवा लोकाम् हिरण्यम् वृथा। वेद की विदुषी ने उत्तर दिया है हे ऋषिवर! मैं जो ब्रह्म वाचो ब्रव्हे कृताम् लोकाम् ब्रह्मा वसुसम्भवो लोकाम् हे भगवन्! मानो देखो, वह जो जागरूक होने वाला कुटुम्ब का परिचय दे रहा है, राष्ट्र का परिचय दे रहा है नाना पदार्थों का परिचय दे रहा है, नेत्रों से दृष्टिपात कर रहा है, मन की विकल्पता उसके सहित लगी हुई है। तो वह परिचय

देता हुआ ऊर्ध्वा में गति कराता है और उसके पश्चात् जब यह जागरूकता नहीं रहती तो स्वप्नवत् रह जाता है। यह स्वप्नवत् हमारे चित्त के मण्डल में सूक्ष्म सूक्ष्म अंकुर रहते हैं और अंकुरों को हम साकार रूप में भोगने लगते हैं। उन साकार रूपों के स्वप्नवत् के भी क्रिया कलाप को आत्मवेत्ता उन्हें नष्ट कर देता है, उन संस्कारों को उपजने नहीं दे रहा है।

शरीरों में पत्नी नहीं होती, पत्नियों के निर्माण हो जाते हैं क्योंकि अंकुर रूप से संस्कार विद्यमान है। पति नहीं होते, पतियों का निर्माण हो जाता है। उसके संस्कार मानव के चित्त के मण्डल में निहित रहते हैं। मेरे प्यारे! राष्ट्र और नदियां और समुद्र नहीं होते उसमें निर्माण होता रहता अंकुर रूप उसमें विद्यमान है, अंकुरों के रूप में ही वह संस्कार अपने में। क्रिया कलाप होते रहते हैं। मेरे प्यारे! वही तो संस्कार है, जो मुनिवरों! माता के गर्भ में प्रवेश करते हैं, वहीं संस्कार है क्योंकि वह माता को जानते हैं यह संस्कार और माता के संस्कार उसे जानते हैं। दोनों के संस्कारों का जब समन्वय होता है, तो पुत्र और पुत्रियों के रूप में मुनिवरों! देखो, उनका मिलन होता रहता है। उनके मिलन को प्रतिभा का जन्म होता रहता है। तो मेरे पुत्रों! देखो, जब माता मल्दाल्सा ने कहा, जहाँ तक मेरा विचार है जब मैं ब्रह्मज्ञान में आचार्य के कुल में अध्ययन करती मानो उनके आश्रम में प्रथम आभा में रत्त रही हूँ द्वितीय श्रेणी में भी रही हूँ। क्योंकि मेरा ब्रह्मज्ञान अन्तर्हृदय में समाहित हो गया है। तो वही आत्मा मेरे समीप आयेगी क्योंकि जिन आत्माओं से मेरा किसी काल में समन्वय रहा है, सम्बन्ध रहा है, वही आत्मा देखो, ब्रह्मज्ञानी बन करके मेरे समीप आयेगी। मानो देखो, मैं जैसे आचार्यकुल में ब्रह्मचारियों को उपदेश देता है और कोई कोई ब्रह्मचारी ऐसा संस्कारी होता है जिस ब्रह्मचारी को आचार्य विशेषकर अपनी विद्या को प्रदान कर देता है, इसी प्रकार माता अपने पुत्र को अपने गर्भ में या बाह्य जगत् में सर्वत्र अपना किया हुआ जो पुरुषार्थ है, उसका विचार विनिमय करने वाले जो संस्कार है उसे वह प्रदान कर देती है। अहा! करती रहती है इसी प्रकार स्वप्न भी नही होना चाहिए।

इसी प्रकार स्वप्न भी नहीं होना चाहिए, यह स्वप्न भी संस्कारों का समूह हे और जब

स्वप्नवत् भी नहीं रहता तो यह मन बुद्धि चित्त अहंकार यह चुतष अंतःकरण कहलाता है, यह साम्य अवस्था में जब परणित हो जाता है, यह मन प्रकृति का इसलिए सिद्ध होता है इसीलिए यह जड़वत् सिद्ध होता है। क्या मुनिवरों! देखो, स्वप्न में मन को कुछ भी भान नहीं होता, संसार का जब यह सुषुप्ति में बेटा! मन चला जाता है, तो सुषुप्ति में मन बुद्धि में, बुद्धि चित्त में, चित्त अहंकार में मन बुद्धि चित्त अहंकार बन करके यह चतुषः अंतःकरण बन गया। ये अपनी साम्य अवस्था में विश्राम कर जाता है। यह साम्यवस्था में चला जाता है परन्तु यह जो शरीर है ऋषिवर! यह शरीर ज्यों का त्यों जीवित रहता है। वह जीवन सत्ता कौन है? तो वेद का मन्त्र कहता है प्राण मम् व्रते आत्मा मेरे प्यारे! देखो, आत्मा वृद्ध आत्मा प्राण के साथ में सांस की गति को ज्यों का त्यों निहित बनाए रहता है। तो मुनिवरों! देखो, प्रकृति का जितना मण्डल है वह समाप्त हो गया है और मुनिवरों! देखो, प्राण के साथ में जो आत्मा गमन करता हे अरे, उसी को तो योगी जान करके ब्रह्म की आभा में रत्त हो जाता है। वही ब्रह्मज्ञानी है जो उस प्रणव को और आत्मा दोनों को जान करके वह वहाँ स्थिर हो जाता है और स्थिर हो करके वही मानो देखो, वही विभूति पाद में परणित हो करके विभूतियों को जागरूक करने लगता है। तो विचार विनिमय क्या? मन तो केवल देखो, अग्रहा सम्भवा प्रकृति का इतना मण्डल है और इसमें ही चित्त का मण्डल निहित रहता है, वही संस्कार रहते हैं। तो मेरी इच्छा ऐसी है ऋषिवर कि मेरे गर्भ से बालक का जन्म हो और वह जन्म ब्रह्म कृताम् लोकाम्, उसके द्वारा आवागमन का ऐसा ज्ञान हो, ऐसी मेरी उत्कृष्ट इच्छा है कि आवागमन के संस्कार चित्त मण्डल में न रहें। तो मेरा जीवन सफल उस काल में होगा। तो माता मल्दाल्सा अपने में कितनी विदुषी कितनी महानता को गति करती रहती थी। विचार विनिमय क्या? यहाँ सन्तान ब्रह्मः यागाम् लोकाम् यह पुत्र को जन्म देना भी एक याग कहलाया गया है। यह याग है, माता जितना पुरुषार्थ कर सकती है कितना तपों में रत्त करके अपने जीवन को सफल बना सकती है।

तो आज का मेरा विचार यह क्या कह रहा है कि जैसे शिशु मेरे पुत्रों! देखो, चित्त का मण्डल, प्रकृति का मण्डल भी समाप्त हो गया है संसार का विभु भी समाप्त हो गया,

केवल प्राणं ब्रह्मे आत्मा ही मुनिवरों! देखो, जागरूक रह करके श्वास की गति को गतिवान बनाए रहती है, इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड बाह्य जगत् में दृष्टिपात आता है। इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड का जो शिशु है वे परमपिता परमात्मा कहलाता है और आन्तरिक का मानव के शरीर में जो आत्मा है शिशु में भी वे परमपिता परमात्मा शिशु की मानव सूत्रता उसमें भी हमें दृष्टिपात आ रही है। तो मेरे प्यारे! यह कैसा अनुपम जगत् है, कैसा अनुपम यह ज्ञान और विज्ञान हमारे यहाँ वैदिक ऋषियों ने उद्बुध किया है जिसके ऊपर ममतव धारणानि ब्रह्मा मुनिवरों! देखो, यहाँ प्रत्येक आभा में मानव को अभ्यस्त रहना चाहिए। आओ मेरे पुत्रों! मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा के उस महान रूप को जानने का प्रयास करें जो सूत्रों में सूत्रित हो रहा है। मानो देखो, वैज्ञानिक परमाणुओं में जब एक सूत्र में परमाणु को परमाणु में पिरोया हुआ स्वीकार करते हैं, तो बेटा! वहाँ सूत्र दृष्टिपात आता है। इसी प्रकार माता के गर्भस्थल से ले करके वहाँ शिशु परमाणुओं को पिरो करके वही बाल्य है वही युवा है और वही वृद्धवत् हो करके वह परमाणुओं को पुनः पृथक पृथक हो जाते है। प्रमाणं ब्रह्म लोकाम् हिरण्यम् रथाः तो आज का हमारा वाक् यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपना गम्भीर चिन्तन करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। हमारे आने का उद्देश्य माता मल्दाल्सा ने अपने पुत्रों! को यही कहा था, हे बाल्य! मेरा जीवन जब सफल हो जबकि तुम इस ब्रह्माण्ड में आध्यात्मिकवादी बनोगे और तुम आत्मा और ब्रह्म की आभा को निहित करने वाले हो।

मेरे प्यारे! यह जो राष्ट्र है यह तो दमन प्रवृत्ति ऋषि ने वर्णन की है और यह कहा कि दमन प्रवृत्ति में ज्ञान नहीं होता है, उसमें अज्ञान होता है। उस ज्ञान को, उस विडम्बना को रजोगुणी ज्ञान को लाता है जिससे एक मानव दूसरे का दमन की प्रवृत्तियों में मेरा अनुशासन बना रहे। अनुशासन यदि करना है तो मानव को अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन करना चाहिए, अनुशासन इन्द्रियों पर करोगे तो परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में पहुंचोगे और यदि मानव मानव पर दमन प्रवृत्ति आ जाएगी तो नार्किक समाज बन करके इस

संसार के रूपों में रत्त हो जाओगे।
आज का विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रों! देखो, मानव को अपनी इन्द्रियों में संयम करना चाहिए। इन्द्रियों के ऊपर जब मानव संयम करता है इन्द्रियों के ऊपर जब संयम करता है उनका साकल्य उनके स्वरूप को जान करके ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे! जब यह मानवीय प्रवृत्ति बाह्य जगत् में पहुंच जाती है। बाह्य जगत् में भी परमात्मा को दृष्टिपात करो। तो बेटा! वह मानव अपने में महान बन करके सागर से पार हो जाता है। ये है बेटा! आज का वाक्। मैं कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता भी नहीं हूँ। केवल सूक्ष्म सा मैं परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या मुनिवरों! देखो, कि परमपिता परमात्मा को शिशु रूप में स्वीकार करते हुए, आत्मा को शिशु रूप में स्वीकार करते हुए, उस शिशु प्रवृत्ति को बनाना चाहिए। इसीलिए ऋषि मुनि मानव चंचलता को त्याग करके ज्ञान में प्रवेश हो करके मुनि प्रवृत्ति को धारण करते रहे हैं। वही मुनि प्रवृत्ति होती है, जो शिशु प्रवृत्ति होती है। वही मानो देखो, अज्ञानां ब्र्व्हे वृताम् माता की लोरियों में पान जब तक करता है, जब तक वह शिशु रूप में रहता है और जब मुनिवरों! देखो, बाह्य जगत् में चला जाता है, तो माता की लोरियों से विच्छेद हो जाता है। यदि वह मुनि बनना चाहता है जैसे माता की लोरियों में शिशु है माता चुम्बन कर रही है, इसी प्रकार वह मानव ज्ञानी बन करके, परमपिता परमात्मा की गोद में चला जाए तो बेटा! वह परमात्मा को अपना सूत्र बना करके मुनि प्रवृत्ति में ज्ञान में रत्त हो करके इस सागर से पार हो सकता है। ये है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा, आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन। ओ३म् देवा यम रथप्राची गताः आभ्याम् मना वायु गतम् मनाः। ओ३म् शनि वृताम् आपा रथम् दधि वाया। ओ३म् पृथ्वी माम गता आभ्यां देवम् रथाः। ओ३म् सर्वम् भद्रा मा९ स्वरा वाचन्नमा। अच्छा गुरुदेव, आनन्द मंगलम्। दिनांक 20 नवम्बर 1985 स्थान कविनगर गाजियाबाद (उ.प्र.) समय प्रातः

10 बजे।

११ 29 11 1985 पुष्प 52 राम राज्य यज्ञ को अपनाने में होगा

देखो, मुनिवरों! आज हम हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे हैं। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा के गुणों का गुणवादन कर रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है और यह घोषणा कर रहा है कि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप माने गए हैं क्योंकि वह सर्वत्रता में निहित है। वेद का मन्त्र कहता है यज्ञ ब्रह्मा सर्वशक्ति वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है और याग उसका आयतन माना गया है। सम्भवाः जैसे परमपिता परमात्मा के विज्ञानमयी स्वरूप का वर्णन किया जाता है, विज्ञान उसका आयतन है इसी प्रकार यज्ञोमयी आयतन की हमारे यहाँ परम्परा से घोषणा होती रही है और विचार विनिमय होता रहा हे कि हमें अपने मानव जीवन को भी याज्ञिक बनाना चाहिए। याग का अभिप्राय यह है, हमारे यहाँ दो प्रकार के यागों का प्रायः जन्म होता रहता है। यागाम् रुद्रम् भवाम् वाचन्नमः वेद का मन्त्र यह कहता है, हे मानव! तू यांज्ञिक बन, याग का अभिप्राय यह है कि अपनी प्रत्येक इन्द्रियों को सजातीय बना, प्रत्येक इन्द्रिय तेरी स्वाहा में रहनी चाहिए। प्रत्येक इन्द्रियों का जो क्रियाकलाप हो रहा है वह क्रिया कलाप अपने में विचित्र होता रहेगा, तो दो प्रकार के यागों की उपलब्धियां हमारे यहाँ, परम्परागतों से मानी गई है। एक याग वह कहलाता है जो बाह्य याग हो, एक वह याग है जो आंतरिक याग होता रहता है। तो दोनों प्रकार के ज्ञान औरविज्ञान की उपलब्धियां होना ही हमारा एक कर्त्तव्य माना गया है, दोनों प्रकार के ज्ञान औरविज्ञान में मानव को सदैव रत्त रहना चाहिए। जब हम अपने ज्ञान औरविज्ञान की प्रतिभा में सदैव रत्त रहते हैं तो प्रायः ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हम ऐसी अनूठी एक मानवीयता को

प्रायः अपनाते रहते है।

तो हमारा वेद का मन्त्र हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है। वेद का मन्त्र कहता है कि हे मानव! तू अपनी महा प्रतिभा में रत्त होता चल। हमारे यहाँ दोनों प्रकार के ज्ञान और विज्ञान में प्रायः मानव सदैव परम्परागतों से अपने में अभ्युदय होता रहा है। आज मैं विशेष तुम्हें विवेचना देने नहीं आया हूँ आज केवल तुम्हें कुछ यागों का चलन और अभ्योवृतम् देवाः यह जो संसार रूपी जो ब्रह्माण्ड है एक प्रकार की यह यज्ञाशाला है। यहाँ प्रत्येक मानव याज्ञिक बनने के लिए आया है। तो प्रत्येक मानव को याग करना चाहिए, यह संसाररूपी यज्ञवेदी का जब मेरे प्रभु ने निर्माण किया तो परमपिता परमात्मा सोऽहम् ब्रह्मा बने आत्मा सोऽहम् यज्ञमान बना और पञ्चमहाभूत यह नाना प्रकार के होताजन बने और होता उद्गाता जब उद्गीत गा रहा है वेद ध्वनि हो रही है, वह वायु अपने में ध्वनित कर रहा है, तो उसने प्राणम् ब्रह्मा वाचो देवाः वह जो प्राण ध्वनि हो रही है वह अपने में एक अनूठी है, विचित्र है। तो वह एक संसार रूपी याग हो रहा है, परमपिता परमात्मा ब्रह्मा बन करके एक उद्गीत गा रहे हैं।

मैं तुम्हें विशेष चर्चा तो देने नहीं आया हूँ। आओ आज मैं कुछ ऋषि मुनियों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। ऋषि मुनि अपने में कितना अनूठा उनका चलन रहा है। एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ एक वृष्टियाग हुआ। तो महाराजा वैशम्पायन मुनि महाराज याग में से अपने आश्रम में पधारे। जब वह अपने आसन में चिन्तन और मनन करने लगे, तो वैशमपायन के हृदय में वेद मन्त्रों की ध्वनि अपने में ध्वनित हो रही थी। तो महर्षि वैशम्पायन के समीप एक वेद का मन्त्र आया और वह वेद का मन्त्र यह कह रहा था सम्भवम् ब्रह्मः लोकाम हिरण्य वृही वत्तम् देवाः। वेद का मन्त्र यह कह रहा था कि यज्ञमान का रथ बन करके द्यौ लोक को जाता है। परन्तु वेद का मन्त्र जब ऐसा कह रहा है तो वेद के ऋषि ने विचारा कि वेद का मन्त्र तो एक अनूठा है, यथार्थ है, परमात्मा की अमूल्य वाणी है। परन्तु यह यथार्थ कह रहा है इसको साक्षात्कार हम कैसे दृष्टिपात कर सकते हैं। तो महर्षि वैशम्पायन सायंकाल के समय यह चिन्तन कर रहे थे। चिन्तन करते करते निद्रा की गोद में चले गए। मध्य रात्रि में निद्रा से ऋषि जागयक हो गए

और अपने में चिन्तन करने लगे, मनन करने लगे। जब मनन करते करते यह विचार आया कि इसका साक्षात्कार होना चाहिए। रात्रि का काल समाप्त हो गया, प्रातःकालीन हो गया। प्रातःकाल होते ही ऋषि अपने आसन को नहीं त्याग रहा है, उसी चिन्तन में लगा हुआ है। देखो, निकटतम् एक आश्रम था महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज ने विचारा ऋषि ने आज अपने आसन को नहीं त्यागा, इसके मूल में क्या है? तो महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज उनके आश्रम में आए। उन्होंने कहा, ऋषिवर आज आप अपने आसन को नहीं त्याग रहे हैं, इसका क्या कारण है? तो महर्षि वैशम्पायन मुनि ने कहा कि भगवन्! मैं एक वेदमन्त्र का अध्ययन कर रहा हूँ और वेदों के अनन्त मन्त्र इस प्रकार के हैं जिसका अध्ययन करने को मुझे प्रायः समय समय पर अभ्यस्त करना होता है और मैं उसकी अपने में निमटारा नहीं कर रहा हूँ। कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि प्रहृण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य आ पहुंचे। ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी यज्ञदत्त नाना ब्रह्मचारियों का ऋषि मुनियों की एक स्थली वहाँ विराजमान हो गई और इसी वाक् पर उनका चिन्तन होने लगा कि यज्ञमान का रथ कैसे हम दृष्टिपात करें। इतने में कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि सोमवृत्तिका मुनि आए, उन्होंने कहा मेरे विचार में, चलो अयोध्या में गमन करते हैं और राम के द्वारा याग होगा और उस याग में उसका साक्षात्कार होगा।

मेरे पुत्रों! देखो, यह वाक् स्वीकार कर और वहाँ से ऋषि मुनियों ने गमन किया। भ्रमणकरते हुए मार्ग में महर्षि स्वेरन्थ मेनकेतु महारजा का आश्रम उन्हें पर्याप्त होता था। उसने रात्रि समय विश्राम किया और वहाँ से प्रातःकाल होते ही उन्होंने गमन किया, वाहनों में विद्यमान हो करे वह भगवान् राम की उस अयोध्या में आ गए जहाँ प्रातःकालीन भगवान् राम याग करते थे। याग भवते लोकाम् यागाः रुद्रो भवितव्यः राम प्रातःकालीन याग करते थे, याग के पश्चात् उनकी कुछ उपदेश मंजरी होती थी। जब उपदेश मंजरी प्रारम्भ हो रही थी, तो ऋषि मुनि अपने अपने स्थानों पर जा करके विद्यमान हो गए। रात को यह उपदेश चल रहा था, वह उच्चारण कर रहे थे। कि राष्ट्रवेत्ताओं! हे राष्ट्र के कर्मवेत्तओं! तुम्हारे यहाँ कोई याग होना चाहिए। राजा को भी याग करना चाहिए क्योंकि

जब सुगन्धि होती है, वह सुगन्धि ही वायुमण्डल में प्रवेश करती है। भगवान् राम का यह कथन था कि मेरे इस अयोध्या राष्ट्र में प्रत्येक गृह में सुगन्धि आनी चाहिए, प्रत्येक गृह में से वेद ध्वनि होनी चाहिए, जिससे यह संसार और मेरा यह राष्ट्र मेरा यह जगत् एक मानवीयता के परणित होता हुआ दर्शन की आभा में निहित होता रहेगा। बाल्य बालिका अपने चरित्र की प्रतिभा को अपना करके महानता की वेदी पर सदैव रत्त होते रहे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि राम का विशाल उपदेश हुआ। राम जी उच्चारण कर रहे थे कि प्रत्येक गृह में यह घोषणा कर देनी चाहिए राष्ट्र में कि प्रत्येक गृह में यह घोषणा कर देनी चाहिए राष्ट्र में कि प्रत्येक गृह में से सुगन्धि आनी चाहिए, चाहे विचारों की सुगन्धि हो, चाहे वह साकल्य की सुगन्धि हो। साकल्य और विचार दोनों की सन्निधानमात्र से सुगन्धि आनी चाहिए। जब इस प्रकार भगवान राम ने अपने कर्मवेत्तओं से यह कहा कि तुम यह घोषणा करो। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि भगवान राम के राष्ट्र में प्रत्येक गृह में वेदध्वनि प्रातःकालीन होती थी क्योंकि हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने जब वेद की प्रतिभा को अपनाया, तो सबसे प्रथम ब्रह्मयाग की घोषणा की है, वेद के ऋषि मुनियों ने की है कि हमारा ब्रह्म वृतम् देवाः यागाम् रुद्र वाचप्रहे। जब राजा ने यह वाक् प्रगट किया तो यह घोषणा हो गई तो जैसे ही उनका उपदेश समाप्त हुआ, याग की प्रतिक्रिया समाप्त हो गई। तो वह बारी बारी भगवान् राम ऋषि मुनियों के समीप पहुंचे और महर्षि वैशम्पायन से बोले कि प्रभु आप तो ब्रह्मवेत्ता हैं, आप तो सभी ब्रह्मवेत्ता हैं। मेरा यह बड़ा दुर्भाग्य रहा है। यदि तुम मुझे सूचना दे देते तो मैं आपकी आज्ञा का पालन करता और तुम्हें वाहन में लाता। हे प्रभु! हे ऋषियों! मेरा यह दुर्भाग्य रहा है।

वैशम्पायन बोले कोई वाक् नहीं राजन् हे राम! हम तो दर्शनाक्रम वृतों भ्रमण करते हुए आ गए हैं। उन्होंने कहा नहीं प्रभु! बिना कुछ कार्य के तुम्हारा तो आना असम्भव है। जो ब्रह्मा में लीन रहने वाले ब्रह्म का चिन्तन करने वाले हैं, वेद ध्वनियों पर अन्वेषण करने वाले हैं, ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहते हैं उनका बिना कारण के आना, नहीं हो सकता। तो भगवान् राम ने यह वाक् श्रवणम् ब्रहे ऋषि मुनियों ने जब यह

श्रवण किया, उन्होंने कहा वैशम्पायन और विभण्डक और महर्षि सुकेता ने यह वाक् कहा कि हे राजन्! हे राम! हम इसलिए आए हैं कि हम आपसे एक याग का आयोजन चाहते हैं, याग कराना चाहते हैं। उन्होंने कहा बहुत प्रिय, राम बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने वही आज्ञा शिल्पकारों को दी कि एक यज्ञशाला का निर्माण होना चाहिए। साकल्य एकत्रित करना यह आज्ञा दी। तो ऋषि मुनियों को भिन्न भिन्न स्थानों में उनके कक्षों में उनको निहित कराया। आइये भगवन्! विश्राम कीजिए। देखो, अपने अपने आसनों पर ऋषि मुनि अपने कक्षों में विद्यमान हो गए। वेद का अध्ययन करना, चिन्तन और मनन करना, उनकी एक प्रतिभा कहलाती थी। तो विचार क्या? मुनिवरों! देखो, कुछ समय के पश्चात् एक यज्ञशाला का निर्माण हुआ। निर्माण हो गया तो सब साकल्य एकत्रित हो गया। अप्रतम् भगवान् राम ने कहा, प्रभु आइये याग का प्रारम्भ करेंगे। सब ऋषि ुनि अपने अपने कक्षों को त्याग करके, क्रियाओं से निवृत्त हो करके, यज्ञशाला में जा पधारे। यज्ञशाला बड़ी सजातीय थी, ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे यहाँ ब्रह्मपुरी आ गई हो, ब्रह्मा का स्थान आ गया हो जैसे ब्रह्मवेत्ताओं की प्रतिभा मानवीय जीवन में निहित रहती है। आसन सब लग गए, उन आसनों पर ऋषि मुनि विद्यमान हो गए। भगवान् राम ने यज्ञशाला में ब्रह्मा का निर्वाचन किया, उद्गाता अध्वर्यु का चयन किया औरउद्घाटन करके ब्रहे वाचन्नम ब्रह्माः निर्वाचन करने के पश्चात्, याग का प्रारम्भ हुआ। सोऽहम् यजमान् बन करके अब आहुति देना जैसे ही प्रारम्भ किया, अग्निहोत्र होने लगा, अग्नि प्रचंड हो गई। साकल्य बह्म वृतो देवाः साकल्य जब उसमें प्रदान कियाजाने लगा, तो वेद में एक मन्त्र आया था वह वेदमन्त्र कह रहा था चित्रम् भविताम् देवम् यज्ञभवि वृताम् द्यौ लोकाम् ब्रह्मा व्रता यह देखो, वेद का मन्त्र कह रहा था कि यजमान् का रथ बन करके द्यौ लोक को जाता है। जब यह वाक् भगवान राम के समीप आया उन्होंने याग को रोक दिया और कहा हे ब्रह्मवेत्ताओं। मुझे यह निर्णय दो कि वेद का मन्त्र यह कह रहा है कि यजमान् का रथ बन करके द्यौ लोक को जाता है, तो रथ को हम प्रायः दृष्टिपात करना चाहते हैं। उन्होंने कहा आइये भगवन्! समव व्रहे कृतोः म इसको दृष्टिपात करेंगे। ब्रह्मवेत्ता दर्शनों से उसको घटित कर रहे हैं परन्तु राम स्वीकार नहीं

कर रहा है। वह कह रहे हैं कि मुझे तो प्रत्यक्ष उनके चित्र दृष्टिपात आने चाहिए। ऋषि मुनियों ने अपने दर्शनों की प्रतिभा में, दर्शनों की भाषा में यह निर्णय कराया, परन्तु अपने में निबटारा नहीं हुआ। राम ने यह स्वीकार नही किया। इतने में कहीं से महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज, ब्रह्मचारी यज्ञवेदी के वेदकेतु और ब्रह्मचारिणी शबरी महर्षि पमदेव मुनि महाराज को कन्या अपने वाहन में विद्यमान ही करके वह उस यज्ञशाला में पधारे। महर्षि भारद्वाज मुनि ने यह दृष्टिपात किया कि राम का यज्ञ रुक रहा है। उन्होंने कहा हे राम! तुम याग को क्यों नहीं कर रहे हो? भगवान्राम बाे कि यह वेद का मन्त्र है, मैं इन ब्रह्मवेत्तओं से उच्चारण कर रहा हूँ कि उनका मुझे निर्णय कराओ। यजमान् का रथ कैसे जाता है द्यौ लोक में? जब यह वाक् उनके समीप आया तो भारद्वाज मुनि ने कहा कि हे राम! तुम इन ब्रह्मवेत्ताओं का अपमान तो नहीं कर रहे हो? भगवान् राम ने कहा प्रभु! ब्रह्मवेत्तओं के अपमान की मेरे में कहाँ शक्ति है? मैं तो नमः ब्रहे व्रताम् हे प्रभु! मैं तो जिज्ञासु हूँ, मैं तो विज्ञान की धराओं में रत्त रहा हूँ। इसको जानना चाहता हूँ। महर्षि भारद्वाज मुनि ने जब यह वाक् कहा तो भारद्वाज ने ब्रह्मचारिणी शबरी और ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ब्रहे यज्ञकेतु इत्यादि ब्रह्मचारियों से कहा, जाओ तुम कदली बनों में जा करके मेरे यहाँ से एक यन्त्र को, चित्रावली को लाया जाएं।

देखो, उन दोनों ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, वह कदली बनों से यन्त्र को लाया गया। यन्त्रम् ब्रहे कृतम् ब्रह्माः वह देखो, चित्रवलियों को, यन्त्रों को लाया गया। उन यन्त्रों को ला करके उसयज्ञशाला के अव्रतों में उन्होंने निहित कर दिया। विक्राताम् ब्रह्मा वृत्ति देवाः सूर्य से ऊर्ज्वा ले करके और देखो, विद्युत ले करके उन्होंने वाहनों का स्थिति कर दिया। उन चित्रावलियों में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज विद्यमान हैं वह बड़े प्रसन्न हुए। ऋषि मुनि अपने में प्रसन्न हो रहे थे। महर्षि भारद्वाज बोले कि राम तुम याग का प्रारम्भ करो जब तुम्हें चित्रों का दर्शन होगा। तब मुनिवरों! देखो, ! याग को उन्होंने प्रारम्भ किया, वह जो चित्रावली थी उसमें जैसे स्वाहा उच्चारण कर रहे थे, तो यज्ञमान शब्दों के साथ में वह स्वाहा साकल्यतरंगें और उन तरंगों के साथ में देखो, जितना आकार था यज्ञशाला का उसका रथ बन करके द्यौ लोक को

जाता हुआ दृष्टिपात होने लगा। महर्षि भारद्वाज मुनि ने कहा राम, यह दृष्टिपात करो तुम्हारा चित्र जा रहा है, यज्ञशाला का रथ बन करके द्यौ लोक में प्रवेश हो रहा है, यही तो रथ है जो तरंगे त्यागता चला जाता है और इस वायु मण्डल का शोधन करता चला जाता है। भारद्वाज मुनि महाराज ने जब यह निर्णय कराया तो वह बड़े प्रसन्न हुए संकट व्रहे राम! ने याग का प्रारम्भ किया। तो राम से बोले हे राम! तुम्हें यह प्रतीत है कि मेरे यहाँ नाना प्रकार की चित्रशालाएं हैं। यह तो तुम्हारे शब्दों को ही रथ बना करके यज्ञशला का दृष्टिपात करा रहा हूँ। परन्तु मेरे यहाँ इस प्रकार के यन्त्र है एक एक रक्त के बिन्दु से, एक रक्त का बिन्दु है यन्त्र में प्रवेश किया तो उस एक रक्त के बिन्दु से उस मानव का साक्षात्कार हो जाता है जिस मानव का वह रक्त का बिन्दु है। यन्त्र विज्ञान अपने में अनूठा बन करके रहा है। यह मानवीय की, यह परमपिता परमात्मा के साक्षात् को एक उपलब्धि कहलाती है। देखो, अणु में, परमाणु में नाना प्रकार के अणु और परमाणुओं की धाराओं से जब यन्त्रों का निर्माण किया जाता है, तो एक एक रक्त के बिन्दु में मानव की प्रतिभा निहित रहती है। भारद्वाज मुनि ने कहा हे राम! मेरे यहाँ ब्रह्मचारी जो अध्ययन करते हैं, मैं उन ब्रह्मचारियों को यही तो अध्ययन कराता हूँ कि ब्रह्म एक एक शब्द में देखो, चित्र है, एक एक परमाणु में ब्रह्माण्ड है, एक एक रक्त के बिन्दु में मानव का चित्र विद्यमान रहता है। वही तो चित्रावली बन करके अन्तरिक्ष में गति करती रहती है। तो जब ऋषि ने यह दृष्टिपात करायातो राम महर्षि भारद्वाज मुनि के चरणों की वन्दना करने लगे। उन्होंन कहा धन्य है प्रभु और महर्षि वैशम्पायन प्रसन्न हो रहे थे कि वेद अपने में अनूठा है, वेद का मन्त्र अपने में अनूठा बन करके रहता है। ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा प्रत्येक वेदमन्त्र में निहित हो रही है।

तो आज मैं बहुत दूरी चला गया हूँ। आज का विचार यह क्या चल रहा है? आज मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा हूँ कि राम का याग चल रहा है। मुझे ऐसाप्रतीत हो रहा है जैसे राम की उस यज्ञशाला में हम सब विद्यमान हैं ऐसा अनुभव हो रहा है। नाना प्रकार की चित्रावली यन्त्रों में वह चित्र दृष्टिपात आ रहे हैं, यज्ञमान स्वाहा कह रहा है, होतागण शुभ उच्चारणाकर रहे हैं, यज्ञमान की वाणी को पवित्रबना रहे हैं। उद्गाता उद्गीत

गा रहा है, वह उद्गाता बन करके ही अध्वर्यु अपने में व्रतम् ब्रह्माः वह साकल्य का स्वामीतव करने वाला है। महर्षि वशिष्ठ पुरोहित बन करके यजमान् को महान बना रहे ह। विचार विनिमय क्या? यजमान् देखो, वह ब्रह्म बन करके ब्रह्मों उद्गीताम् ब्रह्मो वाचप्रही लोकाम् वह उद्गाता की वाणी को उस उद्गाता को पवित्र बना करके ब्रह्मावेद का मन्थन कर रहे हैं वेदाः प्रकाशम दिव्यं लोकाम् वेद एक प्रकाश में रत्त रहता है। तो विचार विमनय क्या है? भगवान् राम के वह याग छैः छैः माह तक याग प्रारम्भ रहते थे। ऋषि मुनियों का चयन होता रहता था, वायु मण्डल पवित्र बनता रहता थ। तो मुनिवरों! देखो, आज का विचार अब मैं समापन कर रहा हूँ। आज के विचारों का उच्चारण करने का अभिप्राय क्या, कि यह परमपिता परमात्मा का जो अनूठा जगत् है, यह जो अनुपम जगत् है यह परमपिता परमात्मा की एक यज्ञशाला है। यह मानव का शरीर भी यज्ञशाला है, प्रत्येक इन्द्रियों का जब शोधन करता हुआ मानव अपने हृदयरूपी यज्ञशाला में जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उसमें याग करता है, तो प्रत्येक इन्द्रिया पवित्र बन जाती है। आओ मैं विशेष चर्चाप्रगट करने नहीं पाया हूँ। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द उचारण करेंगे क्योंकि इनकीबड़ी वेदना रहती है, इच्छाएं रहती है।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् दिव्यात् गतप्रजाऽहम् देवम् यजाः मनच्छनम् ब्रह्माः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी ब्रह्म की चर्चा कर रहे थे और उस परमपिता परमात्मा के यज्ञोमयी स्वरूप की चर्चा कर रहे थे। वास्तवम े जब हम परमपिता परमात्मा का चिन्तन करना प्रारम्भ करते हैं तो प्रायः ऐसा ही दृष्टिपात होता है जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी प्रगट कर रहे थे और उनका विचार बड़ा अनूठा है। इन विचारों में तो मैं इनके ऊपर तो अपनी कोई टिप्पणी देना ऐसा ही है जैसे सूर्य और जुगनू दोनों की विचार अवृत्तियां हैं मेरे में यह तो सामर्थ्य नहीं क्योंकि ऋषि मुनियों के मन्थन किए हुए जो विचार हैं अथवा उनका अनूठा एक संकल्प ही रहता है वह बड़ा विचित्र है। आज मेरा तो केवल यही है कि हमारी जो वाणी है आकाशवाणी है यह पृथ्वी मण्डल में वृत्तियां प्रसारण हो रही है। एक याग का आयोजन हो रहा था। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह प्रेरणा दी कि मेरे पूज्यपाद

गुरुदेव तुम याग के सम्बन्ध में कुछ अपनाविचार दो। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का जो यागों के ऊपर अध्ययन है वह एक बड़ा गंभीर और महान् रहा है। मैंने इनके वाक्यों को श्रवण कियापरन्तु याग के ऊपर अनन्य विचारधाराएं हैं, नाना विचार धाराएं हं विज्ञान की, याग की ही प्रतिभा में रह रहता है। परन्तु जिस राजा के राष्ट्र में, जिस काल में समाज में यह अव्रहा विश्वश्चप्रहे व्रतम् देवाः इस याग से विज्ञान की उपलब्धि होती है, विज्ञान इसी से जन्मवृत्तियों को प्राप्त होता है। तो वह काल विज्ञान का बड़ा पवित्र होता है वह विज्ञान अपने में अनूठा बन करके रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी याग के सम्बन्ध में कहा। मैंने बहुत पुरातनकाल में पूज्यपाद गुरुदेव को कहा है कि बहुत काल हो गयाहै जब यागों का तिरस्कार होता चला आ रहा है। यागों का तिरस्कार एक हिंसा में परिवर्तित हो गया था। मध्यकालीन महाभारत के काल के पश्चात् इस प्रकार का यह समाज बना कि इन्होंने यागों का तिरस्कार किया, इसमें हिंसा प्रारम्भ हुई हिंसा का स्रोत करने लगे। परन्तु देखो, यह कहीं कहीं से आत्मा आ जाती है यागों का चलन करके पुनः सुगन्धि प्रदान कर देते हं। यह जो परमपिता मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी परमपिता परमात्मा की इस अनूठे जगत् को एक यज्ञशाला के रूप में परणित कर रहे थे, विज्ञान अपने में बड़ा अनूठा बन करके रहा है। भारद्वाज मुनि महाराज के यहाँ नाना प्रकार के यन्त्र इस प्रकार के रहे जहाँ यज्ञमान के स्वाहा के साथ उनके चित्र दृष्टिपात होते रहें हैं जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी प्रगट कराया। परन्तु देखो, जैसा भगवान्राम की गाथा प्रगट की कि राम ने यह घोषणा की कि प्रत्येक गृह में वेदध्वनि होनी चाहिए।

मैं भी आधुनिककाल के राष्ट्र से यही कहता हूँ हे राजन्! तेरे राष्ट्र में प्रत्येक गृह से वेदध्वनि और सुगन्धि होनी चाहिए। जब वेदध्वनि वह विचारों में परिवर्तित होती है तो राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाता है। अश्वमेधयाग करने वालाराजा हो। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अश्वमेध यज्ञ की विवेचना करते हुए, उनकी विचना कितनी मार्मिक और देखो, दर्शनों से गुथी हुई है। परन्तु आधुनिक मध्यकाल में महाभारत के काल के पश्चात् अश्वमेध यागों का जो परिवर्तित हुआ, देखो, उसमें अश्व नाम को राजा का भीहै, अश्व

नाम घोड़े का भी है तो अश्व की मांस कीआहुति देना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ अज्ञान कितना आया कि महापुरुषों ने उसको तिलांजली दी और याग का तिरसकार हुआ। उसका परिणाम यह हो रहा है कि आज देखो, यह समाज है, आज का जो राष्ट्रवाद है हिंसा की वेदी पर निहित हो रहा है। मैं विशेषता में नहीं जाना चाहता हूँ। बहुत पुरातन काल हुआ मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा था कि यदि समाज को ऊँचा बनाना है, मनु राष्ट्र की स्थापना करनी है तो यहाँ मछली से ले करके प्राणीमात्र की रक्षा करनी होगी। तो इस प्रकार का मेरा सदैव एक विचार चाहता है। आज यह जो युग चल रहा है यह युग बड़ा अब्रत ब्रहे हैं। यह युग ऐसा है इस युग में देखो, प्रत्येक मांस की आहुति अपने उदर में दे रहा है, देना चाहता है। परन्तु हे मानव! तू आभागा क्यों नब रहा है, तू परमात्मा की सृष्टि में आया है, तू वहाँ ऊर्ध्वा में क्रिया कलाप कर जिससे तेरा जीवन ऊँचा बनता चला जाए और राष्ट्रीयता को ऊँचा बना और राष्ट्रीयता में रूढि नहीं, धर्म होना चाहिए। रूढ़ि नहीं होनी चाहिए।

आज मेरा जो विचार रहता है वह यजमान् के साथ रहता है। हे यजामन्! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बनारहे क्योंकि ऐसे युग में तू अपने में अपने द्रव्य को सदुपयोग का अव्रह बना रहा है, सदुपयोग हो रहा है तेरे द्रव्य का। आधुनिक काल का विज्ञान तो इस वायु मण्डल में दूषितपने की भी घोषणा करता रहता है और यह घोषणा करता है मेरा यह वायु मण्डल अपवित्र बन गया है। हे मानव! तू याज्ञिक बन। हे वैज्ञानिकों! राज से कहो कि याग करे और विशाल विशाल याम हों, अहिंसा से देखो, अहिंसा परमोधर्मो याग होने चाहिए उनमें विचार बनेगा, चरित्र बनेगा, सम्प्रदायों का विनाश हो जाएगा। धर्म की स्थापना करता हुआ वेद का प्रसार होगा। वेदों प्रकाशाम् दिव्य ब्रह्मा वाहो अश्वतम् देवाः वेदका त्रि यह कहता है हे यजमान्! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बनारहे आज उस यजमान् का सौभाग्य स्वीकार कर रहा हूँ जो अपने द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है। द्रव्य का सदुपयोग होना बहुत अनिवार्य है। जब राजा के राष्ट्र में या समाज में या गृह में देखो, द्रव्य का सदुपयोग होने लगता है, तो राष्ट्र पवित्र बन जाता है, समाज पवित्र बन जाता है, गृह पवित्र बन जाता है। तो इसलिए द्रव्य का सदुपयोग

करना है तो देवपूजा की जाए। देवपूजा का अभिप्राय यह है कि देवताओं को पूजा होनी चाहिए। देवताओं की पूजा का अभिप्राय यह है कि उनका सदुपयोग करना है, सदुपयोग करने का नाम ही पूजा कहलाती हैं जैसे यागाम् ब्रह्मः साकल्य याग में प्रदान किया जाता है। वह साकल्य वायु मण्डल में प्रसारित हो जाता है, उसी को ले करके मेघ मण्डलों की उत्पत्ति होती है। समय समय पर वृष्टियां होती हैं, वह देवपूजा है उसमें अग्नि का पूजन है, अग्नि तो देवताओं का मुख कहलाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में कहा है कि अग्नि तो परमाणुओं का भेदन कर देती है और वह भेदन करके जो वायु मण्डल में अपनी ध्वनित होता है तो मुनिवरों! ऐसा मुझे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया कि अशुद्ध परमाणुओं को निगलता हुआ, शुद्धीकरण करता हुआ, वायु मण्डल को पवित्र बनाती है। इस प्रकार यागाम् ब्रह्म लोकाम् यही याग है जो मानव को ब्रह्म लोक में पहुँचा देता है।

ब्रह्मलोक क्या है? यह मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में प्रकट कराया। ब्रह्मलोक में जहाँ मानव ब्रह्म का चिन्तन करता है, अपनी आत्मा का चिन्तन करता है और अपने शरीर रूपी याग को विचारने लगता है, धर्म मर्यादा को ऊँचा बनाता है। जैसे मानव का धर्म है पूज्यपाद गुरुदेव जब शिक्षा देते रहे हैं तो वह निर्णय देते रहते थे, जितना संसार का विज्ञान है वह पञ्चीकरण कहलाता है। देखो, प्रत्येक जैसे रूप रस गंध और शब्द और स्पर्श यह पाचों में अभ्युदय जैसे सुगन्ध ब्रहे यह सुगन्ध है, यह सब पञ्चीकरण में निहित है। मुनिवरों! देखो, मेघ रूप को दृष्टिपात करते हैं, ग्राहण सुगन्ध लेता है जिसका सम्बन्ध पृथ्वी से रहता है और इसी प्रकार शब्द दिशाओं में अन्तरिक्ष में रहता है। इसी प्रकार ब्रहे देखो, स्पर्श यह वायु का गुण है। प्रत्येक इन्द्रियां देखो, तेजोब्रह्मा अपने में रत्त हो करके, शब्द वाणी का विषय कहलाता है, इन सबमें देखो, शुभ उच्चारण करो सुदृष्टि पान करो, शुशब्दों का ग्रहण करो, सुगन्धित सुसज्जित होनी चाहिए और स्पर्श पतिक्रिया ऊँची प्राणशक्ति होनी चाहिए। जब इस प्रकार का साकल्य बना करके अपने हृदय रूपी यज्ञशाला में जो ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हो और उसमें स्वाहा कहता है तो यह राष्ट्रअपने धन को जन्म देता है। धर्म केवल रूढ़ियों में

नहीं होता अरे, मानव! धर्म तो तेरी इन्द्रियों में समाहित हो रहा है। जब तू प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर चिन्तन करना प्रारम्भ करेगा तो पांच ज्ञानेन्द्रियों में धर्म निहित हो जाता है। आज का मानव नाना प्रकार के रूढ़ियों को धर्म कह रहा है। यह धर्म नहीं होता। एक राष्ट्रीय विचारधारावादी प्राणी उपस्थिति हो करके नाना धर्म उच्चारण कर रहा है। अरे, भोले! तुमने अध्ययन किया है, एकीकी वचन ही है धर्म का तो, नाना धर्म नहीं हो सकते, धर्म एक है, वह एकांकी वचन है वह बहुवचन नहीं कहलाता इसीलिए मानव का धर्म क्या है? प्रत्येक इन्द्रियों में जो समाहित हो रहा है। मुनिवरों! देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब बाल्यकाल में अध्ययन कराते थे तो धर्म का अध्ययन कराते रहो, तो इसलिए मैं आज विशेष चर्चा कोई प्रगट नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि विचार केवल यह कि धर्म मानव की इन्द्रियों में है और वही धर्म राष्ट्र में है। कर्त्तव्य का पालन करना ही एक मानवीयता कहलाती है। तो यह विचार आज का अब हमारा क्या कह रहा है। हे यजमानृ! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे क्योंकि तू सदैव अपने द्रव्य का अपने गृह में इस प्रकार के वेद उद्घोष कराता रहे और तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बनारहे। इसके साथ आज का हमारा यह वाक् समाप्त होने जा रहा है।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! मेरे प्यारे! महानन्द जीके हृदय में सदैव एक वेदना रहती ै कि राष्ट्र पवित्र होना चाहिए। इनके हृदय में यह वेदना रहती है जो त्रुटियां हैं जो मानव के हृदयों में स्थली बनाए हुए हैं वह समाप्त होनी चाहिए। और रूढ़ि नहीं होनी चाहिए जो नाना रूपों में प्रभु के नामों पर रूढ़ियां है वह राष्ट्र के लिए एक समय घातक बन करके रहती है। ऐसा मेरे प्यारे! महानन्द जी का विचार हे और यह विचार वास्तव में सार्वभौम हैं इसके ऊपर मानव को चिन्तन करना चाहिए क्योंकि राष्ट्र उसी काल में ऊँचा बनता है जबकि वह अहिंसा परमो धर्मः को अपना लेता हे और अहिंसा परमो धर्मः का अभिप्राय क्या है कि धर्म और मानवीयता की रक्षा होनी चाहिए। तो आज का विचार हमारा क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए क्योंकि हमारे यहाँ भगवान् राम के राष्ट्र में पुरातन काल में राजाओं यहाँ अश्वपति इत्यादि राष्ट्र में भी प्रायः देख इसको प्रकार का विचार कि प्रत्येक गृह में

याग और सुगन्धि होनी चाहिए। क्योंकि जब साकल्यों की सुगन्धि और याग होते हैं, वेदध्वनि होती है, तो वह वाणी वेद की पवित्र बनाती है और वह ध्वनि भी पवित्र हो जाती है। तो इस प्रकार का विचार आज मेरे प्यारे! महानन्द जी का और हमारा था कि भगवान राम का याग चल रहा है, वह याग छेः माह तक प्रारम्भ रहा वहाँ मन्त्रों में चित्रों का दर्शन होता रहा और छेः माह के पश्चात् उस याग का समापन हुआ। गो इत्यादि दक्षिणा में परणित करके और राम के राष्ट्र में जो कुरीतियां थीं वह दक्षिणा उन्होंने प्रदान किया। ऐसा उनका सदैव चिर व्रहे। तो आज का यह विचार अब हमारा समाप्त अब वेदों का पठन पाठन। दिनांक 29 नवम्बर 1985 स्थान : श्री राजपाल सिंह त्यागी निवाड़ी समय : प्रातः 10 बजे

१२ 04 12 1985 पुष्प 52 प्राणायाम की महत्ता

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ हैं, कोई भी ऐसी स्थली नहीं है, जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हो। मानो समुद्रों की कोई भी तरंग ऐसी नहीं, और पर्वतों की कोई ऐसी गुफा नहीं है, जहाँ वे परमपिता परमात्मा वास न करता हो। मानो वह सर्वत्र विद्यमान है, इसीलिए मानव को, उस परमपिता परमात्मा का उद्गीत गाना चाहिए, क्योंकि जो परमपिता परमात्मा की महिमा के ऊपर चिन्तन और मनन करते रहते है। उनकी जो मनोनीत जो बुद्धि है, वे महान् और पवित्र बनती चली जाती हैं। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, नाना प्रकार के वैज्ञानिक हुए, परन्तु उन वैज्ञानिकों के चिन्तन करने का जो एक समूह रहा है, अथवा

एक विचार रहा है, वह एक बड़ा अनुपम रहा है।

पञ्च महाभूतों से जीवन सत्ता

मुझे मेरे प्यारे! महानन्द जी ने, कई काल में वैज्ञानिकों की चर्चाएं की हैं, परन्तु हमारे यहाँ, जिस भी काल में वैज्ञानिक जनों ने, अन्वेषण और अनुसन्धान किया है, वह बड़ा विचित्र रहा है। एक समय ऐसा इन्होंने वर्णन कराया, कि आधुनिक काल का जो विज्ञानवेत्ता है, वह यह कहता है कि आधुनिक वैज्ञानिकों ने नाना जीवन शक्ति के ऊपर अन्वेषण किया है, और वह माना है कि ये जीवन शक्ति कहाँ तक निहित है। परन्तु वह जहाँ तक जान पाए हैं, वहाँ तक वह अपने में यह निर्णय देते हैं, कि विज्ञान ने बड़ी उपलब्धियाँ की हैं, और जीवन सत्ता को जानने का प्रयास किया है और जाना है। परन्तु जब वेद का मन्त्र इस सम्बन्ध में कुछ विवेचना देने लगता है, तो वेद का मन्त्र यह कहता है विज्ञान के सम्बन्ध में रोहिणी रूद्रं प्रहा व्रतं देवाः वासञ्चौ शरणास्ते बेटा! वेद का मन्त्र यह कहता है कि जहाँ अग्नि है, और वहीं आपो है और जहाँ आपो और अग्नि है वहीं वायु है और जहाँ वायु और अग्नि हैं वहीं पार्थिवतत्व हैं और जहाँ यह पार्थिवतत्व है और आपों है और अग्नि है और वायु है वहीं एक अन्तरिक्ष की प्रतिभा कहलाती है। तो जहाँ यह पञ्चमहाभूत होंगे, वहीं जीवन सत्ता होगीं। परन्तु वेद का मन्त्र यह कहता है, वेद का ऋषि भी यही उद्गीत गा रहा है, एक एक अणु और परमाणु में जीवन सत्ता को वो स्वीकार कर रहा है। तो मेरे पुत्रों! हमारा वेदमन्त्र मानो यह कहता है हे मानव! तू संसार की कोई वस्तु ऐसी नहीं है जहाँ उस परमपिता परमात्मा की चेतना, अपना क्रियाकलाप न कर रही हो। जैसे माला में मानो देखो, नाना मनके हैं और एक सूत्र में वह पिरोए हुई हैं। वह एक सूत्र में पिरोया हुआ, मानो वह माला बनी हुई है, इसी प्रकार यहाँ, एक परमाणु है, उस परमाणु के अन्तर्गत नाना जीवाणु अपने क्रियाकलाप कर रहे हैं। जीवाणु के साथ साथ एक विशेष परमाणु होता है, तो वह एक माला बनी हुई रहती है। जैसे माला का हम उदाहरण देते रहते हैं, इसी प्रकार यह

संसार एक प्रकार की माला के सदृश्य माना गया है।

तो आज हमें विचार विनिमय करना चाहिए, हम अपने में कुछ अन्वेषण करते चले जाएं, कि संसार में कोई वस्तु संसार की ऐसी नहीं है जहाँ वह चेतना अपना क्रियाकलाप न कर रही हो, और मानव चेतना के साथ जीवन सत्ता है। तो जीवन जहाँ मानवब्रहे पांचों पञ्चमहाभूत हैं, वही एक जीवन की धारा कहलाती है, चाहे वह समुद्रों के आंगन में हो, चाहे यह पृथ्वी मण्डल पर हो, चाहे वह किसी भी लोक लोकान्तरों में क्यों न हो, परन्तु प्राणी अपने क्रिया कलाप में लगा हुआ है और अपने में रत्त हो रहा है।

तो विचार विनिमय क्या? मुनिवरों! देखो, ये जीवन की धाराएं। आज मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। ये तो विज्ञान का युग है, विज्ञान की प्रतिभा है, बेटा! मैंने तुम्हें कई काल में ये निर्णय देते हुए कहा था। जब मैं किसी काल में देवपूजा के सम्बन्ध में, अपनी विवेचना हम देते रहते हैं, तो मानो जड़ और चेतन दो प्रकार के देवता कहलाते हैं। उन देवताओं में मानो देखो, एक महान् सत्ता कहलाती है, उसमें एक महानता की ज्योति जागरुक रहती है। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से विचार विनिमय करता रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, आज हम देखो, कुछ विचार विनिमय करेंगे, जिन विचारों के ऊपर, परम्परागतों में भी हमने बहुत से विचार तुम्हें प्रदान किए हैं। मानो देखो, कई काल हुआ जब बेटा! हमने कहा था कि वायु हमारा पितर कहलाता है। हमारे यहाँ पञ्चयागों का जो एक क्रियाकलाप है, ये ऋषि मुनियों ने बेटा! अनुसन्धान करने के पश्चात्, ये पांच प्रकार के यागों का चलन, हमारे प्रायः वैदिक साहित्य में आता रहा है। पांच प्रकार का याग कौन सा है? सबसे प्रथम ब्रह्मयाग कहलाता है, जहाँ ब्रह्म की धारा निहित रहती है। उसके पश्चात् देवपूजा कहलाता है। देवपूजा का अभिप्राय यह है हमारे यहाँ जो परम्परागतों से बेटा! पूजा के सम्बन्ध में, भिन्न भिन प्रकार की धाराएं, मानव के समीप नृत्य करती रही है, पूजा का अभिप्राय अपने अपने रूपों में मानो उसका निरूपण किया है। हमारे यहाँ देवपूजा का अभिप्राय यह है कि हम, अपने में कटिबद्ध हो करके, नतमस्तक हो जाएं, और मस्तक को मानो उसमें, न्यौदा में परणित करते चले जाएं। मेरे प्यारे! देखो, यहाँ ऐसा नहीं है वास्तव में, यह विचारा गया है कि

हमारे यहाँ जो देवपूजा का अभिप्राय है, पूजा कहते हैं जब अन्तिम छोर पर, मानव जाता है। पूजा का अर्थ यही है कि जिस वस्तु को हम जानना चाहते हैं। उसका सदुपयोग किया जाएं और उस सदुपयोग का नाम ही उसकी पूजा कहलाई जाती है। मेरे प्यारे! जैसे हम अग्नि की पूजा करना चाहते हैं, तो अग्नि की पूजा का अभिप्राय यह है कि हम अपने गृह में, अपने आसन पर मानो देखो, हमारे यहां याग करना, सुगन्ध लेना और उससे वायुमण्डल को पवित्र बनाना है। मानो देखो, वह उसकी पूजा हो गई।

महर्षि सोमतिति का अनुष्ठान

मुझे स्मरण आता रहता है एक समय सोमतिती मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान थे। तो सोमतिती मुनि महाराज मानो देखो, उनके हृदय में, यह जिज्ञासा जागरूक हुई, कि मैं तपस्वी बनूं। तो वह तप करने के लिए, भयंकर वन में चले गए। तप का अभिप्राय क्या है? तप भी उसे ही कहते हैं इन्द्रियों का सदुपयोग करना, उनके विषयों को एकत्रित करके उनको जानने का नाम तप कहा जाता है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, वह अप्रतम् ब्रह्म जब इन्द्रियों का शोधन करने के लिए, मन को पवित्र बनाने के लिए साधना में रत्त होने लगे, तो सोमतिती महाराज ने बेटा! भयंकर वनों में कुछ साकल्य एकत्रित किया और साकल्य एकत्रित करके, उसको अग्नि में परणित करने लगे। मेरे प्यारे! देखो, अग्नि से ही वायु मण्डल का शोधन किया जाता है, और यह वाणी भिन्न भिन्न प्रकार की, अग्नि, भिन्न भिन्न प्रकार को बन करके रहती है। काष्ठों में जो अग्नि रहती है उस अग्नि में जितना साकल्य पदार्थ तुम प्रदान करोगे, उतना ही वायुमण्डल में वायु उनके वातावरण में महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है।

मेरे प्यारे! सोमतिती मुनि ने भयंकर बनों में बेटा! सुगन्ध पदार्थों को ले करके याग करना प्रारम्भ किया, तो वायु मंगलं ब्रह्मे तो जब वह याग करने लगे, तो वह छह माह हो गए थे, वह नित्यप्रति याग करते थे, वायुमण्डल बड़ा पवित्र हो गया, मन की प्रवृत्ति मानो रजोगुण से सतोगुण के आंगन में प्रवेश कर गई। और मुनिवरों! तीनों गुणों से

किसी किसी काल में उपरामता को प्राप्त हो जाती थीं। तो मुनिवरों! देखो, जब वह याग कर रहे थे छह माह हो गए, तो एक समय बेटा! कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि अटूटी मुनि महाराज भ्रमण करते हुए बेटा! उनके समीप आ गए थे। महात्मा अटूटी ने कहा ऋषिवर सोमतिती! तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा प्रभु! मैं याग कर रहा हूँ, इस वायुमण्डल को पवित्र बनाने के लिए, मुझे इस वायुमण्डल में बाह्य जगत् से परमाणुओं को लेना है, और परमाणुओं को ही देना है, आदान प्रदान में लगा हुआ हूँ। मानो देखो, जब मैं वायुमण्डल के परमाणुओं को शुद्ध करूंगा तो मेरे श्वासों में जो परमाणु आएगा, वह भी स्वच्छ बन करके, मेरे अन्तःकरण को पवित्र बनाएगा, ऐसा मानो देखो, ऋषि सोमतिती ने महात्मा अटूटी से ये कहा। उन्होंने कहा याग का अभिप्राय क्या है? याग को, तो अग्नि को तो देवपूजा के रूप में हम परणित करते रहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, महात्मा सोमतिती ने कहा, कि क्या तुमने वेदों का अध्ययन नहीं किया, यह मानो देखो, मैं जो क्रियाकलाप कर रहा हूँ इसके ऊपर तुम विचार विनिमय करो। बेटा! प्रातःकाल जब हुआ, तो वह याग को प्रारम्भ करने लगे, जब याग प्रारम्भ किया, तो कर्मकाण्ड की आभा में नियुक्त हो गए।

मेरे प्यारे! देखो, कर्मकाण्ड क्या, वह याग की प्रदक्षिणा मानो जल से संचालित होने लगी, आपों में रत्त होने लगी। तो उन्होंने कहा हे भगवन! यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा यह सर्वांग पूजा कर रहा हूँ, उसे सर्वांग पूजा कहा हैं। उन्होंने कहा प्रभु! उसको नहीं जान पाए। उन्होंने कहा कि मैं जल की प्रदक्षिणा कर रहा हूँ। देखो, यह तो तुम्हें प्रतीत होगा कि मानो देखो, यह जो आपो है, ये जैसे परमपिता परमात्मा ने, जब सृष्टि की रचना की तो मानो देखो, पृथ्वी की जब रचना हो गई, तो पृथ्वी के तीन आंगन में, तीन विभागों में देखो, परमपिता परमात्मा ने जल को अर्पित किया है, मानो प्रदान किया है। वह प्रदक्षिणा के रूप में, आपो अपने में रत्त हो रहा है। तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा प्रिय, यथार्थ है। उन्होंने कहा कि इसी स्वरूप को ले करके, माता के गर्भस्थल में, जब मैं था। तो मेरी माता यह वर्णन कराती रहती थी, कि हे बालक! हे ब्रह्मचारी! तू अध्ययन कर रहा है, तू सर्वांग अध्ययन करना। तो मैं माता से यह कहा

करता था, कि हे माता! यह सर्वांग अध्ययन क्या होता है? उन्होंने कहा सर्वांग अध्ययन वह होता है, जैसे माता के गर्भस्थल में हे बालक! जब तू मेरे गर्भाशय में विद्यमान था तो मानो तेरे तीन विभाग में जलाशय भरा हुआ था, और वह जलाशय में ही तू पनप रहा था। इसीलिए वेद का मन्त्र कहता है, अदिति मानो देखो, अदिति कहता है, सरस्वती कहता है और वही कहीं अनुमते कहता है, वही वेदमन्त्र जब यह कहता है। तो वह कहता है कि यह सरस्वती वाला जल है, यह मानो माता के गर्भस्थल में जो जलाशय है, वही तो पनपाता है। इसीलिए वायुमण्डल या पनपाना यह सब जलाशय की ही प्रतिभा कहलाती है। तो मानो देखो, इस प्रकार जब ऋषि यह वर्णन कर रहे थे, तो महात्मा अटूटी ने कहा प्रभु! यह मेरे विचार में तो यह वाक् आया नहीं। उन्होंने कहा तो जानो, कि दक्षिण दिशा में, दक्षिणायन में इन्द्र रहता है। यह तो तुम्हें प्रतीत है। इन्द्र नाम वायु का है, वही मानो देखो, सूक्ष्म रूप में अदिति वही कहलाता है। वही और सूक्ष्म रूप में आदित्य कहलाता है और वहीं और सूक्ष्म रूप में मानो देखो, द्यौ कहलाता है और वह द्यौ मानो देखो, दक्षिणायन से गमन करता हुआ, वह उत्तरायण में जाता है और उत्तरायण से गमन करके वही पश्चिम अन्न का भंडार बन करके रहता है, और वही जब अन्न का भण्डार बन गया, तो वही सरस्वती के रूप में रहता है, ज्ञान का भण्डार उसको प्राप्त हो जाता है और ज्ञान से विवेक होता है और विवेक से मानो परमपिता परमात्मा की अनुपम पगडण्डी को ग्रहण करता है। तो मेरे प्यारे! तो जब ऋषि ने यह वर्णन कराया, जब ऋषि ने ये वर्णन ब्रह्मे ऋषि ने कहा हे भगवन्! अटूटी! मेरी माता ऐसा कहा करती है मानो देखो, मैं माता की उस आज्ञा का एक पात्र बना हुआ हूँ और मैं यह स्वीकार करता हूँ कि प्रायः माता का अनुभव बड़ा विचित्र है, क्योंकि मेरी माता सदैव वेदों का अध्ययन करती रहती थी और तपस्या में तल्लीन रहती और वह अपने गर्भाशय में रहने वाली आत्मा से आत्मा का मिलान करके, वार्त्ता प्रगट करती रहती

थी। तो मेरे प्यारे! महात्मा अटूटी मौन हो गए।

जातवेद अग्नि

उन्होंने कहा प्रभु! यह विचार तो मेरे हृदय में समाहित हुआ है, परन्तु देखो, मैं यह और जानना चाहता हूँ, कि सर्वांग पूजा के रूप को मैं नहीं जाना हूँ। उन्होंने कहा यह जल की पूजा हो गई है, और दिशाओं की पूजा हो गई है। पूजा का अभिप्राय ये है कि हम उनसे कुछ लेते हैं उनसे कुछ विज्ञान में परणित होते हैं। जिससे वायुमण्डल में पवित्रता आ जाए। परन्तु उसके पश्चात् देखो, समिधाओं में, काष्ठ में जो अग्नि विद्यमान है, उस अग्नि का बाह्य जगत वाली अग्नि से समन्वय करते हैं, और समन्वय करके जब वह अग्नि उद्बुद्ध हो जाती है वह देखो, जातवेद अग्नि कहलाती है। वह अग्नि मानो जब उद्बुद्ध हो जाती है। तो उस अग्नि में हम, क्योंकि वह अग्नि भेदन करती है, वह जल का भी भेदन करती है, वह मानो प्रत्येक पदार्थों का भेदन करती रहती है। चार प्रकार के साकल्यों के द्वारा, हम अग्न्याधान करते हैं। सबसे प्रथम मानो देखो, जो रूग्ण, रोगों को नाश करने वाली हो, रूग्ण का विनाश करने वाली हो, रूग्ण हमारे शरीरों में नहीं रहने चाहिए। उसके पश्चात मुनिवरों! देखो, तृतीय हमारा जो पौष्टिक है, वह पौष्टिक परमाणु, पौष्टिक पदार्थों का तुम अग्नि में प्रदान करोगे, तो उसका वह भेदन कर देगी, और भेदन करके मानो देखो, वह पौष्टिकता को प्रदान करती है। उसके पश्चात् सुगन्धित पदार्थ, मानो वह जो सुगन्धि देने वाले, जो पदार्थ है, वह मानो देखो, दुर्गन्धता को समाप्त करते हैं, और सुगन्ध को प्रदान करने लगते हैं। मानो देखो, यह तीन प्रकार का, जो साकल्य अग्नि में प्रदान किया जाता है, वह जो अग्नयाधान हो रहा है, अग्नि में उसे हम प्रदान कर रहे हैं, अग्नि ही संसार के प्रत्येक पदार्थ का भेदन कर देती है। मानो देखो, यही अग्नि है जो काष्ठों से बाह्य जगत बन करके ये तरगें बन करके जाती है। यही शब्दों के साथ में, मानो देखो, और भी शब्दों के साथ में शब्द के अपने ऊपर विश्राम करा करके, वह वायुमण्डल में प्रसारण करा देती है, और जब यह वायुमण्डल में चला जाता है, तो वायुमण्डल में मानो देखो, अणु और परमाणु के रूप में परणित

होता है। परणित हो करके यही द्यौ लोक में प्राप्त हो जाता है। द्यौ में प्रवेश कर जाता है। जब यह द्यौ मण्डल में प्रवेश करता है तो मुनिवरों! देखो, द्यौ से ये नाना प्रकार के, जो लोक लोकान्तर है, अथवा सूर्य जैसा मण्डल है, यह ऊर्ज्वा को ले करके, द्यौ से मुनिवरों! देखो, प्रकाश देता रहता है। ये संसार को ऊर्ज्वा में परणित कर देता है और यह प्रकाश देता रहता है।

तो मुनिवरों! देखो, विचार क्या, सोमतिती मुनि महाराज ने यह कहा, महात्मा अटूटी से कि महाराज! अब आपने जाना है मेरे मन्तव्य को, कि मैं याग कर रहा हूँ और मैं याग क्या मैं पूजा कर रहा हूँ। पूजा का अभिप्राय ये है कि उसके विशुद्ध रूप को जानना मेरी एक पूजा कहलाती है। मानो देखो, पूजा का अभिप्राय ये है कि अग्नि को मैं वह पदार्थ देना चाहता हूँ, जिससे यह वायुमण्डल पवित्र हो जाए, और विज्ञान की धाराओं में, वह परमाणु अपने में सार्थक बन करके रहे। तो मुनिवरों! देखो, महात्मा अटूटी ने वह वाक् भी स्वीकार कर लिया, परन्तु पुनः उन्होंने यह कहा कि महाराज! यह सर्वांग पूजा कैसे मैं स्वीकार करूं? उन्होंने कहा सम्भवे अग्नि का जहाँ विश्लेषण आता है कि अग्नि शब्द को ले करके, अन्तरिक्ष में परणित करा देती है, मानो देखो, वहाँ वायु भी उसमें सहयोगी बनता है, क्योंकि वायु ही अग्नि के परमाणुओं को गति देती है। अग्नि ही मानो देखो, शब्द को ऊर्ध्वा में ले जाती है। यह वायु प्राण सत्ता को प्रदान करने वाली है। वेद का आचार्य यह कहता है वायं ब्रह्म प्राणः वृत्ति देवाः वायु ही तो प्राण देता है और ये प्राणसत्ता को पा करके मानव नाना प्रकार की आभा में नियुक्त हो जाता है। तो मेरे पुत्रों! विचार क्या? मैं बहुत गम्भीर वाक्यों में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार ये देना चाहता हूँ मुनिवरों! देखो, यह आपं ब्रह्म लोकां ब्रहे संस्ताः वेद का आचार्य यह निर्णय देने लगा, कि यह वायु ही तो मानो हमारा पितर कहलाता है, और यह देवता भी कहलाता है। इसकी देवपूजा हमें करनी है, क्या मानो देखो, वायु ही इस संसार की आभा में नियुक्त रहता है मानो परमाणुओं को गति देता है।

वायु मुनिवरों! देखो, भिन्न प्रकार की कहलाती है। एक वायु वह कहलाती है जो वेग से भ्रमण कर रही है, मानो उसमें उसमें शीतल के परमाणु प्रवेश कर गएं तो शीतल

बन गई है। ऊष्णा परमाणु विशेष गति कर गएं हैं ऊष्णा बन गई है। **वही ऊष्णा बन करके मानव के प्राणों की भी घातक बन जाती है। अपने प्राण को भी अपने में संचय करने लगती है।** वही वायु है, जो बहुत धीमे धीमे गति करती है, और मानव यह कहता है कि आज तो मानो वायु वेग में गति नहीं कर रही है। परन्तु वह अपने में गति कर रही है गति न करें तो मानव श्वास भी नहीं ले पा सकता। मानो देखो, वह अप्रतम् ब्रह्म लोकाम् वह भी एक वायु है। एक वायु वह कहलाती है, जिस वायु को मानो देखो, प्राण के द्वारा अपने में संचित्त करने लगता है। प्राणायाम करता है, और प्राण के द्वारा, मुनिवरों! देखो, वह नाना प्रकार के प्राण के रूपों को जानने लगता है। वह मानो देखो, वायु ही प्राणों के रूप में रहती है जैसे खेचरी मुद्रा है, रेचक है, पूरक है, कुम्भक है, ये सब प्राण की प्रतिक्रिया कहलाती है।

तो तुम्हें मैंने बहुत पुरातन काल में एक वाक् प्रगट करते हुए कहा था, बेटा! वह त्रेता काल का वाक् है। भगवान् राम मुनिवरों! देखो, जब रावण से संग्राम करने के लिए, समुद्र के तट पर मानो अपनी सेना नियुक्त की तो उन्होंने बाली के पुत्र अंगद को यह कहा कि जाओ तुम दूत बन करके जाओ। क्योंकि देखो, एक राजा को राजा के समीप जा करके ऐसा औषध देना चाहिए। जिससे उसका विचार परिवर्तन हो जाए, तो बहुत ही प्रियता है। उसके राष्ट्र की रक्षा हो जाएगी और दूसरे प्राणियों की रक्षा होगी। तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने अंगद को कहा तुम जाओ, रावण के द्वार पर क्योंकि वह राजा है, राजा भी है, और बुद्धिमान भी है। तुम उनके समीप जा करके याचना करो, कि तुम राम का और तुम्हारा दोनों का विलय हो जाए, तो बहुत ही प्रियता है। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि महाराजा! अंगद ने वहाँ से गमन किया और गमन करते समय राम से यह कहा कि प्रभु! मैं समन्वय कैसे करवाऊं, कैसे कर सकता हूँ मुझे कोई आप आज्ञा तो दीजिए। उन्होंने कहा कि समन्वय यही है, कि वह सीता को मुझे प्रदान कर दें, और तुम अपनी लंका का राष्ट्र मानो सुचारू रूप से करो और कोई किसी प्रकार का विवादनीय विषय नहीं होना चाहिए। उन्होंने ये वाक् स्वीकार कर लिया, मेरे प्यारे! अंगद जी बाली पुत्र भ्रमण करते हुए, लंका में पहुंचे। लंका में देखो, राजा रावण अपने

न्यायालय में विराजमान थे। मानो अपनी राजस्थली पर विद्यमान थे। मुनिवरों! देखो, एक आसन पर मेघनाद जी विद्यमान हैं, एक आसन पर देखो, वह कुम्भकरण जी विद्यमान हैं, सर्वत्र राष्ट्र के जो ऊर्ध्वा में कर्मवेत्ता है वे सब विद्यमान हैं। उन्होंने कहा रावण ने कहा यह कौन है? द्वारम् ब्रह्मे द्वारपाल ने उनको वृत्ति कर दिया कि मैं आज्ञा ले आऊं। तो वह द्वारपाल पहुंचे, द्वारपाल से रावण कहते हैं यह कौन है? उन्होंने कहा यह बाली पुत्र मेघनाथ हैं उन्होंने कहा यहाँ कैसे इनका पदार्पण हुआ? उन्होंने कहा आपसे मिलन करना चाहते हैं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम! मानो देखो, वह राज स्थलियों पर, मुनिवरों! देखो, वह सभा में पहुंचे।

राज सभा में जब पहुंचे, तो उन्होंने कहा कहो बाली पुत्र! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ है? मैंने तो यह श्रवण किया है कि राम की सेना में तुम सेनापति बन गएं हो। उन्होंने कहा प्रभु! जो आपने श्रवण किया है वह यथार्थ है। उन्होंने कहा तो तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? उन्होंने कहा मैं राम की सेना का, मानो देखो, राम की आकृतियों से मैं आज आपके यहाँ देखो, राजदूत बन करके आया हूँ और मेरी इच्छा ये है कि आप देखो, राम से विलय करके, अपने में समन्वय कर लें, तो बहुत ही प्रियता होगी, यह लंका का वृत देखो, लंका एक सुसज्जित रह जाएगी।

मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि तुम दूत बन करके आए हो। उन्होंने कहा भगवन! अवश्य, मैं दूत बन करके आया हूँ क्योंकि राजा का कर्तव्य है कि एक दूत बन करके भी आना चाहिए, जिससे दोनों का विलय हो जाए या दोनों में समन्वय की प्रतिभा जागरूक हो जाए। रावण ने कहा कि मैं राम से अपना किसी भी काल में विलय करना नहीं चाहता, मैं उनसे समन्वय नहीं चाहता हूँ। उन्होंने कहा प्रभु! कारण? उन्होंने कहा कारण यह है कि वह मेरे समीप कोई न तो बलवान है, न वह वैज्ञानिक इतना है, मैं मानो वह सूक्ष्म समय में नष्ट न करके, मैं अपने राष्ट्र का पालन करूंगा। जब यह वाक् उन्होंने प्रगट किया, तो सम्भूति ब्रह्मा मेरे प्यारे! वह बोले कि नहीं भगवन्! ऐसा अभिमान नही करना चाहिए, एक राजा को अभिमान में नहीं आना चाहिए, क्योंकि हो सकता है कि द्वितीय प्राणी तुम पर जो आक्रमण करने वाला है, उनमें कितना बल है इसको प्रभु जानता है,

इसको तुम नहीं जानते। उन्होंने कहा कि हम जानते हैं कि हममें बहुत बल है, हमारे यहाँ विज्ञान है, हम आकाश मार्ग में, अन्तरिक्ष में भी संग्राम करने वाले हैं, पृथ्वी पर भी संग्राम करने वाले हैं, समुद्रों के गर्भ में भी जा करके हम संग्राम करने वाले हैं। मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने यह वाक् प्रगट किया तो उन्होंने बहुत नम्रता से कहा, नहीं भगवन! देखो, यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने में शुद्ध बुद्धां ब्रह्मे बुद्धि से अपने क्रियाकलापों में तत्पर रहें। क्योंकि संसार में विवाद जितने भी होते हैं वह बड़े भयंकर होते है। मानव के रक्त का जैसे नदी अपने में नीर से प्रणाय रहती है, जलाशय से परिपक्व रहती है, ऐसे ही राजा के राष्ट्र में जब संग्राम होने लगता है, तो प्राणियों का रक्त बहाया जाता है। वह रक्त नही बहाना चाहिए, रक्त में से जो तरंगें बन करके वायु मण्डल में प्रवेश करती है, वायुमण्डल भी दूषित हो जाता है। देखो, वायुमण्डल दूषित होता है और पृथ्वी मण्डल दूषित हो जाता है और मानव की मनोप्रवृत्तियों में अन्तर्द्वन्द्व आ जाता है और वह जो अन्तर्द्वन्द्व होता है वह वर्ण शंकर में परिवर्तित हो जाता है। हे राजन्! तुम्हें यह वाक् मेरा स्वीकार कर लेना चाहिए। उहोंने कहा हे अंगद! तुम्हें यह प्रतीत है, तुम्हारे जो पिता थे बाली वे मेरे मित्र थे, वह इस समय नहीं हैं संसार में, परन्तु यदि वह होते तो तुम्हें यह प्रतीत हो जाता, कि मेरे में कितना बल है। उन्होंने कहा कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि भगवन! तुम में बल बहुत है परन्तु देखो, इस बल का बनता क्या है संसार में? इसका अन्तिम चरण क्या है? बल का उपयोग करना तो बल की पूजा कहलाती है। जैसे वायु में प्राण गति करता है, वायु मानो जब दूषित हो जाती है, तो वही प्राण घातक बन जाती है, परन्तु देखो, वही वायु का जब हम शुद्धिकरण करके उसका उपयोग करते हैं वही वायु हमारे भिन्न भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार मानो बल का सदुपयोग करो और बल तुममें है बहुत प्रियता है, हमें बड़ी प्रसन्नता है, तुम बल के कारण राष्ट्र का पालन करो, राष्ट्र में एक महानता आ जाए, उसमें बल के द्वारा ही चरित्र की स्थापना करो, इससे तुम्हारा चरित्र ऊँचा बन जाए और तुम संसार में छायमान हो जाओ और तुम्हारा साम्राज्य तुम्हारी अच्छाईयों का साम्राज्य संसार में छायमान हो जाए। यदि तुम्हारा जो

क्रिया कलाप है यदि वह हिंसा देखो, हिंसा में निहित रहेगा, हिंसा की प्रवृत्ति में निहित रहेगा, रावण तुम्हें प्रतीत है कि एक राजा का दूसरे की राजकन्या को या दूसरे की राजलक्ष्मी को अपने गृह में लाना यह राष्ट्र के लिए शोभा नहीं देता, यह राष्ट्र के लिए एक अपराध है। यह एक राष्ट्र के लिए एक पामर प्रवृत्ति बनानी है।

रावण को जब यह कहा तो उन्होंने कहा हे मेधम्ब्रहा! तुम्हें यह प्रतीत है, कि तुम किससे वार्त्ता प्रगट कर रहे हो। मैं इस समय राजा हूँ और मैं लंकापति राजा हूँ, इसका पाताल पुरी में भी राष्ट्र है। उन्होंने कहा मैं जानता हूँ मुझे यह प्रतीत है, कि तुम्हारे राष्ट्र में न सूर्य उदय होता है न अस्त होता है। मैं यह जानता हूँ परन्तु जानने के साथ साथ तो मैं यह कह रहा हूँ कि तुम्हारे बल का उपयोग, यथार्थ होना चाहिए और यथार्थ होगा, तो तुम्हारे राष्ट्र में जितनी कन्याए हैं, ये सुरक्षित रहेंगी, और तुम्हारे राष्ट्र में जितना मानव बल है, यह पवित्रवत बना रहेगा।

तो मुनिवरों! देखो, जब ये वाक् उन्होंने प्रगट किया तो रावण ने एक वाक् भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा हे मेघनाथ! तुम पामर हो, तुम मानो देखो, उसकी पूजा कर रहे हो जिसने तुम्हारे पिता को मृत्यु में पहुंचा दिया। तब उन्होंने कहा मेरे पिता तो चले गये, कोई वाक् नहीं, क्योंकि पिता का जाना यथार्थ है, कोई पिता हो या पुत्र हो, या पुत्री हो जिसके चरित्र में भिन्नता आ जाती है, चरित्र भ्रष्ट हो जाता है, उसका संसार में न होना ही प्रियता कहलाती हैं। क्योंकि वह परिवार, वह कुटुम्ब कलंकित हो जाते हैं, उस कलंक से ही तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह कलंकित नहीं होना चाहिए, हमारा गृह कलंकित हो गया था, वह चले गएं कोई वाक् नहीं। परन्तु तुम अपने लिए विचारों कि तुम्हारा क्या बनना है? जो श्रेणी उनकी थी, वह श्रेणी उससे आगे श्रेणी तुम्हारी है। तुम्हारी श्रेणी उससे कई गुणा श्रेणी, ऊर्ध्वा में अब तुम्हारा क्या बनेगा। तुम अपने हृदय में विचारों, जिसकी राज कन्या को तुम अपने गृह में, अपने वाटिका में निहित करके उसके चरित्र को तो तुम नष्ट इसलिए नहीं कर सकते, क्योंकि वह महान् है, वह देवी है, और यदि मानव प्रव्हे यदि तुम यह चाहते हो कि मुझे इतना अधिकार है राम पर, कि तुम सीता माता को मुझे दो और तुम्हारा देखो, उनका कोई विवाद

नहीं रहेगा, इस संसार में। मेरे प्यारे! रावण ने कहा कि हे अंगद! तुम इन वाक्यों को क्यों उच्चारण कर रहे हो? जब मैंने तुम्हें कहा है, देखो, यह अस्त्रों और शस्त्रों का, मेरे यहाँ जो केंद्र है, वह इतना विशाल है क्या देखो, इस पृथ्वी को भी नष्ट कर सकता है। मेरे प्यारे! जब यह वाक् नहीं आया, तो रावण ने कहा मैं बहुत बलवान हूँ। मेरे भुजदंडों बल है, मैं राम से अपना संगतिकरण नहीं करूंगा।

मेरे पुत्रों! देखो, मुझे कुछ ऐसा स्मरण है जब वह वाक् स्वीकार नहीं किया, गया तो मुनिवरों! देखो, अंगद ने, मैं प्राण की चर्चा कर रहा था, उसने अपने पांवों से, नखनों से अप्रतम् देखो, अप्रतम् ब्रह्मा प्राणायाम जो किया उन्होंने सर्वश शरीर का प्राणायाम वह अपनी एक मानो जंघा में आ गया और उन्होंने कहा रावण! यदि तुम बलवान हो तो तुम मेरे इस पग को तुम मानो देखो, एक स्थान से दूसरे स्थान पर कर दो, तो मैं माता सीता को त्याग करके चला जाऊंगा। और राम को ले करके, अयोध्या चला जाऊंगा। तब मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा अप्रतप्रव्हे देखो, वह जब प्राणायाम करके जब अपनी जंघा में प्राण को ला करके स्थिर हो गए, प्राणायाम में उन्होंने खेचरी प्राणायाम किया और प्राणायाम में खेंचरी करके उन्होंने अपनेपन में सर्वश प्राण को ला करके वह बोले कि आओ, कोई बलवान् है। तो देखो, मेघनाथ जी आए, मेधम् ब्रह्माः वृतम्वही वृताम मुनिवरों! देखो, कौन अंगद ब्रह्मा अंगदो सम्भवा लोकाम् वाचप्रहे लोकम् ब्रह्मः लोकस्वताः मुनिवरों! देखो, अंगद जी ने कहा सम्भूति ब्रह्माः वेदाम् ब्रह्मे लोकाम् वरुण अस्वति सुप्रजा प्राण मुनिवरों! देखो, वह मेघम् प्रमाणऽस्वति सुप्रजाः उन्होंने कहा तुम्हें यह प्रतीत है कि हे रावण! मेरा नामोकरण दो नामों से उच्चारण कया जाता है एक मेरा नाम अंगद के नामों से परणित किया जाता है, एक मेघनाद के नाम से वर्णन किया जाता हैं, मेरे दो नामोकरण हैं मेरी माता मुझे अंगद कहती थी, और पिता मुझे अप्रतं ब्रह्मः देखो, अस्वताम् व्रहे वृणास्तु रूद्राः दोनों रूपों से मेरा नाम अंगद है। तो एक मेघनाथ के नामों से उच्चारण किया जाता है। तेरा भी पुत्र मेघनाथ विद्यमान है, आज मेघनाथ, मेघनाथ दोनों का संग्राम होगा। मेरे प्यारे! जब उन्होंने अश्वतम् ब्रहे मुनिवरों! देखो, मेघनाथ का और उससे ऊर्ध्वा में जो मानो देखो, वलिष्ठ थे, तो अपने

को यह जानते हुए अंगद के इस पग को मानो दूरी जब करने लगे, तो वह दूरी नहीं हुआ। तो अंगद का मंगलव्रहे देखो, मेघनाथ जी आए, अब मेघनाथ जी भी अपने बल को अस्वत् करने लगे, तो उनसे उनका पग नहीं हटा, एक स्थली से दूसरी स्थली पर नहीं पहुंचा। तो मुनिवरों! देखो, वह सब जितने बलवान थे सब अपने में मौन हो गए। अंत में देखो, रावण ने विचारा, यह कैसा अद्भुत प्राणी है, यह कैसा अद्भुत मानो बाली पुत्र है यह मेघनाथ कितना बलिष्ठ प्रहा है, यह अंगद के नामों से वर्णन भी हम तो इसको मेघनाथ ही उच्चारण करते रहे हैं। परन्तु देखो, यह तो अंगदाम् व्रहे यह अंगद के नामों से जो माता उच्चारण करती थी, उनकी मानो जिससे इन्होंने प्राण की विद्या ले ली है। उस प्राण की विद्या के आश्रित हो करके मैं मानो देखो, इसके पग को दूरी करूंगा। जब वह वहाँ देखो, वह उनके आंगन में आए तो इतने में ही अंगद जी ने कहा भगवन्! मंगलम् देखो, अपने पग को अपने आंगन में लाए, और प्राण को ज्यों का त्यों निश्चय करके बोले, रावण! आप इस योग्य क्यों बनते हो कि मेरे पगों को तुम स्पर्श करते हो। तुम राम के पगों को स्पर्श करो, जिससे तुम्हारा उद्धार हो जाए, तुम्हारी लंका सुरक्षित रहे। तो उस समय उन्होंने कहा हे बालि पुत्र! यहाँ से, अपने स्वामी के पार कर चले जाओ, अन्यथा तुम्हारा हमारा संग्राम हो जाएगा। उन्होंने कहा बहुत प्रिय भगवन्!

मैं उच्चारण यह कर रहा था क्या मुनिवरों! प्राण की कितनी विशेषता होती है, यह प्राण अपने में तो मेरे प्यारे! प्राणायाम करते रहे हैं। वह जो बालि पुत्र अंगद वह प्राण बारह बारह वर्षों तक प्राणों का अध्ययन करते रहे। तो वह गए इसलिए देखो, उनका नाम अंगद और मेघनाथ दोनों कहलाता था। दोनों के नामों से उद्गीत गाते रहते थे, मानो उच्चारण करते रहते थे। मुनिवरों! देखो, यह आवश्यक नहीं है कि रावण के पुत्र का नाम मेघनाथ हैं, तो मेघनाथ कोई हो नहीं सकता। यह तो आवश्यक नहीं है, मुनिवरों! देखो, वह दोनों नामों से उच्चारण किया जाता था। उनको माता मेघनाथ कहती, पिता उन्हें और जो कुटुम्ब था, वह उन्हें अंगद के नाम से वर्णन करता रहता था। राम भी उन्हें अंगद ही कहते थे। तो मैं विचार दे रहा था क्या यह प्राणसत्ता है, इस प्राण सत्ता

को तुम जानने का प्रयास करो, यह प्राण की महानता है, तो इसीलिए वायु हमें प्राण देता है, यह वायु देवता कहलाता है। तो ऋषि कहता है, कौन मेरे प्यारे! सोमतिति अप्रतम ब्रह्मा वाचो देवाः महात्मा अटूटी से ऋषि कहते हैं कि हे भगवन्! मैं सर्वांग पूजा कर रहा हूँ। सर्वांग पूजा को चर्चा केवल वायु तक आई है। कल मुझे देखो, वायु की प्राण की विवेचना कल और की जाएगी।

आज का विचार यह क्या कह रहा है, हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम मुनिवरों! उन्हें देखो, सर्वांग पूजा में रत्त हो जाएं। यह आज का विचार अब हमारा समाप्त होने जा रहा है, कल समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं प्रगट करूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन।

१३ 08 12 1985 पुष्प 54 55 जीवन चर्या का एक स्रोत याग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव की परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप माने गएं हैं। क्योंकि जितना भी यह संसार रूपी याग हो रहा है। मानो इस परमपिता परमात्मा का यह आयतन माना गया है। चाहे वह विज्ञान के रूप में हो, चाहे वह यागों के रूप में हो, और भी भिन्न भिन्न प्रकार का जो क्रियाकलाप हो रहा है। मानो वह सर्वत्रता में ओत प्रोत है। वह यज्ञोमयी स्वरूप माने गएं हैं। क्योंकि जितना भी संसार का सुकर्म है। सु क्रियाकलाप है। मानो उससे ही यज्ञों के रूपों में एक रत्त होता रहा है। ओर वे परमपिता परमात्मा का आयतन है, अथवा वह उसका गृह है। वह उसमें वास कर रहा है। तो इसीलिए हमारा वेद का मन्त्र यागों के सम्बन्ध में बहुत ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ता रहा है। मेरे प्यारे! महानन्द जी मुझे भिन्न भिन्न प्रकार की प्रेरणा देते रहते हैं। आज भी इनकी प्रेरणा का एक स्रोत मेरे समीप आ रहा है। क्या याग के सम्बन्ध में कुछ विचार विनिमय होना चाहिए। हमने इस याग के सम्बन्ध में बहुत से

विचार दिए हैं और नित्यप्रति कोई न कोई विचार मानो याग के सम्बन्ध में प्रायः आता रहता है।

जीवन चर्या का एक स्रोत याग

तो सबसे प्रथम मानव की जीवन चर्या का एक स्रोत याग माना गया है। क्योंकि बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों में मानव याग की बड़ी विशिष्ठता आती रही है। तो आज का हमारा वेदमन्त्र याग के सम्बन्ध में बहुत ऊँची उड़ाने उड़ता रहा है और यह वेदमन्त्र कहता है, यागां भवि वर्णा स्वस्ति मेरे प्यारे! देखो, याग एक स्वस्ति है, वह स्वस्ति का देने वाला है। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, राष्ट्र में किसी प्रकार की भी मानो क्रान्ति आ जाती तो राजा याग करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है। जब द्वापर के काल में इन्द्रप्रस्थ का निर्माण हुआ तो निर्माण के पश्चात एक समय मानो देखो, पाण्डु पुत्र विराजमान थे, तो पाण्डु पुत्रों ने यह विचारा कि इन्द्रप्रस्थ में एक याग होना चाहिए। महाराजा युधिष्ठर अपनी स्थली पर विद्यमान हैं। प्रातःकाल का समय है। तो मुनिवरों! देखो, महाराजा कृपाचार्य और द्रोणाचार्य और ब्रह्मचारी श्वेतकेतु पितामह भीष्म जिनको कहा जाता है। राष्ट्रपिता के नामों से उनकी मानो देखो, शब्दों में देखो, ध्वनियां होती रहती थीं और भगवान कृष्ण और भी नाना बुद्धिमान जैसे महर्षि व्यास मुनि महाराज तो मुनिवरों! देखो, सब अपनी अपनी स्थली पर विद्यमान थे।

राजेश्वरी याग

मुनिवरों! प्रातःकालीन यह विचार आया महाराजा युधिष्ठर ने कहा कि हे भगवन! तुम सब याज्ञिक पुरूष हो, तुम मानो किन्हीं न किन्हीं रूपों में याग करते रहते हो, मेरी इच्छा ऐसी है कि इस इन्द्रप्रस्थ में एक राजेश्वरी याग की मेरी इच्छा है। तुम अपने अपने विचारों को व्यक्त करो कि होना चाहिए या नहीं मेरे प्यारे! देखो, इसमें महा योगप्रहा भगवान कृष्ण ने यह कहा कि तुम्हारे हृदय में यह राजन्! याग की प्रेरणा कहाँ से उत्पन्न हुई है? तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा कि यह याग की जो प्रेरणा है, यह हमारे अन्तःकरण से उत्पन्न होती है। क्योंकि यह जो अन्तःकरण है, यह भी एक

प्रकार का याग है और वह बाह्य याग की हमें प्रेरणा दे रहा है। मेरे प्यारे! देखो, जब उन्हें उत्तर प्राप्त हो गया उन्होंने कहा यह जो राजेश्वरी याग होते हैं। यह वह राजा करते हैं, जो राजा इस संसार को पृथ्वी मण्डल पर जितने राजा होते हैं। उन सबको जब विजय कर लेते हैं। चाहे वह अस्त्रों शस्त्रों के द्वारा विजय होते हों, चाहे वह विचारों से विजयी होते हों, परन्तु उस काल में यह याग का आयोजन किया जाता है। राजेश्वरी याग का यह जो क्रियाकलाप है, अथवा यह जो उसका कर्मकाण्ड है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा बहुत प्रिय भगवन! कोई राजा ऐसा नही हैं, इस पृथ्वी पर जो मानो यह स्वीकार न करे कि याग न होना चाहिए। उनकी सदैव यही इच्छा है, क्या एक याग होना चाहिए। राजेश्वरी याग में कोई ऐसा प्रोहतत्व नही हैं।

राजेश्वरी याग के लिए विचार विमर्श

तो मेरे प्यारे! जब यह उस समय यह वाक् कहा तो भगवान कृष्णा ने कहा तो बोलो क्या हे भीष्म! पितामह भीष्म! उद्गीत गाओ कि यह क्या कहते हैं, तुम्हारे पौत्र मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि भई! कि यह जो अपना एक पारिवारिक समूह जीवन है। उनसे भी इस वाक् को हम स्वीकार करें मेरे प्यारे! देखो, दुर्योधन इत्यादि सभी इन्द्रप्रस्थ में विराजमान थे, उन्होंने सबकी एक गोष्ठियां प्रारम्भ की और महाराजा युधिष्ठर ने कहा भई! मेरी इच्छा ऐसी है कि हम एक याग करना चाहते हैं राजेश्वरी याग होना चाहिए मेरे प्यारे! देखो, दुर्योधन ने अपने कण्ठ मुख से उसकी सराहना की मानो सभी ने उसकी सहराना की क्या हमे याग करना चाहिए। हमारा बहुत सा वंशलज समाप्त हो गया है। जब से मानो देखो, हमारे यहाँ राजेश्वरी याग नही हुए, वैसे याग तो नित्यप्रति होते रहते हैं। याग तो हम नित्यप्रति क्योंकि यह तो हमारी नित्यप्रति जीवन चर्या का एक स्रोत है। मानो देखो, यह तो हमे प्रायः करना चाहिए, परन्तु राजेश्वरी याग होना है। इसमें हमें बड़ी प्रशंसा है। मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् स्वीकार हो गया सबने बेटा! इसको कृपाचार्य ने और द्रोणाचार्य जी ने सभी ने मुनिवरों! देखो, इसकी अपने हृदय से सहारना की क्या यह विचार बहुत प्रिय है। तो मेरे प्यारे! देखो, भगवान कृष्णा ने भी

इस वाक् को स्वीकार कर लिया परन्तु देखो, उन्होंने यह कहा वाक् तो स्वीकार कर लिया परन्तु यह कहा गया कि हे युधिष्ठर! इसमें कुछ बाधाएं मानो देखो, किसी प्रकार की अब्रहा वेत्तां शचि प्रव्हा कुछ मानो देखो, तुम्हारे राजेश्वरी याग में क्रोधाग्नि भी जागरूक हो सकती है। तुम्हारे पांचों विधाताओं में मन उल्ल्घन नही होना चाहिए, उन्होंने कहा बहुत प्रिय मुनिवरों! देखो, उन्होंने महारानी द्रोपदी से यह कहा कि हमारे यहाँ राजेश्वरी याग होने वाला है। उन्होंने कहा प्रियतम मानो होना चाहिए।

राजेश्वरी याग के लिए निमन्त्रण

मुनिवरों! देखो, यह विचार होते हुए क्योंकि राजेश्वरी याग था उन्होंने बेटा! निमन्त्रण देना प्रारम्भ कर दिया ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया ऋषि मुनियों को भी निमन्त्रित किया तो मुनिवरों! देखो, महर्षि वेदव्यास अपने आसन पर विराजमान थे। वेदव्यास से बोले कि महाराज हमारे यहाँ याग होना चाहिए। मानो तुम्हारी सुमति होनी चाहिए। उन्होंने कहा बहुत प्रिय वेदों का उद्गीत गाने के लिए मैं तत्पर हूँ। मानो जिस प्रकार का भी वेदों का गान गाना हो। मैं उसी प्रकार का याग अवश्य उसी प्रकार के गान में मेरी निष्ठा रहती है। तो मुनिवरों! देखो, यह सबने स्वीकार कर लिया मानो देखो, उसके पश्चात राजा महाराजाओं को निमन्त्रित किया गया राजेश्वरी याग में बेटा! सब राजा मानो उनके निमन्त्रण के कथनानुसार इन्द्र प्रस्थ में सबका आवास का मानो कृत्ति हो गया नाना प्रति भोजों में परणित हो गएं तो मुनिवरों! देखो, सर्वत्र राजाओं के भिन्न भिन्न कक्ष हैं और उसी प्रकार के कक्ष हैं। जिस प्रकार का मानो वह राजा हो तो मुनिवरों! देखो, वह महाराजा दुर्योधन इत्यादि सब उनके स्वागतार्थ में मुनिवरों! देखो, जब लग गएं।

याग के लिए यज्ञशाला का निर्माण

तो मुनिवरों! देखो, जब याग के याग का साकल्य एकत्रित हो गया और याग के साकल्य एकत्रित हो जाने के पश्चात मेरे प्यारे! यज्ञशाला का भी निर्माण हो गया शिल्पकारों ने बड़ी प्रिय यज्ञशाला का निर्माण किया। मानो जिसने बेटा! उस यज्ञशाला

को दृष्टिपात किया मानो उसे प्रतीत है वह कितनी प्रिय मानो यज्ञशाला पुष्पों से सजातीय अपने मानो चित्रों से सजातीय बना करके देवताओं से वह मानो यज्ञशाला को उन्होंने सजातीय किया और सजातीय करके मुनिवरों! देखो, अग्नं ब्रह्मा मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मे वह नाना ब्राह्मण मुनिवरों! देखो, अपनी अपनी स्थली पर विद्यमान हो गएं और निर्वाचन का क्रियाकलाप होने लगा।

याग के लिए निर्वाचन

सबसे प्रथम देखो, भगवान कृष्ण से यह कहा गया क्या भगवन! अब निर्वाचन होना चाहिए, यज्ञशाला का निर्वाचन हो और देखो, बाह्य जो सेवा है। उसका भी निर्वाचन होना चाहिए। तो मुनिवरों! देखो, ऐसा मुझे प्रतीत है, क्या मानो देखो, जितना कोष था वह दक्षिणा वह मानो देखो, जो शाला ब्रहे मुनिवरों! देखो, उसका उनके दुर्योधन उनके कोष का स्वामीतव का निर्वाचन किया और महाराज जरयोधन को देखो, उस याग का मानो देखो, जो भी स्वतः प्रहा मानो देखो, अश्व भाग वह राजाओं के निमन्त्रण आ ब्रहे उनके सहित आए। वह उनके जो आहार का जो प्रबन्ध है, आहार की प्रतिव्रता है, वह जो जरयोधन के रूप में परणित की गई। तो मानो देखो, अब निर्वाचन हो गया अब मुनिवरों! देखो, युधिष्ठर से कहा कि महाराज! आप तो इस यज्ञशाला के यज्ञमान हैं। आप यज्ञशाला में विराजिए तो मानो देखो, वह अपनी यज्ञशाला में विराजमान हो गयें और नुकुल से देखो, कहा कि तुम मानो अश्वों की सेवा करो और भीम से कहा कि तुम इनके अस्त्रों शस्त्रों को निश्चित स्थान पर नियुक्त करो और देखो, वह अर्जुन को कहा गया कि भगवन! आतप्रहो तुम मानो देखो, इनकी सेवा में अन्न ब्रहे तुम भोजनालय में मानो सुचारू रूप से क्रिया में लाने का प्रयास करो। मेरे प्यारे! देखो, सबका निर्वाचन हो गया निर्वाचन हो करके ब्राह्मण जन अपनी अपनी स्थली पर विद्यमान हो गएं

ब्राह्मणों का निर्वाचन

अब मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने ब्राह्मणों का निर्माण किया महर्षि जैमिनी मुनि महाराज मेरे पुत्रों! देखो, व्यास जी देखो, उस यज्ञ के व्यास मुनि देखो, ब्रह्मा निर्वाचन हुआ

और महर्षि जैमिनी और महर्षि श्वेत तुण्डुक ऋषि महाराज दोनों मुनिवरों! देखो, उस याग के मानो देखो, उद्गाता बने और उदगातं ब्रहे सम्भवा मुनिवरों! देखो, कृपाचार्य जी उस याग के मानो देखो, अध्वर्यु बन करके याग को संचारू रूप से ओर मानो देखो, गुरु द्रोणाचार्य उस याग के पुरोहित नियुक्त किए गएं मानो देखो, याग का सुंचारु रूप प्रारम्भ हो गया ओर यज्ञमान मुनिवरों! देखो, महाराजा युधिष्ठर को निर्वाचन किया गया।

भगवान कृष्णा का राजश्वेरी याग के लिए निर्वाचन

मेरे प्यारे! जब याग का निर्वाचन हुआ तो भगवान कृष्णा ने युधिष्ठर को यह कहा क्या भगवन! जब सबका निर्वाचन हो गया है, तो आपका क्या क्रियाकलाप होगा आपका भी तो कोई आसन होना चाहिए। मेरे प्यारे! भगवान कृष्णा ने उस समय यह कहा कि हे युधिष्ठर! मानो देखो, मेरा तो एक ही क्रियाकलाप रहा है, बाल्यकाल से, अब तक यही क्रियाकलाप रहा है, क्या देखो, जो बाहर से आगुन्तक आते हैं। उन आगुन्तकों के चरणों को जल से स्पर्श करके मैं उस जल में आचमन करता हूँ। मानो देखो, बेटा! देखो, भगवान कृष्णा ने जब यह कहा तो युधिष्ठर अपने में बहुत नम्र वृत्तियाँ ब्रहे मेरे प्यारे! आश्चर्य करने लगे उन्होंने कहा नहीं भगवन! उन्होंने कहा नहीं ऐसा ही होगा। मेरे प्यारे! देखो, सुचारू रूप से क्रियाकलाप प्रारम्भ हो गया।

वेदमन्त्रों का याग से समन्वय

जब याग का प्रारम्भ हुआ तो मुनिवरों! देखो, प्रारम्भ में देखो, आहुति और यज्ञमान अपने में मानो देखो, यज्ञं ब्रह्मा वेद का उद्गीत गाने वाले महाराजा वेद व्यास ने कहा गोतप्रहे हे यज्ञमान! आओ, हे होतागणों! तुम आओ मेरे यज्ञमान की वाणी को पवित्र करो, क्योंकि वाणी ही उद्गाता है। वाणी ही ब्रह्मा है, वाणी ही अन्तरिक्ष में जाती है, और वाणी ही द्यौ लोक में जाती है। मानो यह वाणी पवित्र होनी चाहिए। वाणी ही उद्गीत गाने वाली है। मेरे प्यारे! देखो, वेदव्यास ने यह प्रार्थना की मुनिवरों! देखो, सब अपनी अपनी स्थलियों पर मानो वेद का यशोगान गाने लगे जब वेदों का यशोगान गाने लगे जब वेदों का यशोगान गाने लगे। तो मुनिवरों! देखो, कहीं से महर्षि विभाण्डक

मुनि महाराज मेरे प्यारे! देखो, भ्रमण करते हुए अपने मानो कुछ शिष्यों के सहित वह मुनिवरों! देखो, यज्ञशाला में पधारे, यज्ञशाला में पधारे, तो वहाँ एक प्रसंग ऋषि के समीप आया जैसे उन्होंने कुछ विराम लिया तो वेदव्यास से महर्षि विभाण्डक ने यह कहा क्या महाराज मैं यह चाहता रहता हूँ कि यह जो यज्ञ आपका प्रारम्भ हो रहा है। इसमें जो वेदों का उदगान गाया जा रहा है। वेदों के उच्चारण करने का आशय याग से क्या समन्वय है? मेरे प्यारे! उन्होंने कहा कि याग से वेद के मन्त्रों का समन्वय रहता है, क्योंकि संसार का जितना भी देवतावाद है वह सर्वत्र मानो देखो, वेदों में निहित रहता है। कहीं मानो देखो, इन्द्र के सम्बन्धित कहीं मानो देखो, सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान है। आध्यात्मिकवाद है, परन्तु जितना भी विज्ञान है। आभाओं में रत्त हो रहा है उस सबमें एक एक वेदमन्त्र उसका उद्गीत गाता रहता है। इसीलिए मैं वेदों का उद्गीत गाने के लिए तत्पर हो रहा हूँ। तो मुनिवरों! देखो, वह ऋषिवर मौन हो गएं और विभाण्डक मुनिवरों! अपने शिष्यो के सहित यज्ञशाला में विद्यमान हो गएं मेरे प्यारे! देखो, कुछ समय के पश्चात ब्रह्मणा व्रते देवाः मेरे प्यारे! देखो, कहीं कहीं मध्यम् ब्रह्मणा लोकां हिरण्यं ब्रव्हा मुनिवरों! देखो, याग का प्रारम्भ होता रहा याग की प्रतिक्रियाओं में मानो एक श्रोत्रीय आभा में रत्त होता रहा तो बेटा! देखो, यज्ञमान का आहार मानो लवण युक्त है, और ब्राह्मण जनों का आहार भी लवण युक्त है, सात्विक पदार्थ, सात्विक विचार रहना उद्गीत गाने वालों का बहुत अनिवार्य है।

तो मुनिवरों! देखो, इस प्रकार उन्होंने अपनी आभा प्रतों में युक्त की तो विचार विनिमय क्या आज बेटा! मैं तुम्हें याग के सम्बन्ध में विचार यह दे रहा हूँ कि याग हमारा बेटा! परम्परागतों से जन्म सिद्ध अधिकार रहा है। परम्परा क्या ऋषि मुनियों का एक ही नृत्त है। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके मानो देखो, वर्तमान के काल तक यह एक याग हमारे यहाँ एक मानो देखो, आत्मीय क्रियाकलाप कहा जाता है जिससे समाज मानो देखो, वायुमण्डल अपने में पवित्र बनता है। जिससे राष्ट्र की राष्ट्रीयता भी इसी से अपने में

उद्बुद्ध होती रहती है।

याग में महापुरुष का निर्वाचन

तो विचार विनिमय क्या हमारे यहाँ एक ही राजेश्वरी याग नही होती नाना प्रकार याग मानो देखो, राष्ट्रों में होते रहते हैं। देखो, यह राजेश्वरी याग है, यहाँ राजेश्वरी याग में मानो देखो, राजा के यहाँ यज्ञशाला में एक निर्वाचन होता है। यह राजेश्वरी याग का एक मानो क्रियाकलाप माना गया है। अश्वमेध याग में प्रजाओं का निधिपति होता है। और वह निधि मानो देखो, उसका ब्राह्मण स्थली से नीचे विराजमान हो करके मानो देखो, उसका निर्वाचन करते हैं। । उसको पश्चात देखो, जो अजामेध याग है अजामेध याग में देखो, याग के पश्चात किसी वीरतव का निर्वाचन करते हैं। क्योंकि जिससे देखो, अजा में यकुतं देखो, वह अजा को प्राप्त होने वाला है। तो मुनिवरों! देखो, हमारे साहित्यों में, हमारे यहाँ वैदिक मन्त्रार्थों में भी इस प्रकार की प्रतिक्रियाएं आती रही हैं। परन्तु देखो, हमारे यहाँ और भी नाना प्रकार के यागों का चयन परम्परागतों से एक विचित्रतम माना गया है। आज मैं विशेष विवेचना में तुम्हें ले जाना नही चाहता हूँ। विचार क्या है मानो देखो, यह जब प्रारम्भ रहा याग का मुनिवरों! मुझे ऐसा कुछ स्मरण है। क्या वह इक्कीस दिवस तक इक्कीस दिवस याग का प्रारम्भ रहा है। मुनिवरों! देखो, उस याग के पश्चात वह पूर्णता को प्राप्त हो गया। वह याग का सम्पन्न हुआ तो सम्पन्न होने के पश्चात मुनिवरों! देखो, राजेश्वरी याग में एक मानो देखो, महापुरूष का निर्वाचन होता है। तो वहाँ जब निर्वाचन का प्रश्न आया तो ब्राह्मणो से कहा क्या कौन निर्वाचन होना चाहिए। उन्होंने कहा युधिष्ठर आप निर्णय कर सकते हैं। उन्होंने कृपाचार्य और देखो, द्रोणाचार्य पितामह भीष्म इत्यादि सबको निमन्त्रित करके वह विराजमान थे। उन्होंने कहा कि महाराज! राजेश्वरी याग देखो, सम्पन्नता के आंगन में पंहुच गया देखो, एक महापुरूष का निर्वाचन होना है। राजेश्वरी याग में ऐसा कौन पुरूष है। जिन राजाओं का प्राप्त किया जाऐ, तो राजा सब राजा यज्ञशाला में विद्यमान हैं। तो मुनिवरों! देखो, उस समय शिशुपाल भी उसी यज्ञशाला में विद्यमान है। तो

मुनिवरों! देखो, जब निर्वाचन का प्रसंग आया तो निर्वाचन में मुनिवरों! देखो, पितामह भीष्म ने कहा कि भई! मेरे विचार में यह आता है तुम्हारे विचार में युधिष्ठर ये आता है तुम्हारे विचार में भी यह आ जाएगा क्या इस समय हमारे में जितने राजा हैं। इस पृथ्वी पर उनमें सर्व श्रेष्ठ क्रियाकलाप जो है। जो मानो देखो, वह भगवान कृष्ण का है। इनका निर्वाचन होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, जब यह वाक् आया तो मुनिवरों! देखो, सब राजा शान्त हो गएं, हर्ष ध्वनि करने लगे, राजाओं ने कहा बहुत प्रियतम मानो वह शिशुपाल देखो, अपनी स्थली पर देखो, अपने में उद्धत हो गएं और उन्होंने कहा हे युधिष्ठर! तुम्हारा याग हुआ है। यह बहुत प्रियतम है। मुझे महान प्रसन्नता है, क्योंकि राजेश्वरी याग हुआ है। ऐसे याग मानो देखो, राजाओं के यहाँ होने चाहिएं। परन्तु यह जो तुम इसे मानो देखो, निर्वाचन कर रहे हो यह प्रियता नही, तुम्हारे यहाँ पितामह भीष्म, द्रोण जैसे और भी राजा है, यह मानो तुम्हारे महापुरूष हैं। इनका निर्वाचन होना चाहिए, इसका निर्वाचन नही होना चाहिए। मैं इसके विरोध में रहता हूँ, मेरा सदैव मानो देखो, इसका मानो देखो, इसका मेरा संघर्ष होता रहता है। तो महाराज युधिष्ठर ने कहा कि यह तो मैंने शिशुपाल स्वीकार कर लिया परन्तु जो व्यक्तिगत प्रव्हा अपना विवाद रहता है। उसे देखो, जो सामूहिक क्रियकलाप होते हैं। उनसे उनका कोई समन्वय नही रहना चाहिए। तुम्हारा हृदय मानो इनसे कुण्ठित हो रहा है। यह भी स्वीकार करता हूँ। परन्तु देखो, यह जो सामूहिक समाज है। सामूहिक जो जगत होता है। इसमें अपने व्यक्तिगत या अन्तरात्मा की मानो उस घृणात्मक विचार नही बनाने चाहिए जब तुम घृणात्मक विचार बनाते हो यह प्रियता नही है। महाराजा शिशुपाल ने जब यह वाक् स्वीकार किया तो शिशुपाल ने कहा कि भगवन! मेरा तो यह सदैव मेरी अन्तरात्मा में इसके प्रति घृणा है। तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने कहा तो घृणा यहाँ स्वीकार नही की जाएगी। तुम्हारी घृणात्मक वाक्यों को नहीं स्वीकार किया जाएगा। तो मुनिवरों! देखो, शिशुपाल मौन हो गएं, मौन हो करके उन्होंने पितामह भीष्म से भी यही वाक् कहा तो मानो देखो, सम्भवा लोकां मुनिवरों! देखो, यह विचार मैं किसी काल में प्रगट करूंगा, यह संघर्ष का एक विचार है, परन्तु देखो, विचार केवल यह है कि हमारे यहाँ राजेश्वरी

यागों के कर्मकाण्ड में बड़ी विचित्रता रहती है, और विचित्रता मानो देखो, वही रहती है कि उनमें वह जो निर्वाचन इसीलिए होता है। क्या राष्ट्र में मानो एक निधिपति ऐसा होना चाहिए। जिससे राष्ट्र में शान्ति बनी रहे और मानव के हृदयों में पवित्रता बनी रहे और मानव के हृदय में याग के प्रति एक मानो एक उनका हृदय विचित्र बना रहे, तो यह आज का वाक् अब मैं समाप्त करने जा रहा हूँ, अब मेरे प्यारे! महानन्द जी इस सम्बन्ध में दो विचार व्यक्त करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् दधिमा रथं आभ्यां गता सर्वेषां मनु गच्छम यज्ञाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी इस साहित्यिक याग की चर्चा कर रहे थे जिस याग पर दृष्टिपात करने का प्रायः सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रत्येक याग को आध्यात्मिकवाद और भौतिक विज्ञान से दोनों का समन्वय कर देते हैं। परन्तु आज मैं विशेष या अपना व्यक्तव्य देने नही आया हूँ। केवल मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ। जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है। उस स्थली पर भी एक याग की सम्पन्नता का नृत्त हमारे समीप मुझे दृष्टिपात हुआ है, और मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से इसीलिए प्रेरणा देता रहता हूँ कि याग के सम्बन्ध में कोई अपना विचार दीजिए।

संसार एक यज्ञशाला

तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी याग के सम्बन्ध में, निर्वाचन के सम्बन्ध में, अपने बड़े ऊर्ध्वा में विचार प्रगट किए हैं। वास्तव में देखो, इन्द्र प्रस्थ में यह वही इन्द्र प्रस्थ है मानो जहाँ हमारी आकाश वाणी जा रही है, यह वही स्थली है, जहाँ मानो देखो, महाराजा युधिष्ठर का इन्द्र प्रस्थ मानो उन्हीं का निर्माण किया हुआ था और यहाँ एक राजेश्वरी याग हुआ था राजेश्वरी याग में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव बड़े विचित्र हैं क्या जहाँ शिशुपाल के मरण का समन्वय आया वहाँ अपने विचार उन्होंने शान्त कर दिए। क्योंकि यागां भविते लोकां यह राजेश्वरी याग नहीं मानो देखो, पूज्यपाद गुरुदेव ने मैं यही परिचय देने के लिए आता रहता हूँ। क्या मेरा तो हृदय यज्ञमान के साथ रहता है। इस मानो देखो, मैंने कई काल में पूज्यपाद गुरुदेव से कहा है क्या यह जो समय है, यह

जो काल प्रतीत हो रहा है। यह माया पुरी का काल है। यह मायापुरी, मायापुरी का अभिप्रायः यह है कि मानो जो वाममार्ग परम्परा हो वाममार्ग की परम्परा में देखो, द्रव्य का दुरूपयोग द्रव्य का मानो देखो, सुरा ब्रहे सुरापान दूसरे के देखो, मांस का भक्षण करना यह सब मानो देखो, वाममार्ग की परम्परा कहलाई जाती है। आज मैं इस काल में ऐसे ही भौतिक काल में मानो देखो, मेरे पूज्य मानं ब्रह्मा मानं ब्रीहि लोकां मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं यज्ञमान को अपने हृदय से यह कहता रहता हूँ। **हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे मानो देखो, जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है जिस मानो देखो, जिस काल में दूषित वायुमण्डल में मानो देखो, शुद्ध वायुमण्डल की तरंगें तरंगित की जाती है। इससे महान सौभाग्य संसार में नही होता।** तो मैं सदैव यह विचारता रहता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहें। मैं अपने हृदय से यह हृदय की वार्त्ता सदैव मानो प्रगट करता रहता हूँ। हे यज्ञमान! मेरी यह कामना रहती है, क्या तेरे द्रव्य का सदैव सदुपयोग होता रहे। देवता और देवतव को प्राप्त होता रहे। तो आज का हमारा वाक् यह क्या कह रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहता रहता हूँ, क्या याग के सम्बन्ध में उनके विचार बड़े गम्भीर हैं। याग के सम्बन्ध में उन्होंने संसार को भी याग माना है। हम भी सब स्वीकार करते हैं कि यह संसार एक यज्ञशाला के रूप में क्रियाकलाप हो रहा है, यह याग हो रहा है। जिस याग में भविते लोकां जिस याग में प्रत्येक प्राणी अपनी अपनी देखो, याग की आहुति दे रहा है। **परन्तु मैं आज विशेष चर्चा नही केवल मैंने बहुत पुरातन काल में मैं अपने विचार देता रहता हूँ। समय समय पर और यह विचार मेरा क्या है, मानो देखो, किसी याग से मैं इसीलिए याग में यहाँ किसी का तिरस्कार नही होना चाहिए। मानो देखो, सबको पूजा की दृष्टि से दृष्टिपान करें। तो वह याग हमारा सम्पन्नता को प्राप्त होता है।** जैसा अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रगट कर रहे थे। महाराजा युधिष्ठर की चर्चा कर रहे थे महाराजा युधिष्ठर ने, महाराजा शिशुपाल को बहुत बहुत प्रार्थना की और यह कहा कि हे राजन! यह याग मानो सम्पन्न होने जा रहा है, यह सम्पन्न हो गया है, मानो इसमें किसी प्रकार की क्रूरता नही होनी चाहिएं। परन्तु देखो, वह जो

निर्वाचन है, वह होती ही इसीलिए है। क्या एक मानो एक क्रूर बन जाता है। तो मानो उसको शिक्षा दी जाएं, शिक्षा को स्वीकार न करे तो उसका वध कर देना चाहिए। ऐसा मानो देखो, इन्द्र प्रस्थ में देखो, यह वही स्थली है, जहाँ महाराजा युधिष्ठर ने राजेश्वरी याग किया था आज मानो देखो, भिन्न भिन्न प्रकार के नाना प्रकार के इस भूमि पर नाना प्रकार का परिवर्तन हुए हैं। नाना परिवर्तन हुए हैं। इस भूमि पर मानो देखो, मेरी पुत्रियों को सतीत्व भी हनन किए गएं हैं, और भी देखो, राष्ट्रीय आभा में देखो, नाना प्रकार का परिवर्तन होता रहा है। वह परिवर्तन मानो देखो, आज कुछ और परिवर्तन है। इसके पूर्व कुछ और परिवर्तन है। परिवर्तन ही होता रहता है क्योंकि प्रकृति का यह स्वभाव बना हुआ है। तो आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कोई वाक् उच्चारण करने वाला नही हूँ। केवल यह कि हे यज्ञमान! मेरे हृदय की यह कामना रहती है हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे तू अपने में पवित्र बन करके अग्न्याधान करता है। यह अग्नि याग का जीवन है, यह अग्नि ही विभाजन करती है। परमाणुओं का और विभाजन करके यही वायुमण्डल का शोधन कर देती है। जैसा इसमें पदार्थ दोगे उसी पदार्थ का विभाजन करके यह वही क्रिया में लाने वाला है और तो विचार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत से प्रगट किए हैं। आज मैं उन विचारों में न जा करके केवल यही कि मैं यज्ञमान को अपने हृदय की कामना उच्चारण करने के लिए अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण किए इनका हृदय मानो देखो, हृदय मुक्त हो करके अपनी वार्त्ता प्रगट करते रहे कोई वाक् नही यह संसार परिवर्तन शील होता ही रहता है, यह कोई ऐसा वाक् नही है, प्रकृति का एक एक परमाणु अणु अपने में परिवर्तित होता रहता है। तो यह आज का वाक् अब मैं देखो, जैसा महानन्द जी ने कहा है हे यज्ञमान! मेरा हृदय भी मानो यह कहता रहता है कि सु कामना में रत्त रहें आज का विचार अब समाप्त अब वेदों का पठन पाठन। ओ३म् देवाः माणां त्वा रथं आभ्यां गताः मां ध्रुवश्चमाः देवं रथाः।

ओ३म् दधि सर्वं भविता रेवं गताः। ओ३म् सर्वं रथा मां गतौ। अच्छा भगवन्!।

१४ 24 03 1986 पुष्प 53 मुनि वशिष्ठ का अरुणधती को मृत्यु के बारे में उपदेश

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर बेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ है और जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है। उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है। प्रत्येक वेद का मन्त्र उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन करता रहता है क्योंकि जितना भी मानवीय क्षेत्र है अथवा उसमें मानवीय दर्शन हैं वह एक एक वेद मन्त्रों में निहित रहता है, जिसके ऊपर हमारे यहाँ, परम्परागतों से ऋषि मुनि अपने में चिन्तन करते रहे हैं।

जैसे आज का हमारा वेदमन्त्र कुछ विष्णु की विवचेना कर रहा था और विष्णु के रूप में भिन्न भिन्न प्रकार मानव उसका वर्णन करता चला जा रहा था। हमारे यहाँ विष्णु कहते हैं एक ही मूल में वाक् आता है कि विष्णु कहते हैं जो पालन करने वाला है और पालन करने वालों में जैसे सूर्य पालन करता है, जैसे परमपिता परमात्मा पालन करने वाला है और मेरी प्यारी माता का नामोकरण भी विष्णु है और विष्णु नाम आत्मा को भी कहा जाता है। परन्तु ओर भी भिन्न भिन्न प्रकार के विष्णु के पर्यायवाची शब्द हैं। परन्तु मूल केवल यह जो भी पालन करने वाला है। विष्णु की विवेचना करते हुए आचार्यों ने यह कहा है कि संसार में आत्मा का नामोकरण विष्णु कहा जाता हैं आत्मा का नाम विष्णु है, जो हमारे शरीर में वास करने वाला है, इस शरीर का पालन करने वाला है, क्रियाशील बनाने वाला है।

तो मुनिवरों! इसीलिए आत्म के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गए हैं। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, दो प्रकार के मानव की चर्चा आती रही है, एक मानव होता है एक

अतिमानव होता है। वह मानव है जो साधारण प्राणियों में गति करता है, क्रियाशील है और एक अति मानव वह है जो मानव में भी एक विशिष्ट मानव कहा जाता है। जिस मानव के सम्बन्ध में यह विवेचना है कि वह बनता में जनार्दन को ही दृष्टिपात करता है। एक मानव इससे भी ऊर्ध्वा में रहने वाला है जो जनता में जनार्दन दृष्टिपात न करता हुआ, ब्रह्म में समाविष्ट हो जाता है। तो दो प्रकार के मानव हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, सृष्टि के प्रारम्भ से ही इस संसार में क्रियाशील रहे है। एक वह मानव जो जहाँ भी दृष्टिपात करता है वहीं वे परमपिता परमात्मा को जनता में दृष्टिपात करता है। वही वे परमपिता परमात्मा को जनता में दृष्टिपात करता है, मानव बाल्यों में दृष्टिपात करता है, ब्रह्मचारियों में ब्रह्मचर्य व्रत में भी उसे ही दृष्टिपात करता है, ब्रह्मचारियों में ब्रह्मचर्यव्रत में भी उसे ही दृष्टिपात करता रहता है। वह जनता में जनार्दन को दृष्टिपात करते हुए अपने में ही जनता में समाविष्ट हो जाता है।

जैसे मुझे स्मरण आता रहा है, मैं जब महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज की चर्चा करता हूँ, माता अरुणधती विद्यमान है और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान, वह जनता में जनार्दन का दृष्टिपात करते रहते थे। विद्यालयों में अपने हृदय की द्रव्य ही ग्राही जो भावना है, उसकी बाल्यो में दृष्टिपात करते रहते थे, मेरी पुत्रियां भी दृष्टिपात करते रहते थे। एक समय वह बहुत गंभीर मुद्रा में विद्यमान थे। माता अरुणधती बोली कि प्रभु आज किस गंभीर चिंता में चिंतित हो गए हो? तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह कहा कि देवी मैं यह दृष्टिपात कर रहा हूँ यह चिन्तन कर रहा हूँ कि परमपिता परमात्मा जो जनार्दन है वह इस बाल्यो के हृदयों में निहित रहने वाला है, वह इस समाज में जितनी समाज की हृदय ग्राही वृत्तियां है उसमें निहित रहने वाला है। आज मैं उस परमपिता परमात्मा को दृष्टिपात करता हुआ जनता में जनार्दन का निर्णय वृत्तियों में रत्त हो रहा हूँ। मैं यह दृष्टिपात कर रहा हूँ कि परमपिता परमात्मा लोक लोकान्तरों की एक माला के रूप में और देखो, माला में भी सूत्र के रूप में वह दृष्टिपात आ रहा है। मैं अपने को भी वह सूत्र बनाना चाहता हूँ जैसे विद्यालय में आचार्य ब्रह्मचारियों का प्राण होता है, इसी प्रकार जो महापुरुष होते हैं वह जनता में जनार्दन

की दृष्टिपात करके और जब वह इस शरीर को त्याग देते हैं, और अन्तिम क्षण उनका यही रहता है कि यदि मैं संसार में आऊं तो किस क्रिया कलापों को मैंने किया है इन्हीं क्रिया कलापों में इस संसार में आ करके पुनः से मैं रत्त हो जाऊं, ऐसी भावना, ऐसा चिन्तन प्रभु से करते रहते हैं। क्योंकि मैंने देवी ब्रह्म में समाविष्ट हो करके दृष्टिपात किया है और मैंने जनता में जनार्दन में भी दृष्टिपात हो करके अपने को ले जाने का प्रयास किया है और मैंने अपने अन्तरात्मा की इस अनता में जनार्दन क्या, विद्यालय में ब्रह्मचारियों के प्राण बन करके और सूत्र बन करके मैं इनको पिरोना भी जानता हूँ। परन्तु अन्तिम मेरी इच्छा यही रहती है कि देवी! जब यह शरीर मेरा परमाणुवाद विच्छेद हो जाए तो मेरा जो चित्त का मण्डल है उस चित्त के मण्डल में जो मेरे संस्कार हैं उन संस्कारों को ले करके पुनः से मैं जनता जनार्दन में पुनः से मैं समाधिष्ट हो जाऊं, तो मेरी ऐसी कामना रहती है।

माता अरुणधती बोली कि प्रभु! ऐसी भावना आपके हृदय में क्यों उत्पन्न हुई है? उन्होंने कहा कि देवी! संसार में एक मानव होता है एक अतिमानव होता है। जो अतिमानव होता है वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है। हमारे आचार्यों ने निर्णय देते हुए यह कहा है, वेद का मन्त्र भी यह कहता है, मृत्युञ्जय ब्रह्मस्वरण सम्भवाः लोकाम् वाचप्रहेवृती सम्भवा लोकम्। वेद का वाक् यह कहता है कि संसार में मृत्यु का तो अभाव है। मृत्यु का अभाव इसलिए क्योंकि मृत्यु संसार में होती नहीं है। केवल मृत्यु तो अंधकार का नाम है और जो मानव अपनी अन्तरात्मा में यह संस्कार ले करके शरीर को त्यागता है, चित्त के मण्डल में प्रवेश करता है कि मैं तो जनता में जनार्दन में समाविष्ट हो गया हूँ, मैं परमपिता परमात्मा को जनता में जनार्दन में दृष्टिपात कर रहा हूँ, तो वहाँ मृत्यु का अभाव हो जाता है।

हे देवी! तुम्हें प्रतीत है मैंने एक समय महर्षि उद्दालक मुनि से शास्त्रार्थ किया था, कागभुषुण्ड जी ने भी मेरे से यह प्रश्न किया था कि संसार में मृत्यु कोई वस्तु है, तो देखो, ऋषि मुनियों का एक ही मन्तब्य रहा है कि संसार में मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती। यह जो मानव को एक अप्रिय वृत्तियां प्रतीत होती है उसके मूल में यह है कि जिस

वस्तु का मिलन हुआ है, उसका विच्छेद हुआ है और जिसका विच्छेद हुआ है उसका ही मिलन होना है। जो जनता में जनार्दन में अतिमानव, मानव में जो वशिष्ठ मानव होते हैं वही इस शरीर को त्याग करके स्वर्ग के गामी बन जाते हैं। वह मानव मोक्ष को पगडंडी को ग्रहण कर लेते हैं। मोक्ष को पगडंडी क्या है? मैंने बहुत पुरातनकाल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था कि मोक्ष की पगडंडी वह होती है वहाँ अज्ञान नहीं होता, जहाँ केवल ज्ञान होता है, प्रकाश होता है, मानवीयता की मानवता होती है, मानव दर्शन को अच्छी प्रकार जानता है, वह मानव जब शरीर को त्याग करके चित्त के मण्डलों में भ्रमण करता हुआ व्रेचकेतु वायु में रमण करता हुआ वह अति मानव की कोटि में मोक्ष की पगडंडियों को प्राप्त होते रहते हैं।

तो यह वाक् महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपनी देवी अरुणधती से कहा। परन्तु देखो, कागभुषुण्ड इत्यादियों का जो वाक् इसमें आया तो उन्होंने नाना प्रकार के प्रश्न किए। तुम्हें यह प्रतीत होगा कि एक समय देखो, यहाँ विद्यालय में महर्षि अत्रि मुनि का आगमन हुआ और महर्षि अत्रि मुनि ने यह प्रश्न किया कि महाराज! यह तो मानव जो परोपकारी अपने हृदय को इतना व्यापक बना लेते हैं संसार में, परोपकार भी कोई वस्तु नहीं होता है। वेद का एक मन्त्र कहता है परवणां ब्रह्मः वृताम् देवम् दधि वृषप्रहाः जो भी मानव कर्म करता है वह अपने लिए करता है। जो भी मानव अतिमानव बनता है वह भी अपने लिए अपनी आत्मा की तृप्ति के लिए कर्म करता है। इस मानव का आत्मा इतना वशिष्ठ बन जाता है अपने क्रिया कलापों से कि वह अति मानव की विवेचना करता हुआ अपने में यह स्वीकार करता है कि मैं जो भी कुछ क्रिया कर रहा हूँ, वह अपनी आत्मा की तृप्ति के लिए कर रहा हूँ। इतना मानव का व्यापक हृदय बन जाता है, वह अपने संकीर्णता को त्याग देता है और व्यापक हृदय बन जाता है। व्यापकता में परिणित हो जाता है, उसकी व्यापकता इतनी विशाल बन जाती है कि वह प्रत्येक मानव में परमात्मा का दर्शन करता है, प्रत्येक मानव में शिक्षा का दर्शन करता है, प्रत्येक मानव में देखो, दर्शनों का ही अध्ययन करता रहता है। वह महापुरुषों के आचरणों में अपने आचरणीयता, आचार संहिता को बना लेता है। तो वह मानव देखो,

साधारण कोटि का नहीं होता है। वह मानव इस सांर से देखो, मानव ध्रुवा गति को त्याग करके वह ऊर्ध्वा अतिमानव में प्रवेश हो करके वह उस स्थित को प्राप्त हे जाता है जिसको महापुरुष परम्परागतों से अपने मोक्ष की पगडंडियों को ग्रहण करते रहते हैं। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपना वक्तव्य देते हुए मध्यरात्रि में अपनी पत्नी को यह निर्णय दिया कि देवी! संसार में मानव को व्यापक विचार बनाने चाहिए। संकीर्णवादी मानव तो मानव नहीं कहलाता और जो व्यापक हृदय बना लेता है, जनता में जनार्दन को ही दृष्टिपात करता है, वह अति मानव बन जाता है और अति मानव बन करके यह लोक और परलोक दोनों इसके विचित्र बन जाते हैं।

आज मेरे प्यारे! महानन्द जी की ऐसी प्रेरणा है कि मृत्यु के ऊपर कोई शब्द उच्चारण किया जाए। परन्तु आज मैं मृत्यु के ऊपर केवल यही कि संसार में मृत्यु अपने में काई मृत्यु नहीं होता है। यह आत्मा सदैव अजय रहती है, इस आत्मा के साथ जो संस्कार जाते हैं वे संस्कार ही मानव को उद्बुत करते रहते हैं, वही मोक्ष की आभा में परणित करते रहते हैं। आओ आज मैं तुम्हें महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के द्वारा न जाता हुआ आज मैं तुम्हें वशिष्ठ और माता अरुणधती की चर्चा करना चाहता हूँ। देखो, जिस समय दोनों दो पुत्र, दो राजकुमार जो अध्ययन करते थे ऋषि कुमार महर्षि विश्वामित्र ने जब मृत्यु को प्राप्त करा दिए थे, तो उस समय माता अरुणधती रात्रि समय विरह में हो रही थी, व्याकुल हो रही थी, तो वशिष्ठ बोले, देवी! तुम व्याकुल क्यों हो रही हो? उन्होंने कहा प्रभु! आज एक ऋषि ने, इन्हें तुम ऋषि कहते हो, तपस्वी कहते हो इसने दो राजकुमारो को विलय के दो ब्रह्मचारियों का शरीर विच्छेद कर दिया है। परन्तु मैं इसमें दुखित हो रही हूँ। मैं नहीं जान पा रही हूँ कि यह क्या वस्तु है जो मुझ मेरे अन्तर्हृदय से बारम्बार मुझे रूदन के लिए बाध्य कर रही है।

महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि हे देवी! तुम्हारे हृदय में एक बेदना है, और वेदना यह है उन ब्रह्मचारियों का मिलन हुआ और मिलन हो करके विच्छेद हो गया है। जब मिलन हो करके किसी वस्तु का विच्छेद होता है, तो उसमें नाना प्रकार की हृदय से तरंगों का प्रादुर्भाव होता रहता है। नाना तरंगे उत्पन्न होती रहती हैं, मन प्रकृति के मण्डल का

एक समूह कहलाता है और उसमें तरंगें उद्धुत हो करके यह तुम्हारे हृदय को विद्रहण करती रहती है। उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूँ यह मान क्या है? जो मन इतना व्याकुल बना रहा है। उन्होंने कहा हे देवी! यह जो मन है यह प्रकृति का समूह है क्योंकि प्रकृति के परमाणुओं की यह नियमावली बनी हुई है कि जब परमाणु मिलन करता है तो वह प्रीति करता है और जब उनका विच्छेद होता है, उसमें ध्वनि होती है और वह ध्वनि ऐसी विचित्र होती है कि वह ध्वनि अग्नि के परमाणुओं को जन्म दे देती है। वह अग्नि के परमाणुओं को जब जन्म देती है, अग्नि जब शीतलता में मिलन करती है तो उसमें वह प्राणी वह जो विच्छेद हुआ है उसमें एक प्रकार की दाह उत्पन्न होती है और वह दाह चित्त के मण्डल में समाहित हो जाती है।

तो देखो, ऋषि ने जब यह कहा तो देवी ने कहा प्रभु! यह वाक् मैंने स्वीकार कर लिया, इसको मैं जान गई हूँ। परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ भगवन्! कि यह जो शरीर में आत्मा है यह क्या है? उन्होंने कहा यह जो आत्मा है वह एक चेतना है, एक गति है, एक रस रहने वाली है। उन्होंने कहा प्रभु! यह भी मैंने मान लिया कि एक रस रहने वाली है, परन्तु यह जो मन में एक प्रकार का दाह उत्पन्न होता है यह आत्मा के सन्निधान से होता है या यह मन और प्रकृति दोनों की रचना है। जब माता अरुणधती ने यह कहा तो वशिष्ठ मुनि ने कहा कि आत्मा का सन्निधान होता है। जैसे सूर्य का प्रकाश है, जैसे सूर्य का प्रातःकालीन प्रकाश आता है और वह प्रकाश के आने से रात्रि उस प्रकाश में, प्रकाश के गर्भ में प्रवेश कर जाती है। इसी प्रकार जैसे आत्मा का सन्निधान मात्र प्रकृति को स्पर्श हुआ, तो यह प्रकृति का स्वभाव स्वतः जागरूक हो जाता है और स्वतः जागरूक हो करके वहीं उसका स्वभाव क्रियात्मक सन्निधान मात्र से ही क्रीड़ा होना प्रारम्भ हो जाता है। वही क्रिया है जो मानव को देखो, विच्छेद और विच्छेद को मिलन में परिवर्तित करती है। जब माता अरुणधती ने यह वाक् श्रवण कर लिया, उन्हेंने कहा प्रभु! मैं एक वाक् और जानना चाहती हूँ कि आत्मा का स्वाभाविक गुण क्या है? जिन गुणों से यह इस प्रकार का क्रियाकलाप करती रहती है। तो महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, देवी! यह जो आत्मा का गुण है इसमें ज्ञान और प्रयत्न इसका

स्वाभाविक गुण कहा जाता है। गुणों के कारणही जब ज्ञान और प्रयत्न दोनों का मिलान होता है तो आत्मा को प्रकृति के आवेशों से और प्रकृति प्रसाद जीव आत्मा परमात्मा की मोक्ष की पगडंडी को प्राप्त कर लेती है। और जब तक ज्ञान और प्रयत्न दोनों का प्रायः विभाजन रहता है, दोनों का विच्छेद रहता है, जब तक यह प्रकृति से मिलन करते रहते हैं, प्रकृति में आते रहते हैं, जाते रहते हैं, प्रकृति को नाना प्रकार की वायु में भ्रमण करते हुए अति परमाणुओं में रत्त होते हुए यह संसार का निर्माण करते रहते हैं, संसार को विच्छेद करते रहते हैं, पिंड बनाते रहते हैं, कहीं पिण्ड से रहित हे जाता है, तो यह इसी प्रकार क्रिया कलाप चलता रहता है और जब इन दोनों का समन्वय हो जाता है, दोनों का मिलन हो जाता है, उसी समय मोक्ष की पगडण्डी को प्राप्त कर लेती है और परमपिता परमात्मा की आनन्दमयी रहस्यों का उद्धृत करने लगते हैं। अपने में ओत प्रोत हो जाता है, ब्रह्म का और आत्म तत्त्व का दोनों का समन्वय हो जाता है। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह वाक् कहा, तो मुनिवरों! देखो, माता अरुणधती बोली कि प्रभु! एक वाक् मेरे विचार में नहीं आया कि यह प्रकृति क्या है? जो इसमें आभा में यह मानव रत्त रहता है। उन्होंने कहा देवी! यह जो प्रकृति है यह एक जड़वत् है और जब चेतना का सन्निधानमात्र होता है दोनों का एकोकीकरण जब ब्रह्म का चेतना का जब समन्वय होता है, तो प्रकृति का स्वभाव जागरुक हो जाता है। मानव के शरीर में दस प्राण, दस इन्द्रियां और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह चतुष्ट अन्तःकरण बन करके यह चौबीस आभा में यह मानव का शरीर रत्त रहता है। जो इस आभा में इसी से यह ब्रह्माण्ड अपने में गति कर रहा है। परन्तु जो अतिमानव होते हैं। वह अपनी मानवीय प्रकृति को नता में जनार्दन में ओत प्रोत करा देते हैं और अपने जीवन को शिक्षालयों में, अपने जीवन को देखो, अभ्युदय में और परमात्मा के चिन्तन में संलग्न करा देते हैं, जिससे मानव अतिमानव बन करके जब वह संसार में चला जाता है, उसका विच्छेद हो जाता है, वह रहस्यतम नहीं तो आने वाला समाज है उसको पुकारता रहता है। मानव सदियों उसकी आभा में रत्त रहता है, उसकी छाया में वह विराजमान हो करके, उसके गुणों का गुणगान गाता रहता है। मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं

आया हूँ, तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि वह अति मानव होते हैं और जो मानव और ऊर्ध्वा में होते हैं वह ब्रह्म में समाधिष्ट हो जाते हैं। वह ब्रह्मा ब्रह्मः प्राणाम ब्रह्मः विष्णुः देखो, वह विष्णु बन करके, आत्मा को विष्णु स्वीकार करके, वे परमपिता परमात्मा के आनंद को भोगते रहते हैं।

मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय क्या कि यह मृत्यु क्या है? आज मैं मृत्यु के सम्बन्ध में अपने विचार दे रहा था। वेद का ऋषि कहता है और वेद मन्त्र कहता है कि यह मृत्यु अपने में कोई वस्तु नहीं है। वेद का एक मन्त्र कहता है मृत्योभवा सम्भवा लोकाम् हिरण्यम् वृथाः वाचन्नमोवृत् ब्रह्म लेकाम्। वेद का वाक् कहता है कि मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं होती है। क्योंकि मृत्यु वेद का वाक् कहता है कि मृत्यु कहते हैं अंधकार को और जहाँ अन्धकार होता है वहीं तो मृत्यु होती है। क्योंकि देखो, जहाँ अंधकार होता है अंधकार रात्रि को कहते हैं और अज्ञान का नाम भी रात्रि है। अज्ञानाम् भविते ब्रह्मा वह मुनिवरों! देखो, जो अंधकार को त्याग देता है वह प्रकाश में चला जाता है।

जैसे मुनिवरों! देखो, एक कड़ी एक माला, मैंने कई कालों में प्रकट की है। एक माला है उस माला में भिन्न भिन्न प्रकार के मनके हैं। जैसा प्रदान मेरे पुत्रों! देखो, पिप्पलाद मुनि की पत्नी ने किया था शकुन्तला ने, शकुन्तला ने कहा था प्रभु! मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया है। उन्होंने कहा देवी! मैं तो देखो, वैदिक आचार्यों में मृत्यु का खंडन करता रहता हूँ मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं होती। उन्होंने कहा प्रभु! मेरा पुत्र कहाँ चला गया? उन्होंने कहा तुम्हारा पुत्र, यह तो परमाणुओं का संघात है शरीर, परमाणु अपने अपने कारण में लय हो गये। और आत्मा किसी काल में ह्रास नहीं होता। उन्होंने कहा प्रभु! यह मैंने स्वीकार कर लिया है। शकुन्तका ने कहा प्रभु! यह परमाणु जब मेरा शरीर नहीं होता, तो यह परमाणु कहां चला जाता है उन्होंने कहा यही परमाणु माता के गर्भस्थल में विद्यमान होता है, उन्हीं परमाणुओं से मानव शरीर की रचना होती है, यह पञ्चीकरण बन जाता है। और यही मुनिवरों! देखो, परमाणुओं के रूप में आ करके एक स्थूलता की रचना करता है। उन्होंने कहा प्रभु! यह भी मैंने स्वीकार कर

लिया, परन्तु जब माता का गर्भाशय नहीं होता, तो यह परमाणुवाद कहाँ रहता है? उन्होंने कहा देवी! यही परमणुवाद वीरत्व के रूप में और वीरांगना के रूप में होता है। इन्हीं परमाणुओं की रक्षा करने वाली मेरी पुत्री वीरांगना बन जाती है। सिंहराज से वार्त्ता प्रकट करने लगती है, वह वेदाम ब्रह्माव्रतम् देवी। इन परमाणुओं की रक्षा करने वाला संसार में अभय बन जाता है, निर्भय हो जाता है वह अपने में जैसे माता मल्दाल्सा का जीवन जब वह वेद गान गाती थीं तो सिंहराज भी उनके चरणों की वंदना करते रहते थे। वीरतव जब इनकी रक्षा करता है तो ब्रह्मचारी बन जाता है। परमात्मा की मानव चरी को चरने लगता है और प्रकृतिवाद को मानव ज्ञान के रूप में दृष्टिपात करके वह आभा में परणित हो जाता है।

उन्होंने कहा प्रभु! यह तो मैंने स्वीकार किया, परन्तु जब वीरतव नहीं होता, तो यह परमाणुवाद कहा रहता है? उन्होंने कहा देवी! जब यह वीरतव नहीं होता तो यही परमाणुवाद अन्न के रूप में विद्यमान होता है। जब मानव का यह अतिमानव का जन्म हुआ सृष्टि के प्रारम्भ में, तो प्रभु! ने सृष्टि के रचयिता ने सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया था। वह सात प्रकार का अन्न क्या है? एक पौधे में दो प्रकार का अन्न है, एक पशु पान करता है वह पय देता है, एक मानव पान कर रहा है तो वह तेज उत्पत्ति कर रहा है। वह एक ही पौधा है, वाह रे मेरे प्रभु तू कितना महान् है, तू कैसा अति मानव है। जिस अति मानव के लिए अतिमानव ने एक पौधे पर दो प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया है। देखो, एक गो पान कर रहा है तो दुग्ध दे रहा है, मानव पान करी रहा है तो बेटा! ओज और तेज की उत्पत्ति करके वह अपने जीवन को संसार के महान् कार्यो में परणित कर देता है।

मेरे प्यारे! देखो, वही अभ्योभवनब्रह्म वाचग्रही लोकाम्, वेद का आचार्य कहता है कि एक अन्नाद् वह है जो अन्न देवताओं का अन्न है। एक यज्ञमान बन करके आहुति दे रहा है, याग कर रहा है वह देवताओं को प्रसन्न कर रहा है। वायुमण्डल पवित्र बन रहा है, देवता ही प्रजन्य बन करके मेघो की उत्पत्ति हो रही है। वृष्टियां हो रही हैं, अन्न उत्पन्न हो रहा है, नाना प्रकार का सृष्टि का कर्म आरम्भ हो रहा है। वही अभ्यम् ब्रह्मा एक वह

जो मुनिवरों! देखो, पुरोहितजन होते हैं, बुद्धिमान होते हैं जो राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाते हैं, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाने वाले जो अपने विचारों से एक महान् रूप दे देते हैं, महान् कार्यों में परणित करा देते हैं, वह चतुर्थ प्रकार के देवता कहलाते हैं, वह पुरोहित कहलाते हैं। जो परा विद्या को ले करके इस समाज का कल्याण करते हैं, समाज को महान् बनाते हैं। समाज को पवित्र बनाते रहते हैं। वह तीन प्रकार का जो अन्न है वह आत्मा के लिए है, जो मन से चिन्तन किया जाता है, जो प्राण से प्राणायाम किया जाता है। मन और प्राण दोनों का समन्वय करके वह मोक्ष और आत्मा को प्राप्त हो जाते हैं। यह तीन प्रकार का अन्न आत्मा के लिए कहा जाता है।

पत्नी ने कहा प्रभु! यह मैंने स्वीकार कर लिया है कि यह सात प्रकार का अन्न सृष्टि के पिता ने मानव के लिए उत्पन्न किया है परन्तु यह मैं और जानना चाहती हूँ भगवन्! कि यह जब अन्न भी नहीं होता, तो यह परमाणुवाद कहाँ रहता है? तो ऋषि ने कहा देवी! अब यह अन्न वृहे जब अन्न नहीं होता, तो यही परमाणुवाद प्रकृति का बिखरा हुआ परमाणुवाद है, कुछ प्रकृति के परमाणु, कुछ जल परमाणु, कुछ अग्नि परमाणु, वायु गति देता है और अवकाश अन्तरिक्ष में वह गति करता रहता है। ऋषि ने कहा देवी! जब यह आत्मा का और परमाणुओं का जब दोनों का विच्छेद होता है, तो यह मानव शरीर रह जाता है। इस मानव शरीर को अग्नि मे दाह कर देते हैं और दाह करके अग्नि परमाणुओं का विच्छेद कर देती है। पृथ्वी का परमाणु पृथ्वी में प्रवेश कर गया, अग्नि का परमाणु अग्नि में प्रवेश कर गया है, जल का परमाणु जल में प्रवेश कर गया है। प्राण वायु में प्रवेश हो गया है और अन्तरिक्ष का भार अन्तरिक्ष में प्रवेश कर गया है और आत्मा अपने में संस्कारों को ले करके चित्त के मण्डल में प्रवेश कर गया है। तो देवी! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मृत्यु क्या है संसार में क्योंकि देखो, आत्मा का विनाश नहीं होता, परमाणुवाद का भी विनाश नहीं होता है। तो देवी संसार में मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती।

हां वेद का ऋषि कहता है याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के सबाद का एक मन्त्र मुझे स्मरण आ रहा है। वेद का मन्त्र कहता है मृत्यु रूपां देवम् ब्रह्मो लोकाम्। वेद का ऋषि कहता

है जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से यह कहा कि महाराज! संसार में मृत्यु की मृत्यु क्या है? तो ऋषि कहता है हे अर्द्धभाग! मत कहो संसार में मृत्यु की मृत्यु नहीं होती। मृत्यु की मृत्यु ब्रह्म कहलाता है। जो ब्रह्म को जानता है उसकी मृत्यु नहीं हुआ करती। वेद के ऋषि यह वाक् उच्चारण करके मौन हो गए। तो मुनिवरों! देखो, जो संसार में अति मानव बन करके, साधारण कोटि के मानव से जो ऊर्ध्वा में क्रियाकलापों को करके और जन समूह को क्रियाकलाप करके चले जाते हैं, उनकी मृत्यु नहीं हुआ करती। आज का वेद का वाक् यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने में ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते हुए, परमपिता परमात्मा की आभा में हम परमपिता परमात्मा के क्षेत्र में विद्यमान हैं। देखो, प्रकाशका नाम जीवन है अंधकार और अज्ञान का नाम मृत्यु है मृत्यु को त्यागना और प्रकाश में जाना मुनिवरों! देखो, यह मानव का कर्तव्य है।

यह आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने को जा रहा है। आज के वाक्उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मुनिवरों! देखो, मानव की प्रकाश में जाना चाहिए और प्रकाश के मार्ग पर जो अति मानव हमें प्रकाश दे गएं हैं उस प्रकाश को बेटा! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अतिमानव को अपनाते, उनकी क्रियाओं को अपना करके, अपने जीवन की ऊर्ध्वा बनाएं। यह आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। यह प्रवचन ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी महाराज ने 24 मार्च 1986 को स्व. चौ. न्यादर सिंह त्यागी ग्राम रासना, के निवास पर दिया।

१५ 04 04 1986 पुष्प 55

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने गएं

हैं और जितना भी यह जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत दृष्टिपात आ रहा है, इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः यह आदेश दृष्टिपात आ रहा है आज का हमारा वेदमन्त्र उस परमपित परमात्मा की गाथा गा रहा है जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है जिस प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है इसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र प्रायः उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है हमारे यहां परम्परागतों से ऋषि मुनियों ने इस वैदिक साहित्य के ऊपर नाना प्रकार का विचार विनिमय किया है और उसकी आभा में रत्त हो ककरे अपने ऊँचे ऊँचे उड़ान उड़ता रहता है हमारे यहां वेदमन्त्रों के ऊपर प्रायः अन्वेषण होता रहा है। जिससे दोनों प्रकार की धाराओं का जन्म होता है। हमारे यहां एक एक वेदमन्त्र को चिन्तन करने से यह होता है कि दो प्रकार का विज्ञान हमारे समीप उपलब्ध हो जाता है, जैसे हमारे यहां भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों ही अपनी अपनी आभाओं में सदैव निहित रहे हैं। भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान, दोनों ही प्रकार का विज्ञान मानवीय मस्तिष्कों में परम्परागतों से सदैव निहित रहा है और प्रायः मानव इस पर विचार करता रहा है। भौतिक विज्ञान अणु और परमाणुवाद के रूप में निहित रहता है और दूसरा विज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान कहलाता है आध्यात्मिक विज्ञान वह विज्ञान है जहां अन्तरात्मा को जानने के पश्चात मानव श्वेत नही रह पाता जिसमें ब्रह्मा बाहु असम्भा लोकम् ब्रह्मे वाचाः वेद वाक्य यह कहता है कि जो भी मानव आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश होना चाहता है वह भौतिक विज्ञान के मार्ग से हो करके आध्यात्मिक विज्ञान में रत्त हो जाता है। आज का हमारा वेदमन्त्र जहां आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान की विवेचना कर रहा है वहां हमारा आज का वेदमन्त्र विष्णु की भी याचना कर रहा था हमारे यहां वैदिक साहित्य में विष्णु के भिन्न भिन्न प्रकार के रूप माने गए हैं। परन्तु विष्णु का एक ही स्वरूप हमारेसमीप आता है जो पालन करने वाला है, वे परमपिता परमात्मा है ध्रुवा में गति करने वाला है ध्रुवम ब्रह्मा विष्णु ब्रह्म वाक्यां वावम् नमः मेरे प्यारे! देखे यह विष्णु है जो कल्याण करने वाला है। हमारे यहां वैदिक साहित्य में कवेल जहां विष्णु परमपिता परमातमा का कहा गया है वहां माता का नामोकरण भी विष्णु है क्योंकि देखो, माता

वसुन्धरा जो पृथ्वी के रूप में रत्त रहने वाली है वह भी पालन करने वाली है। सूर्य ऊर्ध्वा प्रकाश दे करके प्राणीमात्र को एक महान प्रकाश पालन करने की प्रतिक्रिया में मानव को रत्त बना रहा है।

हमारे वैदिक साहित्य में विष्णु के नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं विष्णु नाम आत्मा को भी कहा गया है और विष्णा नाम जहां परमपिता परमात्मा को कहते हैं वहां राजा का नामोकरण भी विष्णु के रूप में वर्णन किया गा है।

आज मैं तुम्हें विशेष विवेचना तो देने नही आया हूँ आज मैं तुम्हें त्रेता के काल मे ले जाना चाहता हूँ जिन वाक्यों की विवेचना मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें दी थी परन्तु आज भी मुझे स्मरण आ रहा है कि कौन सा राजा विष्णु है और वह विष्णु क्यां कहा जाता है हमारे यहां चतुर्भुजी का नामोकरण विष्णु कहा जाता है परन्तु हमारा जो साहित्य है अथवा हमारे यहां जो ऊर्ध्वा में गति करने वालों की जो वृत्तियां रही हैं वह राजा को और कुछ संकेत देती हैं।

त्रेता के काल में तुमने श्रवण किया होगा राजा रावण का साहित्य आज मुझे स्मरण आ रहा है राजा रावण के यहां नाना अन्वेषण होत रहता था, अनुसन्धान होता रहा है मुझे कुछ ऐसा स्मरण हे एक समय राजा रावण की अध्यक्षता में एक सभा निहित हुई थी। उस सभा में नाना वैज्ञानिक विद्यमान थे उस वैज्ञानिक सभा में राजा रावण को अध्यक्ष पद प्रदान किया गया था उस सभा में गुरूतव के ऊपर विचार विनिमय हो रहा था कि वह गुरूतव क्या है और यह किस प्रकार की प्रतिक्रियाओं में लग्न रहता है नाना वैज्ञानिक इस विषय पर विचार करते रहे। जब विचार विनिमय होता रहा तो प्रातःकाल से सांयकाल हो गया परन्तु अपने में निर्णय नही हो सका। जब निर्णय नही हुआ तो सांयकाल को सभा विसर्जन हो गई और जब वैज्ञानिक अपने अपने कक्ष में जा पंहुचे तो राजा रावण अपने में यह अनुभव करने लगे कि मैंने अपने पूज्यपाद आचार्यों के द्वारा जो अध्ययन किया है उससे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अध्ययन को मैं क्रियात्मक में नही लाया हूँ वह अपने कक्ष में जा पंहुचे, रात्रि हो गई परन्तु चिन्तन होता रहा, मनन होता रहा। आत्मा का जो विचार है उनमें विकृतियां आ गईं। मन में विकृतियां

आ गई इसके पश्चात उन्होंने निर्णय किया कि मैं किसी महापुरूष के द्वारा अपनी आत्मा शान्ति को चाहता हूँ राजा रावण को इसी चिन्तन में लगे हुए जब प्रातःकाल हुआ उन्होंने मन्त्रीगणों को एकत्रित किया और उनके बोले, हे मन्त्रीगणों! इस राष्ट्रीय बेला को अपनाओ, क्रियाकलापों में लगे रहो, मेरे हृदय में अशान्ति छा गई है। मैं किसी महापुरूष के दर्शन करके अपनी आत्म शान्ति को चाहता हूँ। मन्त्रियों ने कहा जैसी प्रभु आपकी इच्छा हो वैसा कीजिए।

राजा रावण अपने वाहन में विद्यमान हो करके भयंकर वनों के मार्ग पर चले गये। उन्हें सबसे प्रथम भयंकर वनों में जा करके महाराजा पारेक ऋषि महाराजा के दर्शन हुए। पारेक ऋषि ने राजा का स्वागत किया और कहा कहिए भगवन! कुछ आत्मा परमात्मा की चर्चाएं चलीं। उन्हें आत्म शान्ति नही हुई। वहां से उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए वह वैशम्पायन ऋषि के द्वार पर जा पंहुचे। वैशम्पायन ऋषि से भी कुछ आत्म चर्चाएं हुईं परन्तु वहां से भी उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज के द्वार पर पंहुचे। सांयकाल का समय हो गया था, महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज ने राजा रावण को आसन दे करके वह विराजमान हो गये। जो भी आश्रम में कन्दमूल उपलब्ध थे वह उन्हें आहार कराया। राजा रावण ने बड़े आनन्द पूर्वक कन्दमूल आदियों का पान किया। उसके पश्चात राजर्षि ने कहा कहो राजन्! कैसे आगमन हुआ। आपका आना मुझे अशान्त प्रतीत हो रहा है उस राजा रावण ने कहा प्रभु! आज मैं प्रातःकालीन मैं वैज्ञानिकों के मध्य में विराजमान था और वैज्ञानिकों के मध्य में नाना प्रकार का विचार विनिमय हो रहा था, उनके विचार से ही गुरूतव परमाणु के ऊपर अन्वेषण चल रहा था सांयकाल की सभा विर्सजन हो गई, अपने में कोई निमटारा नही हो सका, मेरे हृदय में अशान्ति छा गई है हे प्रभु! मैं आत्म शान्ति के लिए महापुरूषों के दर्शन करके आत्म शान्ति चाहता हूँ उन्होंने कहा बहुत प्रिय।

महर्षि कुक्कुट मुनि विराजमान हो गए और उन्होंने कहा कहो रावण! तुम्हें तुम्हारे आचार्यों ने अब तक जो ज्ञान कराया है उसे निर्णय करो, तुमने आत्मा के सम्बन्ध में क्या जाना है। राजा रावण ने कहा प्रभु! हम बाल्यकाल में अध्ययन करते थे ऋषि मुनियों के द्वारा

तो उन्होंने हमें यह निर्णय कराया था कि आत्म ब्रह्म रुद्रा देवा5 यह आत्मा मानो मानव शरीर में वास करता है परन्तु यह आत्म न जाग्रति है न सुषुप्त है और न यह स्वप्न है, यह आत्मा का रस रहने वाला है प्रभु इतना तो हमें निर्णय कराया है परन्तु आगे उन्होंने काई निर्णय नही कराया है।

उन्होंने कहा हे रावण तुम यह जानते हो कि यह आत्मा जागरूक भी नही हैं इसके मूल में क्या है रावण ने कहा प्रभु! मैं इतना नही जानता जो कुछ ऋषियों ने निर्णय किया वह मैंने एक वाक्य में अपनी भूमिका समाप्त कर दी है, अब आप मुझे निर्णय कराईए।

राजा रावण ने वाक्यों को श्रवण करके महात्मा कुक्कुट महाराज ने वायु मुनि महाराज के साढ़े तीन हजारवें पड़पौत्र कहलाते थे। उन्होंने कहा कि हे रावण यह जो आत्मा है यह न तो जागरूक है और न यह स्वप्न है और न यह सुषुप्ति है। यह आत्मा प्रायः एक रस रहने वाला है यह जागरूकता क्या है? जब मानव जागरूक रहता है तो इस आत्मा का समन्वय मन के साथ हो करके नेत्रों के साथ होता है। नेत्र इस संसार का दृष्टता बने हुए हैं, दृष्टिपात करते रहते हैं मानो एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय देता है, वह कहता है यह मेरी माता है, यह पिता है, यह पड़पिता है, यह महा महामाता है मानो पोत्र पुत्रियों का परिचय देता रहता है। मानव का जो मन है वह जो आत्मा का प्रकाश है वह उसके साथ वह मानो विभक्त क्रियाओं से दृष्टिपात करता रहता है हे राजन! तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि यह जागरूकता क्या है मानव के जो नेत्र हैं वह संसार को निहारते रहते हैं, दृष्टिपात करते रहते हैं, और विभक्त क्रिया केवल मन कके द्वारा है। मन उनको निर्णय करता रहता है यह माता क्या है, यह कुटुम्ब क्या है राष्ट्र के राष्ट्र को यह विभक्त क्रिया में ले आता है, वह संसार के अणु और परमाणु को विभक्त क्रिया में दृष्टिपात कराता है वेद का वाक्य कहता है हे राजन्! यह आत्मा जागरूक नही है तो यह स्वप्न भी नही हैं

स्वप्न क्या है एक मानव जब चित्त में स्वप्न को दृष्टिपात करता है तो चित्त में जो संस्कार निहित होते हैं और चित्त के संस्कारों को वह स्वप्न अवस्था में यह आत्मा के प्रकाश से

उन संस्कारों को साक्षात्कार भोगता बन जाता है वह भोगता रहता है। हे राजन! तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा जो मैं तुम्हें निर्णय करा रहा हूँ। आत्मा का प्रकाश है मन उसके प्रकाश में संसार को दृष्टिपात करता रहता है। शरीर में नद नदियों नही होती नद नदियों का निर्माण कर लेता है पत्नी नही होती पत्नी का पत्नियों का निर्माण कर लेता है पति नही होते पतियों का निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार यह निर्माण करता रहता है कहीं समुद्रों का निर्माण हो रहा है राष्ट्र नही होते वह राजा बन जाता है धिराज बन जाता है परन्तु आत्मा का प्रकाश में यह मन अपने चित्त के मण्डल में निहारता रहता है। चित्त का मण्डल इतना विशाल मण्डल है जिस पर जब मानव विचार विनिमय करता है तो नाना प्रकार की आभाओं का उपजलब्धियां हो करके मानव चित्त के मण्डल को दृष्टिपात करने लगता है कुक्कुट मुनि महाराज ने कहा कि मेरे जो महापिता थे सोगनी मुनि महाराज वह अपने चित्त के मण्डल को निहारते रहे हैं। उन्होंने मुझे दृष्टिपात कराया कि चित्त के मण्डल में करोड़ों जन्मों के संस्कार निहित रहते हैं। उन संस्कारों को निहारते निहारते वह चित्त के मण्डल के पार हो जाता है।

जब ऋषि ने यह वर्णन कराया तो राजा रावण बोले कि धन्य है प्रभु ऋषि ने कहा कि राजन् तुम्हें यह प्रतीत भी होगा कि संसार में यह मन ही आत्मा के प्रकाश में राष्ट्रों की प्रतिभा में रत्त हो जाता है ओर समुद्रों की अन्तिम चरण सीमा पर चला जाता है समुद्रों में जो विज्ञान है, जो मार्मिकता है नाना प्राणियों को यह रचित्त कर देता है। विचार क्या कि हमारे यहां सूक्ष्म रूपो से जो अंकुर विद्यमान होते हैं उन अंकुरों को यह साक्षात्कार भोगने लगता है जब यह आत्मा स्वप्न भी नही हैं तो यह सुषुप्ति भी नही कहलाती क्योंकि अववृतम् ब्रह्मा चित्तम् मण्डलम् बृहे वाचस्प्रभा सम्भूति ब्रह्मो महात्मा कुक्कुट मुनि ने निर्णय कराया कि यह जो आत्मा है यह जो आत्मा है यह सुषुप्ति भी नही हैं क्योंकि मन, बुद्धि ओर चित्त और अहंकार यह चतुष्टय अन्तःकरण कहलाता है। इस अन्तःकरण में जब यह सुषुप्ति में चला जाता है तो अन्तःकरण एक दूसरे में लय हो जाता है जैसे बुद्धि मन में मन बुद्धि में बुद्धि चित्त में चित्त अहंकार में और यह चतुष्टम अन्तःकरण बन जाता है उस समय यह आत्मा सुषुप्ति में संसार के अपने

क्रियाकलापों को त्याग देता हैउस समय कौन जागता है? यह प्राणों के साथ में, यह आत्मा का प्रतीक कहलाता है जिससे मानव के साथ रहने वाला है, उसको वेद का आचार्य प्रणव कहता है ऋषि ने आत्मा न जाग्रत है न सुषुप्ति है। यह आत्मा एक रस रहने वाली है मानो संसार में निहित रहती है, देखो, प्रणव उसको गति करने वाला, अभ्योदप्त होने वाला है।

जब ऋषि ने यह निर्णय कराया तो राजा रावण के हृदय में शान्ति की स्थापना हो गई। उन्होंने कहा धन्य है प्रभु, आपने मुझे शान्ति की आभा मं े पंहुचा दिया है आगे आत्मा की चर्चा करते हुए ऋषि ने कहा कि आत्मा के प्रकाश से पंचाग्नियां में प्रकाश आ जाता है पंचाग्नियों में प्रकाश आ जाता है प्रचं ब्रह्मे मानो उसी के काल यह जागरूक रहता है, चेतनामयी बना रहता है, जिसके चले जाने पर यह मानव शरीर शून्य गति को प्राप्त हो जाता है और जिसके चले जाने पर यह मानव शरीर शून्य गति को प्राप्त हो रहता है और जिसके रहने से यह मानव चेतना में बना रहता है चेतना का नाम मानव की आत्मा है, शून्यता का नाम पश्च महाभूतों की प्रतिक्रियाओं को कहा जाता है। ऋषि ने जब यह निर्णय कराया तो राजा रावण आत्मा प्रसन्न हो गएं और उन्होंने कहा धन्य है। इस विचार के होते होते सांय काल से प्रातःकाल हो गया, प्रातःकाल होते ही रावण के हृदय में एक विचार आया और उन्होंने कहा ऋषिवर! मेरी इच्छा यह है कि आप लंका का भ्रमण करें क्योंकि आपको बहुत समय हो गया है लंका में वास किये, आप लंका का गमन करें। ऋषि ने कहा हे राजन! मुझे इतना समय पर्याप्त समय नही हैं कि मैं तुम्हारे राष्ट्र को दृष्टिपात करा रहूँ। मैं प्र्रभु के चिन्तन में लगा रहता हूँ, मैं प्रभु की आभा में सदैव निहित रहता हूँ, मुझे इतना समय नही हैं। राजा नम्र थे। राजा ने प्रार्थना की, और ऋषियों का हृदय प्रायः उदार होता है, ऋषि ने कहा हे रावण तुम्हारी इच्छा है तो मैं तुम्हारी लंका को भ्रमण करूंगा

ऋषि प्रातःकालीन अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके प्रभु का ध्यानावस्थित कर्मकाण्ड से निवृत्त हो करके राजा रावण के वाहन में विद्यमान हो करके महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज के वहां से गमन किया और भ्रमण करते हुए, ऋषि मुनियों से भ्रमण करते

हुए उन्होंने वहां से लंका में आगमन किया।

जब लका में आए तो सबसे प्रथम राजा रावण ने ऋषि को राष्ट्र गृह में आगमन कराया, राष्ट्रगृह में महारानी मन्दोदरी से राजा ने कहा हे दवी! ऋषि को नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराओ, यह क्षुधा से पीड़ित हैं। महारानी मन्दोदरी ने नाना पदार्थों का पान कराया ओर पान कराते हुए उन्होंने कहा कि भगवन! आप तो बहुत समय के पश्चात लका में पधारें हैं, आपकी साधना तो मुझे अति प्रगतिशील प्रतीत हो रही है। महारानी मन्दोदरी ने नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराते हुए अन्त में कहा कि हे प्रभु! मेरी इच्छा है कि आप लेका से जब प्रस्थान करेंगें तो मेरे पति को भी कोई ऊँची शिक्षा देते जाएेगें।

देखो, कोई पुत्री ऐसी नही है जो पति में किसी प्रकार का अवगुण चाहती हो। सदैव पत्नी की एक ही कामना रहती है कि, मेरा पति पाण्डितव भी होयोगी भी हो, महान बने ओर विचित्रता में सदैव गमन करा रहे और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता भी हो। पुत्रियों की यह सदैव कामना परम्परगतों से बनी रहती है। वह बात हो रही थी कि ऋषि ने कहा देवी! जब मैं यहां से गमन करूंगा तो मैं प्रयत्नशील रहूँगा। इतने में राजा रावण भी आ गये। और उन्होंने कहा कि भगवन! आप मेरी लका का भ्रमण कीजिए।

मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है कि राजा रावण तथा वायु गोत्रीय महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज दोनों ने वहां से गमन किया ओर भ्रमण करते हुए सबसे प्रथम वह कुबेर भवन में गये। राजा रावण ने कहा कि हे प्रभु! यह मेरा कुबेर भव है, इस भवन का निर्माण महाराजा कुबेर ने किया है क्योंकि लंका का जो वंशलज है वह बड़ा विचित्र है उन्होंने कहा कि लंका का जो वंशलज है वह बड़ा विचित्र चल रहा है, उन्होंने कहा कि लंका में मुझसे पूर्व लंका का स्वामी महाराजा महिदन्त था, महाराजा महिदन्त से पूर्व लंका का स्वामी विक्रम था विक्रम से पूर्व लंका का स्वामी महाराजा शिव थे महाराजा शिव हिमालय के आंगन में गति करते थे महाराजा शिव से पूर्व लंका का स्वामी क्रेनकेतु था, क्रेनकेतु से पूर्व पनपेतु महाराज थे और पनपेतु महाराज से पूर्व लंका का स्वामी कात्यानी था कात्यानी से पूर्व लंका स्वामी सुरगेति था सुवरेणी से पूर्व लंका का स्वामी

श्वेतकेतु था, श्वेतकेतु से पूर्व लंका का स्वामी सोमभानु था सोमभानु से पूर्व लंका का स्वामी श्वेतकेतु था श्वेतकेतु से पूर्व लंका का स्वामी यज्ञदत्त था, यज्ञदत्त से पूर्व लंका का स्वामी सोमपान था सोमपान से पूर्व लंका का स्वामी मानकृति था मानकृति से पूर्व लंका को स्वामी सूयेतकेतु था, सुयेतकेतु महाराजा से पूर्व पूर्व गिरिवाणी था, गिरिवाणु से पूर्व कच्छकेतु था कच्छ राजा से पूर्व लका का स्वामी रेनकेतु था, मृगकेतु से पूर्व लका का स्वामी मिरिकी नाम राजा था और मिरकी से पूर्व श्वेत नाम के राजा राज करते थे

राजाओं की यह परम्परा इस प्रकार चली आई है। मैंने कुबेर से लंका विजय की थी कुबेर ने यह लंका महाराजा महिदन्त से अपना ली थी इसीप्रकार लका का यह राज वंशज चला आ रहा है। राजा रावण ने कहा हे प्रभु! यह परम्परा रही है नाना प्रकार के भवन हैं इसका निर्माण कुबेर ने किया फिर वे शिव भवन में ले गएं जो स्वर्ण का भवन था। उन्होंने कहा भगवन! मेरे यहां स्वर्ण के भवन हैं। वह दृष्टिपात कराने लगे। ऋषि ने कहा राजन! तुम्हारा राष्ट्र तो बड़ा प्रिय लग रहा है मुझे प्रतीत नही था कि तुम्हारा राष्ट्र इतना प्रिय है। राजा आगे भ्रमण कराते हुए, नाना भवनों का निरीक्षण कराते हुए बोले आओ अब मैं विज्ञानशाला में ले जाना चाहता हूँ। सबसे प्रथम वह पृथ्वी अनुसन्धानशाला में ले गये। उन्होंने कहा कि भगवन! मेरे यहां पृथ्वी अनुसन्धानशाला है नाना वैज्ञानिकजन हैं जो पृथ्वी के ऊपर अन्वेषण करते हुए वह लोक लोकान्तरों की याख करने में सफलता को प्राप्त होते रहे हैं आगे पृथ्वी विज्ञानशाला को त्याग करके वह अमृतशाला में गएं जाहं जल के ऊपर नाना प्रकार का अन्वेषण हो रहा था। यह जल क्या है यह अमृत है यह ही प्राण सत्ता को प्रदान करने वाला है उन्होंने क्रियात्मक जल पर अन्वेषण किया है, समुद्रों की तरंगों में मानो आभाओं में रत्त होते रहे हैं।

आगे वह अग्नि अनुसन्धानशाला है। यहां अग्नि कहा कहां, किस किस प्रकार की अग्नि उदबुद्ध होती रही है। एक अग्नि बड़वानल नाम की कहलाती है, जब समुद्रों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है तो जल प्लावन आ जाता है। एक अग्नि गृहपथ्य नाम की अग्नि होती

है जो गृह को स्वर्ग बना देती है जब पति पत्नी गृह में वास करते रहते हैं उनके विचारों में दर्शनों की महानता को स्रोत बहने लगता है तो उस अनुसरण करने वाले बाल्य बालिका होते हैं तो स्वर्ग बन जाता है एक अग्नि वह कहलाती है जो विद्यालयों में प्रदीप्त रहती हे तपा हुआ आचार्य विद्यालयों को पवित्र बनाता है, ब्रह्मचारी उनका अनुसरण करते रहते हैं वह अग्नि अनुसन्धानशाला है जहां अग्नि के परमाणु के ऊपर अन्वेषण किया जा रहा हे यह अग्नि जल को निगल जाती है, परमाणु रूप बना देती है। उसमें चन्द्रमा भी सहायक बना रहता है और सूर्य की नाना किरणें उनको अपने में उन किरणों को धारण कर लेती है। ऋषि इस विज्ञानशाला को दृष्टिपात करके आश्चर्य में हो गए और बोले हे राजन! मुझे यह प्रतीत नही था कि तुम्हारा इतना उन्नत राष्ट्र उन्नत हो रहा है विज्ञान इतना महान है।

आगे वह सूर्य अनुसन्धानशाला में ले गए और बोले महाराज! यह सूर्य अनुसन्धानशाला करने वाले वैज्ञानिक नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करते रहते हैं जो किरणों के साथ यन्त्र गमन करके, सूर्य लोक की यात्रा करके आता रहता है। उन्होंने कहा कि सूर्य की कोई यन्त्र परिक्रमा कर रहा है जो ऊर्ज्वा को ले करके आर्धुय हो रहा है। इसी प्रकार विज्ञान हमारे यहां वैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न रूपों में जानने का प्रयास किया है। ऋषि बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा कि किरणों के साथ यान गति कर रहा है। किरणें अपनी अपनी आभा को ले करके ऊर्ज्वा देती रहती हैं। वहां से भी गमन किया तो वह चन्द्रशाला में ले गए और कहा कि हे प्रभु! यह मेरे पुत्र नारायन्तक हैं जो चन्द्रमा तक की यात्रा करते रहते हैं यह इतने अभ्यस्त हो गए हैं यानों में विद्यमान हो करके एक रात्रि और एक दिवस में यह चन्द्रमा में चले जाते हैं और इतना समय ही इन्हें आने के लिए पर्याप्त होता है। अब ऋषि नारायन्तक से चर्चा करने लगे कि तुम्हारी चन्दमा में जाने की बड़ी अभ्यस्त गति है, तुमने और क्या जाना है? नारायन्तक ने कहा, प्रभु आपके तो यह प्रतीत है कि हमने महर्षि भारद्वाज मुनि के विद्यालय में नाना प्रकार के विज्ञान को जानने का प्रयास किया है, जहां हम चन्द्र यात्री बनते हैं तो और भी नाना लोक लोकान्तरों में गति करते रहते हैं तब ऋषि बोले कि तुम्हारी किस किस लोक में

किस किस प्रकार की गति है। उन्होंने कहा आपने यह तो जाना ही है कि भारद्वाज मुनि के यहां ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी कवन्धि नाना प्रकार के विज्ञान में रत्त रहे हैं और हमने भी उनके ही द्वारा इस शिक्षा और विज्ञान को पाने का प्रयास किया है। मुझे यह तो प्रतीत है परन्तु तुमने कितना जाना है। उन्होंने कहा कि प्रभु हमारे यहां इस प्रकार का यन्त्र है कि हम उसमें विद्यमान हो करके जब उड़ान उड़ते हैं तो मंगल में चला जाता है और मंगल से उड़ान उड़ उड़ते हैं तो स्वाति में चला जाता है और स्वाति से उड़ान उड़ते हैं तो वृत्तिक मण्डल में चला जाता है, अरुणा मण्डल से उड़ान उड़ी तो वशिष्ठ मण्उल में चला जाता है, वशिष्ठ मण्डल से उड़ान उड़ी तो अचंगवृत्ति के मण्डलों में रमण कर जाता है। मूल यह हे कि बहतर लोकों का भ्रमण करके यह यान पुनः हमारे विज्ञानशाला में प्रवेश हो जाता है।

ऋषि ने जब यह श्रवण किया तो ऋषि का अन्तरात्मा गद्गद् हो गया और उन्होंने कहा कि धन्य है मुझे यह प्रतीत नही था कि तुम्हारा राष्ट्रीय विज्ञान इतना विशाल बन गया है। उस समय राजा रावण ने कहा कि मैं आपको आगे भ्रमण कराऊं तो विज्ञानशाला से गमन कर नाना चिकित्शालाओं में पंहुच गए जहां अश्विनी कुमार दोनों चिकित्सा करते रहते थे। सुकेन वैद्यराज भी मानो अपने में अन्वेषण करते रहते थे नाना प्रकार की औषधियां उनके स्वप्न में अपने गुणों का वर्णन करती रहती थी। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत है, ऐसा श्रवण किया है सम्भूति ब्रह्म वाकों देवम् ब्रहा विज्ञानाः वेद की आख्यिकका वर्णन करते हुए महात्मा कुक्कुट मुनि ने अश्विनी कुमारों से कहा कहीं अश्विनी कुमारा तुम्हारे विज्ञान में इस चिकित्सा में कितनी उन्नति है। उन्होंने कहा कि हे प्रभु! हम चिकित्साशाला में विद्यमान हैं यहा चिकित्सा करते रहते हैं चिकित्सा में अभी तक हमारी इतनी उन्नति हुई है कि हम मानव के हृदय को औषधियों में छः छ5 माह तक नियुक्त करके और छह माह के पश्चात दोनों का समन्वय करके पुनः मानव शरीर में गति प्रदान कर देते हैं अभी हमारी इतनी ही उन्नति हुई है आगे हो सकता है, अभी अनुसन्धानशाला कर रहे हैं अन्वेषण कर रहे हैं हम कहां तक जाते हैं यह हमें कोई प्रतीत नही हैं।

जब ऋषि ने यह दृष्टिपात किया तो ऋषि आश्चर्य चकित हो गये। उन्होंने कहा हे रावण

तुम्हारा राष्ट्र तो मुझे बड़ा ही प्रिय लग रहा है। नाना वैद्यराजों से चर्चा करते हुए और अश्विनीकुमारों से चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि यह विज्ञान तुम्हें कहां से प्राप्त हुआ है। अश्विनी कुमारों ने कहा कि जब हम बाल्यकाल में माता की लोरियों को पान करते थे तो हमें यह शिक्षायें माता से प्राप्त हुई। माता हमें प्रायः इस प्रकार की शिक्षाओं को प्रदान करती रहती थी। ऋषि ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया और वहां से भ्रमण करते हुए मार्ग शालाओं में गए।

राजा रावण ने कहा प्रभु! वह मेरे राष्ट्र में मार्गशाला है मार्गवेत्ता विद्यमान हैं नाना प्रकार के मार्गों में निर्माण में लगे रहते हैं। सुन्दर मार्गों का निर्माण करते रहते हैं उन्होंने मार्गवेत्ताओं से नाना प्रकार की चर्चायें की तो बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने नाना क्रियाकलापों को दृष्टिपात किया। अन्त में सब भ्रमण कराने के पश्चात राजा रावण ने कहा कहो भगवन! मेरा राष्ट्र आपको कैसा प्रतीत हुआ है। महात्म कुक्कुट मुनि ने कहा हे रावण मुझे तो तुम्हारा राष्ट्र बहुत ही प्रिय लग रहा है परन्तु भ्रमण करने के पश्चात ऐसा हुआ है कि तुम्हारी लंका में कुछ काल के पश्चात अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी।

जब ऋषि ने यह कहा तो राजा रावण ने नतमस्तक को करके कहा प्रभु! आपने ऐसा क्यों कहा है? उन्होंने कहा कि मैंने यह इसीलिए कहा है कि तुम्हारे राष्ट्र में नाना ऊँचे ऊँचे भवन हैं, स्वर्ण के भवन हैं नाना प्रकार की चिकित्साशालाए हैं पृथ्वी अनुसन्धानशाला है अग्नि अनुसन्धानशाला है। नाना प्रकार की शालाएं तुम्हारे राष्ट्र में हैं, ऊँचे ऊँचे मार्ग हैं चिकित्साशालाए हैं हे रावण मुझे ऐसा दृष्टिपात इसीलिए हो रहा है क्योंकि तुम्हारे राष्ट्र में कोई चरित्रशाला नही हैं और जिस राजा के राष्ट्र में चरित्रशाला नही होती है उस राजा का राष्ट्र आज नही तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा।

राजा रावण नतमस्तक हो गए और बोले प्रभु वास्तव में मेरे राष्ट्र में चरित्रशाला की बहुत सूक्ष्मता है ऋषि ने कहा हे रावण तुम्हें प्रतीत है कि जिस समय तुम्हारा राज्यभिषेक हुआ था तुम्हारे महापिता महात्मा पुलतस्य ने मुझे सभापतित्व को प्रदान किया था और तुम्हारा बाल्यकाल का नाम वरुण था, और उन्होंने कहा कि तुम इसका राज्यभिषेक करो। मैंने तुमरे मस्तिष्क का अध्ययन करने के पश्चात यह कहा था कि यह राष्ट्र का

अधिकारी नही हैं क्योंकि राष्ट्र का अधिकारी वह होता है जो समाज को मानवीयता और चरित्र की प्रतिभा को प्रदान कर सके, राष्ट्र उसी से ऊँचा बना करता है। उस समय मैंने मस्तिष्क का अध्ययन करके यह कहा कि हे पुलतस्य मैं राज्यभिषेक नहीं करूंगा क्योंकि यह समाज को विज्ञान दे सकता है यह भौतिकवाद दे सकता है यह समाज को आध्यात्मिकवाद नही दे सकता। यह समाज को भव दे सकता है परन्तु चरित्र नही दे सकता। महात्मा कुक्कुट ने कहा कि जब मुझे यह कहा गया कि महाराज! मेरी इच्छा यह है तो मैं पिछले भाग में विद्यमान हो गया और महात्मा भुंजु ने तुम्हारा राज्याभिषेक किया। आज जो मैंने उस समय कहा था उसे मैं दृष्टिपात कर रहा हूँ। हे रावण तुम्हारा राष्ट्र विज्ञान में पारायण है अस्त्र शस्त्र तुम्हारेयहां महान हैं वरुण अस्त्र हैं, अग्नि अस्त्र हैं नाना यन्त्र सूर्य की परिक्रमा कर रहे हैं, ध्रुव की परिक्रमा कर रहे हैं नाना यात्री हैं परन्तु उसके पश्चात इस विज्ञान से यदि मानवता नही हैं, चरित्र नही हैं तो यह विज्ञान नग्न रह करके स्वतः भस्म हो जाता है। यदि भवनों में चरित्र नही रहेगा तो ऊँचे ऊँचे भवनों से राष्ट्र ऊँचा बनता है मानवीयता से और चरित्रता से ऊँचा बना करता है। राजा रावण ने जब यह वाक्य श्रवण किया तो मौन हो करके ऋषि ने कहा कि मुझे आज्ञा दीजिए मैं अपने आसन को गमन कर रहा हूँ राजा रवण ने कहा प्रभु! वाहन में चलें वाहन में विद्यमान हो करके ऋषि अपने आंगन में आ गए।

विचार विनिमय क्या इन विचारों को उच्चारण करने का जैसे ऋषि ने कहा था वैसा ही लंका में हुआ। तो परिणाम क्या हमारे इन वाक्यों का उच्चारण करने का? राष्ट्र में विज्ञान ऊँचा होना चाहिए परन्तु चरित्र और मानवता का अभाव नही रहना चाहिए। तभी राष्ट्र ऊँचा बनेगा।

आज का वाक् क्या? वेद का मन्त्र कह रहा था कि राजा ब्रह्मवेत्ता हो और राजा अपने में सुचरित्र, इन्द्रियों पर संयम करने वाला हो, इन्द्रियों पर यज्ञ करने वाला हो। इस प्रकार का राष्ट्र समाज में मानवता और शान्ति की स्थापना कर सकता है।

राजा का नाम विष्णु है जो अपनी इन्द्रियों पर विजय करके राष्ट्र का पालन करता है। विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का और माता का नामोकरण भी विष्णु कहलाता है जो

पालन करने वाले हैं। एक ही शब्द है जो पालन करता है, उसी का नाम विष्णु कहलाता है यह है आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से हो जाएं आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा ओ३म् ब्रह्म पिता आभ्यां दतऊ आपाः ओ३म् यशश्चयाम् गायन्त्याः मानाः। ओ३म् स्वम् भद्राः मा गतम् मृवा मृणीकम् रथा आ पाः। ओ३म् सर्वं भद्रा माम् हिरण्या

१६ 11 04 1986 पुष्प 53 राष्ट्रोत्थान हेतु महानन्द जी के विचार

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस महान् मेरे प्रभु की महिमा का गुण गान गाया जाता है क्योंकि वह जो मेरा अनुपम देव है वह यज्ञमयी स्वरूप माना गया है।

प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन करता रहता है। आज का वेदमन्त्र यागों के सम्बन्ध में वह अपनी विवेचना कर रहा है। वास्तव में तो हम परम्परागतों से ही, नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे यहाँ होता रहा है क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकार के हमारे यागों का कर्मकाण्ड अथवा उसके उनकी जो वृत्तियां हैं अथवा उनका जो क्रिया कलाप है वह परम्परागतों से ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में प्रायः नृत्य होता रहा है अथवा गतिशील रहा है। तो हमें विचार विनिमय करना चाहिए कि हमारे यहाँ नाना प्रकार के यागों का चलन परम्परागतों से ही माना गया है। हमने बहुत पुरातन काल में अपना निर्णय देते हुए कहा था कि हमारे यहाँ भिन्न भिन्न प्रकार के यागों में अहिंसा और मानवीयता से गुथे हुए क्रिया कलाप का नाम ही याग माना गया है। जो हिंसा से रहित होता है। वह अहिंसा में सतत ब्रह्मवाचोः वह अहिंसा से गुथा हुआ मानवीयतव सदैव निहित रहा है इसके ऊपर हमारे यहाँ ऋषि मुनि परम्परागतों से अनुसन्धान करते रहे हैं। इसीलिए हमारे यहाँ याग का अपना बड़ा महत्त्व माना गया है। प्रत्येक क्रिया कलापों में याग का अपना महत्त्व और अपनी मानव विशिष्टता रही

है। उसके ऊपर परम्परागतों से ऋषियों ने अपनी साधना के सम्बन्ध में भी याग का चलन माना है और उसकी पवित्रता में लाने के लिए सदैव तत्पर रहे हैं।

जितना भी संसार का सुक्रिया कलाप है नित्य प्रति क्रियाओं के आने वाला जो नृत्य है उन्हें सर्वत्रता में यागों की वृत्तियां मानी है और यह कहा है ऋषियों ने कि हम प्रत्येक रूप में याग को स्वीकार करते हैं क्योंकि यह पालन करने वाला है। हमारे यहाँ जैसे विष्णु याग का प्रायः वर्णन आता रहता है, रुद्रयाग का वर्णन आता रहता है, वाजपेयी यागों का वर्णन आता रहता है, अग्निष्टोम याग और देवी यागों का भीवर्णन प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में अनेक यागों का वर्णन है जैसे वृष्टि याग है, अति वृष्टि ही नहीं है उस वृष्टि को शान्त करने के लिए भी हमारे महान् तपस्वियों ने याग को विशेष माना है, उसकी अग्रणीय माना है। वह हमारे यहाँ अग्निष्टोम याग में भिन्न भिन्न प्रकार के क्रिया कलापों का वर्णन आता रहा है। मुझे भी स्मरण आता रहा है कि यहाँ नाना प्रकार के यागों का जो कर्मकाण्ड है, वह मानवीय धाराओं में और आत्मिकता में निहत रहता है। इसीलिए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है हे मानव! तू अहिंसा परमोधर्मः अहिंसा से गुथा हुआ मानव दर्शन को तू परमपिता परमात्मा के रचाए हुए इस भव्य याग में, भव्य यज्ञशाला में ले चल क्योंकि यज्ञशाला का अभिप्राय यह है कि वहाँ वेदों की ध्वनियां होती हैं, जहाँ वेद रूपी प्रकाश मानव के समीप होता हो, मानव तू अग्रणीय बन करके उस यज्ञशाला में ले चल। तो अब यह जब पुकार वैदिक साहित्य से होती हे तो आचार्यजन इसके ऊपर विचार विनिमय करते रहते हैं।

मेरे प्यारे! कहीं कहीं तो यह स्वीकार किया गया है आचार्यों ने विज्ञान के वाङ्मय में जा करे कि नाना नाना प्रकार की चित्रावलियां बन करके यज्ञ शालाओं में यज्ञ यन्त्रों में प्रायः दृष्टिपात मानी रहती है। जिसका वर्णन हम कई कालों में प्रगट भी कराए हैं। आज भी हमारा मूल वृत्तियां होने वाली है, जैसा हमारे यहाँ मेरे प्यारे! आदि ऋषियों ने नाना ऋषियों के ब्रह्मवाचो प्रवाहः लोकाम् ब्रह्माः वयु सर्गां ब्रह्म वृताः। देखो, ऋषिवर साधना में परणित हो रहे हैं ओर यह अपने वायुमण्डल को पवित्र बनाने के लिए सुगन्धित, पुष्टिकारक और रोगनाशक परिमाणुओं का जन्म देने के लिए वह याग में

परणित हो गए हैं और वह यागों के चलन में अपनी वृत्तियां ले गए हैं और उन्होंने याग की रचनाएं की हैं और याग में उन्होंने इतना गम्भीर अध्ययन किया है। जैसे यज्ञमान याग कर रहा है, एक ऋषि मैंने भी वर्णन किया है उद्दालक गोत्र में, हरीतत गोत्र में एक ऋषि हुए हैं जिनका नाम स्वाति श्वेतकेतु कहलाता था। श्वेतकेतु ने एक समय यह विचार कि मैं याग ब्रह्मे मैं साधना में परणित होना चाहता हूँ। तो साधना के लिए वह अनुष्ठान जब करने के लिए तत्पर हुए, तो उन्होंने याग की रचना की।

उन्होंने यह विचार कि मैं जब तक अपने बाह्य जगत् में अंग संग के आसन को पवित्र वायुमण्डल नहीं बना सकूंगा, मैं अपने यागों में सफलता को प्राप्त नहीं होऊंगा और मेरी साधना भी नहीं बन सकेगी। मैं प्राण और मन की प्रतिभा में जाना चाहता हूँ। परन्तु प्रकृति के गर्भ को जानना चाहता हूं तो मेरे पुत्रों! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि जब वह याग करने लगे, तो कहीं से मुनिवरों! देखो, महर्षि पुण्डरेतवर ऋषि महाराज भ्रमण करते हुए वह अपने विद्यालय में ब्रह्मचारियों को कुछ दण्डित करके आश्रम में आ पधारे। श्वेतकेतु मुनि महाराज याग कर रहे थे, और मुनिवरों! पुण्डरीक ऋषि महाराज ने आ करके याग प्रारम्भ उनके साथ में आहुति देना प्रारम्भ किया, तो उनके विचारों में रजोगुण, तमोगुण छाया हुआ था। वह दण्डित करके ब्रह्मचारियों को विद्यालय से पधारे थे। तो उसे समय मुनिवरों! देखो, श्वेतकेतु ने कहा कि हे ब्रह्मवेत्ता! हे ब्राह्मण! तुम जो यह मेरे समीप याग करने लगे हो तुम्हारे मन की जो तरंगें है, तुम्हारे हृदय की जो तरंगे हैं, वह दूषित हैं और दूषित परिमाणुओं को जन्म दे रही हैं। तो मेरे पुत्रों! जब उन्होंने यह कहा तो पुण्डरीक ऋषि ने उन वाक्यों को स्वीकार कर लिया और यह कहा कि प्रभु! वास्तव में मेरे हृदय में रजोगुण और तमोगुण छाया हुआ है। मैं विद्यालय से पधार रहा हूँ और ब्रह्मचारियों को विद्यालय में दण्डित करके आ रहा हूँ। मेरे हृदय में जहाँ रजोगुण छाना था वहाँ तमोगुण भी छा गया और तमोगुण रजोगुण के छाने से मुझे सतोगुण में जाना था, वह मैं नहीं जा सका हूँ। तो मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ प्रभु! मुझे क्या करना चाहिए? तो मुनिवरों! देखा उन्होंने कहा कि अब तुम एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके अपने में सतोगुण को लाने का प्रयास करो। न्यौदा में से

पुनः से वेद मन्त्रों का अध्ययन करो, उनसे चिन्तन और मनन करो जिससे तुम्हारा हृदय पुनः से पवित्र हो जाए।

तो कुछ ऐसा स्मरण है कि वह ऋषि अपनी एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके जब उन्होंने कई दिवस तक वेदों का मधुर गान गाना प्रारम्भ किया, उस गान के गाने से उसके ऊपर मनन और चिन्तन करने से मुनिवरों! देखो, उनका हृदय पुनः से पवित्र हो गया और पवित्र हो जाने से उसके पश्चात् उनका अनुष्ठान होना था, उस याग में पुनः से परणित हो गए। याग में आहुति देने लगे, स्वाहा उच्चारण करने लगे। तो विचार यह है कि याग मुनिवरों! देखो, साधना का मुख्य एक वृत्तियां कहलाती है। इसीलिए हमें अपने विचारों, हृदयों को इतना विशुद्ध बना लेना चाहिए, जिससे याग हमारा देवता बन करके देव पूजा बन करके वह वायुमण्डल को पवित्र बना सके, मानव के हृदयों को पवित्र बना सके। आज मैं विशेष चर्चा तुम्हे देने नही आया हूं, बेटा! देखो, याग का जो अध्वर्यु है वह सूर्य माना गया है, वह प्रकाश देने वाला है नाना नाना प्रकार की किरणों से बेटा! वह नाना नाना प्रकार की याग की तरंगों को अपने में भरण कर लेता है।

तो आज मैं बेटा! याग के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए याग करें। याग होते हैं, यागों में दर्शनों का उपदेश होता है दर्शनों की प्रतिभा में मानव रत्त हो जाता है। इससे पूर्वकाल में हम तुम्हें प्रगट कर रहे थे, हम माता वसुन्धरा की याचना कर रहे थे। वसुन्धरा में हमारी जननी माता पृथ्वी माता और वही वसुन्धरा को चैतन्य देव जो संसार का धिपति माना गया है, जो संसार को अपने में धारण कर रहा है, नाना नाना प्रकार की मालाओं को अपने में अर्पित करके संसार को माला के रूप में दृष्टिपात करा रहा है। जब दार्शनिकजन अपनी आभा में परणित होते हैं, तो संसार की माला बना करके अपने कंठ में धारण करके उसको आलंगिन करके अपने में धन्य धन्य हो जाते हैं।

तो मेरे पुत्रों! देखो, वहीं सभा में जाना चाहता हूँ। जिस सभा में मुनिवरों! देखो, महर्षि

शिकामकेतु महाराज जो उद्दालक गोत्रीय कहलाते थे उद्दालक गोत्रीय ऋषियों के यहाँ प्रातःकालीन याग होना और याग के पश्चात् अपने अपने मानवीय कल्याण के लिए उपदेश देना यह परम्परा का एक नृत्य माना गया है। परम्परागतों से ही, एक ही स्थली पर नहीं, जब भारद्वाज मुनि के आश्रम में ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे, प्रातःकालीन याग करते थे और यन्त्रों के द्वारा अपने चित्रों का दर्शन करते रहते थे, तो मुनिवरों! देखो, देखो, वह यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपना आत्मीय जो चिन्तन है, आत्मीय जो विचारधारा है उसे प्रायः वह प्रगट करते रहे हैं। उसका उपदेश मंजरियां, उपदेश होना उस उपदेश को सक श्रवण करके अपनी अपनी महानता में रत्त रहना है। तो इनके पूर्वकाल में ब्रह्मचारी सुकेता का उपदेश हुआ और देखो, महर्षि वैशम्पायन के विचार श्रवण किए और इसी विचार में महर्षि प्रवाहण ने अपने ब्रह्मवेत्ता होने का अपना विचार व्यक्त किया। उसके पश्चात् मुनिवरों! देखो, महर्षि दालभ्य उपस्थित हुए। महर्षि दालभ्य मुनि बोले कि संसार में जैसे यह भौतिक याग चल रहा है जैसे भौतिक याग में मानव परणित हो रहा है, इसी प्रकार मानव को आध्यात्मिकवाद में ही प्रवेश करना चाहिए। आध्यात्मिक चिन्तन करने वाला याज्ञिक यह विचारता है कि प्रकाश कहाँ से प्राप्त होता है। प्रकाश के लिए वह सदैव तत्पर रहता है, अन्धकार को नष्ट करने में तत्पर रहता है और प्रकाश को लाने में प्रयास करता रहता है।

यह जो वेदों के मन्त्र हैं, वेदों की जो ध्वनियां हैं, जो भिन्न भिन्न प्रकार से वेदों का जो उद्गीत गाने वाले हैं जैसे जटापाठ, मालापाठ, घनपाठ, विसर्गपाठ उदात्त और अनुदात्त में वेदों का गान गाया जाता है। वेद की प्रत्येक मन्त्रों की एक मानो वह मनका बना करके और मनका बनाने के पश्चात् वह ब्रह्मावाचो वह किसी सूत्र में पिरो देता है और वह सूत्रों में परणित हो करके एक माला बन जाती है और उस माला को मुनिवरों! देखो, धारण करने लगता है अपने हृदय में, मानव अपने कंठ में आलिंगन करके अपने को धन्य बन जाता है। उसके पश्चात् वह प्रकाश कहलाता है। वह जो प्रकाश है वह मानव के मानवीय प्रकाश में रत्त हो जाता है। जैसे प्रातःकाल से सूर्य उदय होता रहता है, सूर्य उदय हो करके नाना प्रकार की ऊर्ध्वा देता है, प्रकाश देता है, प्रकाश में रत्त

हो जाते हैं। सूर्य नेत्रों का देवता बन जाता है, नेत्रों को प्रकाशित करने वाला, नेत्र प्रकाशित हो जाते हैं। इसी प्रकार जो वेदों का अनुपम प्रकाश है वह मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित बना देता है। जैसे मुनिवरों! सूर्य नेत्रों का प्रकाशक है, उसी प्रकार वेदरूपी जो प्रकाश है, वेद रूपी जो विज्ञान है वह मानव के अन्तःकरण को पवित्र बना देता है। ऋषि ने कहा हमें वेद के एक एक शब्दों को अपने में चिन्तन में लाते हुए प्रकाश में जाना चाहिए। सूर्य जैसे ऊर्ज्वा को ले करके नाना यन्त्रों में वैज्ञानिक प्रवेश हो जाते हैं। इसी प्रकार जब वेद रूपी सूर्य को, वेद रूपी प्रकाश को अपने अन्तःकरण में दृष्टिपात किया जाता है तो वह प्रकाश मानव का एक द्वितीय रूप को धारण करके मानव को अनुपम बना देता है। वह प्रकाश में रत्त हो करके मुनिवरों! देखो, प्रभु के गुणगान गाता रहता है। हिंसक प्राणी उनके समीप नहीं आता, वह अहिंसा में परणित होते हुए अपनी आभा में नियुक्त हो जाते हैं।

तो मैं विशेष विवेचना ने देता हुआ, आज का विचार क्या कह रहा है? हे मानव! तू याज्ञिक बन करके भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का चयन कर, उसमें अहिंसा से गुथा हुआ तेरा चयन रहना चाहिए, तेरे क्रियाकलाप रहने चाहिए क्योंकि वही क्रिया तेरे जन्म जन्मान्तरों के क्या वह चित्त के मण्डल में निहित हो जाती है और वही चित्त का मण्डल संस्कारों का तारतम्य बन करके संस्कारों की प्रतिभा बन करके वह तेरे चित्त की आभा में निहित हो जाती है। इसीलिए तेरा जो क्रियाकलाप है वह विचित्र होना चाहिए, जिससे वह परमाणु तुझे ही प्राप्त होते हुए आज उन परमाणुओं की प्रतिभा में रत्त हो जाए। यह उद्गीत ऋषि मुनियों की सभा में भिन्न भिन्न प्रकार का विचार विनिमय होता रहा है। शब्द विज्ञान, आभामयी विज्ञान अपने में देखो, बड़ा अद्वितीय रहा है आज मैं विशेष चर्चा न प्रगट करता हुआ, आज मेरे प्यारे! महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् देवं भद्राः माम् ऋषि वरुणाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव याग के सम्बन्ध में अपनी बहुत सी विचार धाराएं प्रगट कर रहे थे। उनके विचारों में याग के प्रति कितने अगाध प्रीति हमें निहित

हो रही है जिसके ऊपर बहुत समय से पूज्यपाद गुरुदेव अपना विचार व्यक्त करते रहते हैं। परन्तु उस याग को मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहीं आध्यात्मिकवाद से उसका समन्वय किया है और कहीं आध्यात्मिकवाद को भौतिक में विज्ञान से समन्वय किया है और कहीं आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान को दोनों को व्यवहार में परिणत किया है। परन्तु देखो, सर्वत्रता में एक याग की प्रतिभा प्रायः हमें दृष्टिपात कराते रहते हैं। परन्तु आज का हमारा यह वाक् क्या कह रहा है? पूज्यपाद गुरुदेव ने यागों के ऊपर अपनी बहुत गम्भीर मुद्रायें प्रगट की हैं क्योंकि कई समय हो गया, कई समय क्या प्रत्येक वेदमन्त्र तो एक मनके के रूप में स्वीकार करते रहते हैं और वही मनका देखो, सूत्र में पिरोया जाता है, उसी की माला बनती है, और उसी माला को जब ऋषि मुनि चिन्तन में लाते हैं तो वह अगाध एक ब्रह्माण्ड का स्वरूप धारण कर लेता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी याग के सम्बन्ध में, विचारों के सम्बन्ध में कितनी गम्भीरता में अपना उपदेश दिया है। जब हम विचारों को और मनन करने लगते हैं तो एक और नवीन नवीन मुद्राएं हमें प्राप्त होने लगती हैं, उन मुद्राओं में हम प्रवेश करने लगते हैं।

तो मैं जहाँ पूज्यपाद गुरुदेव का विचार, जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ। याग को सम्पन्न करने के लिए नाना वृत्तियां ब्रहे सम्भवाः। याग सम्पन्न हुआ है, मैं उस याग को दृष्टिपात करता हुआ, मेरी अन्तरात्मा बड़ी प्रसन्न रहती है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह परिचय कराते हुए कहा है कि इस संसार में महाभारत के काल के पश्चात् दो वस्तुओं पर बड़ा आक्रमण हुआ है। दो धाराओं पर जो संसार की मुख्य धारायें हैं जो संसार की रचना के वृत्तियों में रत्त रहती हैं उन पर आक्रमण किया गया। और वह आक्रमण क्या एक मेरी प्यारी माता के आक्रमण हुआ और एक यागों पर आक्रमण हुआ। परन्तु पुरातन काल का जो अतीत का काल है उस अतीत के काल में यागों का कितना चलन रहा है। प्रत्येक गृह में यागों का चलन होना, माताओं को आयुर्वेद की विद्याओं का अध्ययन करना, वेदों का अध्ययन करना यह प्रायः देखों महाभारत काल से पूर्व यह क्रियाएं रही हैं। नित्यप्रति गृहों में यह क्रियाकलाप

होता रहा है।

मुझे तो स्मरण आता रहा है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और हम जब भ्रमण करते हुए किसी स्थली पर जाते, पुरोहितों से वार्त्ता प्रगट करते, प्रत्येक गृह में एक पुरोहित है वह अपने में वेदों का अध्ययन करके यागों का चलन और यागों की प्रतिभा और मेरी प्यारी माताओं का वेदों का और आयुर्वेद का विशेषकर अध्ययन करना। जिस माता के द्वारा आयुर्वेद होता है आयुर्वेद का अध्ययन होता है वह माता अपने गर्भ से सुसज्जित सन्तान को जन्म दे सकती है। वह जन्म देती रहती है परन्तु वह अध्ययन होना चाहिए। इसी प्रकार मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो कई काल में प्रगट कराया, परन्तु याग होना चाहिए। आयुर्वेद की दृष्टि से याग और आयुर्वेद एक ही सूत्र के दोनों मनके माने गए हैं। दोनों एक ही सूत्र में पिरोएं जाते हैं और वह सूत्र है ज्ञान और वह सूत्र है विवेक, वह सूत्र है व्यवहार, वह सूत्र है मानवीय राष्ट्रीयवाद वह सूत्रों में परणित रहने वाला है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देते हुए कहा था कि महाभारत काल में देखो, बुद्धिजीवी प्राणी और विज्ञान सर्वत्रता विनाश हो गया और सर्वत्र अग्नि के मुखारबिन्दु में वह स्वाति की अग्नि में परणित हो गया।

आज मानव को विचारना है कि स्वार्थवाद की वेदी पर जब राष्ट्रवाद बन जाता है, तो समाज का ह्रास हो जाता है, समाज की प्रतिभा नष्ट हो जाती है। उसी स्वार्थ के कारण रसना की लोलुपता में आ करके मानव यागों पर आक्रमण करता है। जब महाभारत के काल के पश्चात् वाममार्ग का जन्म हुआ, वाममार्ग ने मेरी प्यारी माताओं को महाभारत काल के पश्चात् उसका उपेदश समाप्त हो गया। उसके पठन पाठन की प्रतिक्रियायें समाप्त हो गई थीं और देखो, उसके पश्चात् महाभारत के काल के पश्चात् यागों पर आक्रमण हुआ और यागों में वाममार्ग, जो उनके मार्ग पर गति करने वाले हुए, उन्होंने अभद्र व्यवहार प्रारम्भ किया यागों में और यागों में जहाँ अहिंसा से गुथा हुआ एक क्रियाकलाप था, उस क्रियाकलाप में उन्होंने मांसों की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। विचारा नहीं, चिन्तन नहीं किया, मनन करने से प्रत्येक वस्तु का ज्ञान होता है। जब गम्भीर मुद्रा में अपने आत्मीय चिन्तन में अपने विचारों को ले जाता है, तो आत्मा और

मन प्राण यह सब मिल करके मानव को सुपथ दर्शाते रहते हैं।

हमारे यहाँ पुरातन काल में जब भी शास्त्रार्थ होता, विचारों का विचार विनिमय होता और उत्तर प्राप्त नहीं होता, तो वह मौन हो जाते और मौन हो करके प्राण और मन को एक सूत्र में पिरो करके, आत्मा के प्रकाश में वह अपनी आभा में रत्त होने के लिए उस वाक् पर अपना निर्णयात्मक विचार देते रहते और विचार मान्य होता हुआ अकाट्य होता, उसे कोई काट नहीं सकता, वह अकाट्य कहलाता है। इसी प्रकार महाभारत के पश्चात् चिन्तन नहीं करने से यह परिणाम हुआ कि यागों में वाजपेयी याग में देखो, बलि का वर्णन आया। वाजपेयी यागों में बैल की बलि का वर्णन, अश्वमेध याग में अश्व घोड़े को ले करके उसकी बलि का वर्णन आया है और अजामेध में बकरी का वर्णन आया। अग्निष्टोम याग में देखो, वह गो का वर्णन आया। गो मेध यागों में भी गो का वर्णन आया है। भिन्न भिन्न प्रकार के यागों में मांस की बलियां, पशुओं की बलियां प्रदान करना बलि देना यह अभद्र व्यवहार बन गया। यज्ञमान के ऊपर नाना प्रकार का अभद्र व्यवहार होना, यह स्वार्थपरता है। यह रसना से ऊपर रसना रचित बन करके मानव ने यह अभद्र व्यवहार का प्रारम्भ किया। क्योंकि ज्ञान रहा नहीं, विवेक रहा नहीं, ज्ञान और देखो, विज्ञान नहीं रहा, वह अग्नि के मुखार बिन्दु में चला गया और महाभारत के गृहयुद्ध में, गृह संग्राम में वह समापन हो गया।

अरे, उनमें स्वार्थ नहीं आता तो यह अज्ञान नहीं आना था। इसी अज्ञानता का परिणाम यह बना कि यागों के ऊपर आक्रमण हुआ, अभद्र व्यवहार हुआ और उसका परिणाम यह हुआ कि देखो, उसके पूर्व महाभारत के काल से पूर्व राजा अपने में स्वयं कृषि का उद्गम करता था, उसके द्वारा अपने उदर को पूर्ति करता था। उसी अन्न में से कोई ऋषि मुनि अतिथि आता, तो उसकी प्रायः सेवा होती रहती थी। परन्तु देखो, महाभारत काल के पश्चात् वह परिपाटी, वह परम्परा समापन हो गई। वेद का प्रकाश लुप्त होने लगा और वह वेद को न विचार करके, उनके लुप्त होने का कारण बना। परन्तु देखो, उसके कारण ऐसा मुझे स्मरण है, मैंने ऐसा दृष्टिपात किया है, पूज्यपाद! कि नाना प्रकार के यागों में बलियां प्रारम्भ की गई। महाराजा जन्मेजय ने सर्वयज्ञ किया था, वह सर्वत्रयाग

कहलाता था, जिसमें अहिंसा से गुथा हुआ याग था। परन्तु देखो, अशुद्धवादियों ने उसको भी सर्पयाग में परणित कर दिया था। वह सर्वत्र याग था सर्वस्व राजाओं की अनुमति से याग हुआ और उस याग को भी आधुनिक काल में महाभारतकाल देखो, जन्मेजय के काल के पश्चात् उसको भी सर्पयाग में इसी मन्त्रों के द्वारा सर्प आते और वह अग्नि में भस्म होने लगे, ऐसा वर्णन करते हैं यह अभद्र विचार है, यह अभद्रता का अभद्र वर्णन है। अव्रतम् यह वर्णीय नहीं है, इसको तिलांजलि दे देनी चाहिए।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह परिचय कराने जा रहा हूँ, हे प्रभु! अतीत का काल और देखो, इस महाभारत का काल अमृतं ब्रह्मे यह दोनों भिन्न भिन्न क्रियाकलापों में माने गए। उसके पश्चात् यहाँ नास्तिकता का मत आ गया, इस समाज में एक नास्तिकवाद छा गया। नास्तिकवाद यह इन्हीं वाममार्गियों के विभक्त में नास्तिकवाद का चलन हुआ और उन्होंने यागों के ऊपर आक्रमण किया। याग के ऊपर आक्रमण किया उसमें मांस की आहुति देते थे आधुनिक काल में भी कहीं कहीं पर्वतीय क्षेत्रों में वाममार्ग की प्रतिभा मुझे निहित होती रहती थी। मैं आज देखो, जिस भी समुद्रों के तटों पर विराजमान होता हूँ, भ्रमण करता हूँ, तो मुझे वहाँ भी अभद्रता प्रतीत होने लगती है। आधुनिक काल में भी परन्तु यहाँ समय समय पर याग के उद्धारक पुरुष आते रहे हैं। याग के ऊपर आक्रमण भी होता है, क्रियाकलाप भी होता है, तो ब्राह्मण समाज में जो वाममार्ग में थे, उन्होंने दो प्रकार की वेदियों का निर्माण किया। एक यज्ञशाला के रूप में जिसको यज्ञ वेदी कहा जाता है जिसमें अग्निहोत्र होता है, एक वह जो अहिंसा परमोधर्मः से मानव सिद्धान्त और तर्कयामी से गूंथ करके उन्होंने एक दूसरी वेदी का निर्माण किया। वह वेदी इसलिए कि अहिंसा परमोधर्मः है और उसमें अहिंसा का नृत्य होने वाला है। अग्निहोत्र में अग्नि प्रदीप्त करके तो आहुति दी जाती है वह तो हिंसक मानी गई है और देखो, वह हिंसक है और जो एक वेदी भिन्न बनाई है इसमें देवताओं का तर्पयामी करते हैं समर्पयामी करते हैं उसमें वह अहिंसा परमोधर्मः धर्मवादी है। तो मेरे विचार में यह नहीं आया कि दो वेदियों का निर्माण क्यों हुआ है? तो मुझे कुछ चिन्तन करने से यह प्रतीत हुआ, दृष्टिपात करने से यह प्रतीत हुआ कि कुछ ब्राह्मण ऐसे उनमें से थे जो

अहिंसा परमोधर्मः भी चाहते थे। दो प्रकार की वेदियों का इसलिए निर्माण हुआ एक अहिंसा में और एक हिंसा में।
जब देवपूजा एक ही यज्ञ अग्नि ही देवताओं का मुख कहा जाता है तो उस वेदी का कोई अर्थ नहीं माना जाता है, ऐसा मुझे प्रतीत, ऐसा मैंने अपने देखो, कई महापण्डितों से विचार किया। वेद के मन्त्रों से भी चिन्तन किया, तो मुझे उसमें और महानता प्रतीत हुई जब देवपूजा और अग्नि के मुख को देवताओं का मुख कहा जाता है। वास्तव में देवपूजा वह है तो इसके विपरीत जो क्रियाकलाप कर रहा है वह किसी न किसी रूप में अपने विचारों को सार्थक बनाने के लिए कर रहा है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! महाभारत काल के पश्चात् यागों पर और मेरी पुत्रियों पर आक्रमण हुआ है। मेरी पुत्रियों और यागों का आक्रमण करने से, उनका परिणाम यह बना कि आज का जो समाज है, महाभारत काल में जब यागों का चलन पश्चात् में प्रारम्भ हुआ, तो कुछ ही मानव जो मांस का भक्षण करता था, उससे पूर्वकाल में वह समाज का प्राणी अहिंसा परमोधर्मः ही अपना पालन कर रहा था, अहिंसा परमोधर्मः में निहित रहने वाला था। परन्तु देखो, महाभारत काल के पश्चात् कुछ मांसाहारी प्राणी हुए और आज जब मैं देखो, वर्तमान के काल को दृष्टिपात करता हूँ तो सौ में से पांच प्राणी ऐसे है जो अहिंसा परमोधर्मः का पालन करते हैं। अन्यथा अपने उदर को उन्होंने देखो, मुख काला बनाया है वह मुख मूल क्षेत्र बना लिया है जहाँ शमशान भूमि कहलायी है।
आज जब मैं विचारता रहता हूँ, हे मानव! तू अपने उदर को शमशान भूमि क्यों बना रहा है? तो उसका उत्तर मुझे कुछ और ही प्राप्त होता है। वह वास्तव में निरुत्तर भी बन जाता है परन्तु विचार क्या, कि यहाँ नाना प्रकार के रूढ़िवाद उत्पन्न हुए और उसी के कारण यागों पर, मेरी पुत्रियों पर आक्रमण हुआ, तो नाना प्रकार के सम्प्रदायों में यह समाज परणित हो गया, नाना प्रकार की रूढ़ियां बन गई। परन्तु देखो, संसार में, पृथ्वी मण्डल पर नाना प्रकार की रूढ़ियां बन गई, कोई यहूदी बन गया, कोई मुहम्मद के मानने वाला बन गया, कोई और भी नाना प्रकार के सम्प्रदाय बन करके देखो, वह मांसों का भक्षण करने लगे और वह कहते हैं कि हम अपने में सक्रिय हैं। परन्तु मेरे

विचार में यह नहीं आता, मैं तो यह स्वीकार करता हूँ, यदि मुहम्मद नहीं होता, तो अज्ञान नहीं आ सकता था। जो याग और माताओं पर आक्रमण नहीं होता तो सम्प्रदायों का जन्म नहीं हो सकता था। यह जन्म इसी के कारण आया है, इसमें दो ही मूल ऐसे हैं यागों पर आक्रमण किया हुआ मानते हैं यागों में मांसो की आहुति देना और मांसों में देखो, कुछ अहिंसा परमोधर्मः में याग को याग स्वीकार नहीं किया। परन्तु इसी प्रकार अग्रणीय चल करके देखो, जहाँ तक ब्रह्मावाचाः अब यागों को एक पाखंड के रूप में भी कुछ प्राणी प्रगट करते हैं। परन्तु यह तो दोनों प्रकार के प्राणी परम्परागतों से रहे हैं।

आधुनिक काल का जो मैं वर्तमान के काल की चर्चा कर रहा हूँ विज्ञानवेत्ता हैं वह मानव समाज को त्रास दे करके समाज की प्रतिभा को नष्ट कर रहे हैं। परन्तु देखो, शिक्षालय अपने में शिक्षालय नहीं रहे, जहाँ गुरु शिष्य की प्रणालियां समाप्त होती जा रही हैं। इसके मूल में क्या है आहार व्यवहार में राजा है। हे राजन्! आज तेरे राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति आ रही है। उस रक्तभरी क्रान्ति का परिणाम यह है कि जो राजा अहिंसा परमोधर्मः का पालन नहीं करता है, जो राजा प्रातःकाल अपने आसन को जब त्यागता है जब वह नाना प्राणियों को जल में तपा करके, जल में तपायमान करके उसका रस बना करके पान कर देता है। अरे, राजन्! तेरे राष्ट्र की राष्ट्रीयता नष्ट हो रही है। कहाँ वह राजा जो राम का राज्य हम कहते हैं राम की प्रतिभा का वर्णन करते है, जो प्रातःकालीन अपने आसन को त्याग करके बिना याग के वह अन्न का जलपान भी नहीं करते थे। एक वह राजा हैं जो स्वयं जो अपने कृषि उद्यम करके अन्त को पान करते, आज का राजा वो है जो दूसरे के वैभव को संग्रह करके अपने उदर की पूर्ति में लगा हुआ है। तो राम राज्य की कल्पना करना मेरे लिए असम्भव प्रतीत होता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आपसे आधुनिक काल का मैं परिचय करा रहा हूँ और वह परिचय क्या है सम्भवं ब्रह्मे लोकाम् यह जो इसी प्रकार विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है और विज्ञान के दुरूपयोग में मानव के जीवन का भी दुरूपयोग है, चरित्र का ह्रास हो रहा है। मूल में विज्ञान का दुरूपयोग कहलाता है। आज मैं विशेष चर्चा न देता

हुआ। मैं कहाँ तक इन वाक्यों पर टिप्पणी करता रहूँगा।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! जहाँ यह हमारी वाणी जा रही है वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ है। मेरा तो हृदय सदैव यज्ञमान के साथ रहता है। हे यज्ञमान! तेरा सौभाग्य अखंड बना रहे। जो यज्ञमान अपने गृह में द्रव्य का सदुपयोग करता है, देवताओं को हूत कर रहा है, अपने हृदय में श्रद्धामयी घृत को प्रदान करके वायुमण्डल में प्रवेश कर रहा है। आलवृहे हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे मेरा अन्तरात्मा सदैव यज्ञमान के साथ रहता है। मेरा हृदय यह कहता रहता है कि द्रव्य का सदुपयोग होना चाहिए। हे यज्ञमान! तेरे गृह में देखो, यह द्रव्य का सदुपयोग हो रहा है। मेरा अन्तरात्मा इसलिए प्रसन्न है कि वायुमण्डल में तेरी विचारधारा द्यौ लोक को प्राप्त होती रहती है। जब तू शुद्धिकरण कर लेता है, अपनी आभाओं से निहित हो जाता है।

आज का विचार मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह परिचय, आधुनिक काल का जो राजा है वह अपने राष्ट्र में निराकरण करना नहीं चाहता है। यदि निराकरण करना चाहता है, तो निराकरण हो सकता है। नाना प्रकार के जो यह रूढ़िवादी हैं हे राजन्! यदि तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है तो तेरे राष्ट्र में रूढ़ि नहीं रहनी चाहिए। यदि धर्म और परमात्मा के नाम पर रूढ़ि रहेंगी तो यह समाज कुछ काल के पश्चात् वह समय दूरी नहीं है जब प्रत्येक स्थलियों पर देखो, रक्तभरी क्रान्ति का सञ्चार होने वाला है। परन्तु देखो, राजा को चाहिए प्रजा को चाहिए कि राजा और प्रजा मिल करके राष्ट्र का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए। विचारों का राष्ट्रीयकरण होना चाहिए, विचारों में एक निराकरण होना चाहिए। मैंने निराकरण की चर्चा तो कई काल में प्रगट की हैं। यहाँ कोई नानक के मानने वाला है, कोई ईसा के मानने वाला है, कोई मुहम्मद के मानने वाला है और भी नाना प्रकार की सम्प्रदायों, नाना प्रकार की रूढ़ियों में यह समाज और राष्ट्र अपने में घृणित हो रहा है। जब मैं यह विचारता हूँ इसका निराकरण राजा को करना चाहिए तो राजा का निराकरण क्या है कि प्रत्येक रूढ़िवाद की आचार्यों को एकत्रित करें, उनकी सभा हों और सभाओं में अपने अपने विचार व्यक्त किए जाएं और जिस विचारधारा का विज्ञान और मानवीय दर्शन एक सूत्र में आ जाएं, उसी

मानवीयता को अपना करके वही उसका धर्म है। वही उसकी मानवता अपना करके राजा को ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए और ब्रह्मवेत्ता बन करके वह अपने राष्ट्र में शुद्धीकरण कर सकता है। इसका निराकरण यह नहीं है स्वार्थवाद से राष्ट्र को नहीं मापा जा सकता, स्वार्थवाद से जो राष्ट्र चले न चले, मैं इसको शुद्धीकरण कर सकता हूँ या नहीं कर सकता हूँ, वह अपने मस्तिष्क में एक पाप, पापाचार कर रहा है। और वह पापाचार क्या वह इस लोक से जाएगा तो गहन अन्धकार में परणित हो करके जहाँ प्रकाश नहीं प्राप्त हो सकता।

तो मैं यह वाक् इसीलिए उच्चारण कर रहा हूं, हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! आज का विचार, मैं इसका परिचय इसलिए दे रहा हूँ कि महाभारत के काल के पश्चात् दो वस्तुओं पर, दो धाराओं पर, दो प्राणों पर जब आक्रमण हुआ तो उसकी आत्मा का परिणाम यह कि आज का मानव देखो, जहाँ असात्विक आहार पान किया जाता, वहाँ हिंसा में परणित होने वाला अपने में गौरव स्वीकार कर रहा है। यहाँ दूसरे के गर्भ से, अश्वमेध यागों में हिंसा कहते हैं। अश्व नाम राजा का है, और मेध नाम प्रजा का है, वैदिक साहित्य के आधार पर जब दोनों मिल करके राष्ट्र के कल्याण के लिए याग करते हैं तो वह अश्मेध याग कहलाता है। अजा कहते हैं अपने में विजय करना, अपने राष्ट्र पर विजय करना राजा जब अजामेध याग करता है, अजा कहते हैं अपनी इन्द्रियों से संयम को और प्रजा पर संयम सात्विकता को ले करके अजामेध याग किया जाता है। अग्निष्टोम याग मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी प्रगट कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक सौ इक्सठ यागों के कर्मकाण्ड में सदैव निहित रहे हैं। उनके कर्मकाण्डों को जानते रहे हैं और मन्थन करते रहे हैं। उनका भिन्न भिन्न प्रकार का कर्मकांड कहलाता है। परन्तु देखो, इस प्रकार हमारे यहाँ एक सामूहिक यागों का हूत हुआ, मेरा अन्तरात्मा बहुत प्रसन्न है।

आज का विचार क्या? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने यह परिचय दिया है और वह परिचय क्या जो ह्रास हो रहा है आज मेरी प्यारी माता श्रृङ्गार में परणित हो रही है। वहीं माता के गर्भस्थल से असंस्कार वाला पुत्र जब जन्म ले लेता है और देखो, वही

माता के श्रृङ्गार को हनन करने वाला बनता है। इस प्रकार हे माता! तुझे अपने में राम को जन्म देना है, तो तुझे कौशल्या बनना है, यदि कृष्ण को जन्म देता है तो यहाँ तुझे अपनी आभा में माता यशोदा और माता गृह बनना है, जिससे तुम्हारा गर्भाशय पवित्र बन हो जाए। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने तो बहुत वाक् प्रगट किए हैं। आज मैं केवल उनके विचारों पर टिप्पणी देना ऐसा स्वीकार करता हूँ जैसे सूर्य और जुगनू का एक दोनों का प्रसंग रहता है। आज का विचार विनिमय क्या? आज हम अपने निराकरण करने वाले बनें, राजा को चाहिए कि राष्ट्र का निराकरण दर्शनों से निराकरण हो सकता है और देखो, स्वार्थ से निराकरण नहीं हो सकता है। आज का विचार यह समाप्त, अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मेरे प्यारे! महानन्द जी ने अपना विचार दिया। इनके विचारों में बड़ी गम्भीरता और दार्शनिकता की मुझे प्रतीती हो रही थी। परन्तु आज का इनका विचार बड़ा भव्य और विचारों में एक महान राष्ट्रीयकरण, मानवीय करण यागों के आक्रमण मेरी प्यारी माताओं की प्रायः ऐसा हुआ है और ऐसा अशुद्ध जगत् बन गया है यह तो बड़ी अशोभनीय समाज की रचना है। यह रचना सुशोभनीय रूपों में होनी चाहिए जैसा मेरे पुत्र महानन्द जी ने अभी अभी प्रगट किया है कि राजा और प्रजा दोनों मिलन करके अश्वमेध याग करते रहें और समाज का शुद्धीकरण होना चाहिए। अहिंसा में मानव को परणित रहना चाहिए, हिंसा को त्याग देना चाहिए। हिंसा मानव के शरीर को भ्रष्ट करती है और अहिंसा परमोधर्मः मानव के जीवन में उल्लास और पवित्रता लाए। यह आज का विचार अब समाप्त होने जा रहा है। श्रीसोहन सिंह सूद स्थान : शिवपुरी 11 अप्रैल 1986 समय प्रातः 10 बजे।

१७   13 12 1986 पुष्प 55

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव की महिमा का गुणगान

गाया जाता है। यह संसार नियन्ता है प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार माता का पु माता की गाथा गाता रहता है उसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गाता रहता है उसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन करता रहता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गए हैं। वह जो जड़ जगत और चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है चाहे वह चेतना के किसी भी रूप में विद्यमान हो, वह जड़वत किसी रूप में विद्यमान हो किस भी काल में मानव ने दोनों प्रकार के जड़वत वह चेतनवत के ऊपर विचार विनिमय किया है उसी के मूल में वे परमपिता परमात्मा दृष्टिपात आते रहते हैं।

बहुत समय हुआ जब ऋषि मुनियों के काल और विज्ञानवेत्ताओं के मध्य में उ सपरमपिता परमात्मा के जगत के ऊपर अनुसन्धान होता रहा। बहुत पुरातन काल हुआ जब ऋषि मुनि अपनी स्थलियों परवि?मान होकर के यह चिन्तन करने लगे कि यह संसार जो अपना क्रियाकलाप कर रहा है ओर यह नाना प्रकार की आभा में निहित हो रहा है। इसके मूल में क्या है? ऋषि मुनियों ने एक वाक् कहा है कि मानव अनुष्ठान कर रहा है अथवा परमात्मा की महिमा का गुणगान गाने लगता है परन्तु यह सर्वत्र की कामना मानव के हृदय में रहती है कि मेरी मृत्यु नही होनी चाहिए। मैं प्रकाश के आंगन में जाना चाहता हूँ और प्रकाश में रत्त होना चाहता हूँ मैं अन्धकार नही चाहता हूँ। मेरी प्यारी माता अपने पुत्र के ऊर्ध्वा में कल्पना करती रहती है और उसके हृदय में एक ही कामना रहती है कि मेरा पुत्र मृत्यु को न प्राप्त हो जाए, वह सदैव प्रकाश में रहने वाला हो। तो विचार आता है कि मृत्यु जो शब्द है मानवक े मसीप आता रहता है, प्रत्येक अपनी आभा में नियुक्त हो करके चिन्तन कर रहा है परन्तु जब वैदिक वाणी में प्रवेश करते हैं या दार्शनिकों की सभाएं हुआ करती हैं तो विचारा जाता है कि यह संसार क्या है प्रत्येक मानव संसार के सम्बन्ध में विचारता रहता है यह संसार अपने में निहित रहने वाला है।

तो विचारा गया कि यह संसार अपनी अपनी कल्पना के आधार पर कल्पना ही करता

रहता है। जिस काल में दार्शनिक अपनी आभा में नियुक्त हुए और दार्शनिकों ने संसार के ऊपर कल्पना करना प्रारम्भ किया तो यह विचार आता है कि यह संसार क्या है? सबसे प्रथम दार्शनिक कहता है कि यह संसार तो एक कल्पवृक्ष की भांति हैं यहां मानव कल्पना करता रहता है और वस्तु प्राप्त हो जाती है। तो यह संसार कल्पवृक्ष की भांति माना गया है तो यह संसार एक कल्पवृक्ष की भांति माना है मुझे वह गाथा स्मरण आती रहती है जो आलांकारिक रूप में प्रगट की गई है। एक समय कही एक मानव बड़ा दुखित हो रहा था और वह दुखित क्यों था कि उसकी पत्नी उसे नितप्रति दण्डित किया करती थी और वह मानव बड़ा दुखित हो रहा था एक समय प्रातःकालीन पत्नी ने उसे दण्डित किया और वह मानव व्याकुल हो रहा था और वह कह रहा था प्रभु से प्रार्थना कर रहा था, हे प्रभु! आप मुझे वहां से ले जाईएं। मैं इस संसार में अपने जीवन को नही चाहता हूँ इतने में कहीं से भ्रमण करते हुए देवर्षि नारद मुनि आ गए और कहा प्रभु! आप कौन हैं? उन्होंने कहा कि मैं देवर्षि नारद हूँ उसने कहा कि भगवन! मैं तो यह प्रार्थना ही कर रहा था। देवर्षि नारद और वह मानव भ्रमण करते हुए कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो गए। उन्होंने कहा कि हे मानव! यह विष्णु की आभा है। यह उसके द्वार पर कल्पवृक्ष है तो कल्पवृक्ष के ही नीचे विराजमान हो जाओ। मैं भगवन! विष्णु से आज्ञा ले आऊं कि तुम स्वर्ग में जाने योग्य हो अथवा नहीं देवर्षि नारद मनि तो स्वर्ग में चले गए और वह मानव कल्पवृक्ष के नीच विद्यमान हो गया। वहां मन्द सुगन्ध वायु चल रही थ्री वह मानव उससे प्रभावित हो गया और मानव ने कहा कि यह तो बड़ी मन्द सुगन्ध वायु है और उसने कल्पना की कि मेरे लिए यहां एक आसन होना चाहिए था। उसने कल्पना की तो आसन लग गा। तो वह मानव उससे अधिक प्रभावित हुआ। उसने और कल्पना की कि यहां विश्राम करने वाला आसन होना चाहिए। वहां विश्राम करने वाला आसन भी लग गया। वह तो कल्पवृक्ष था कल्पना करते ही वस्तु प्राप्त हो जाती थी देवर्षि नारद भगवान विष्णु के द्वार पर बैटे थे उस मानव ने पुनः कल्पना की यहां सेविकाएं, अप्सराएं होनी चाहिए। कल्पना करते ही अप्सराएं भी आ गईं अब सेवा होने लगी। वह मानव बड़ा प्रभावित हुआ। उस मानव

के हृदय में यह कल्पना जागी कि तेरी मृत लोक वाली पत्नी होती तो तेरे ऊपर डण्डा भी होता। इतने में वह पत्नी भी वहां आ गई आगे वह मानव है पश्चात उसकी पत्नी, डण्डे सहित खिलवाड़ हो रहा है। जब वह देवर्षि नारद मुनि भगवान विष्णु के द्वार से कल्पवृक्ष के नीचे आनग लगे तो उन्होंने दृष्टिपात किया कि और मानव को देखा कि वह तीव्र गति से जा रहा है और पत्नी उसके पश्चात निसंदेह गई। नारद मुनि ने दिव्य वाणी से कहा अरे, मानव, कल्पना को त्याग, और उसने कल्पना को त्यागा न तो पत्नी है, न अप्सराएं हैं, न आसन है उस कल्पवृक्ष के नीचे वह मानव विराजमान है। देवर्षि नारद मुनि बोले अरे, धूर्त ते ने यहां कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान होकर भी भोगविलासों की कल्पना की है। यही स्वर्ग की कल्पना करता तो तुम्हें मिल जाता। यह भोग विलासों की कल्पना वाला जगत नहीं है, यह तो कर्तव्य के लिए बाध्य कर रहा है। देवर्षि नारद मुनि ने कहा कि यहां तो मैंने तुम्हें इसीलिए विद्यमान किया था कि तू स्वर्ग की कल्पना करेगा। अरे, कल्पवृक्ष के नीचे आकर जो मानव तू स्वर्ग की कल्पना करता तो तुम्हें स्वर्ग प्राप्त होता। अरे, भगवान से मिलने की कल्पना करते तो तुम्हें भगवान का मिलन हो जाता। यह जो परमात्मा का उत्पन्न किया जगत है यह एक प्रकार का कल्पवृक्ष है जो मानव जैसी कल्पना करता है उसे वैसा ही प्राप्त होता है।

वेद के आचार्यों ने यह कहा कि मानव तुझे तो कल्पना करती है तो ऊर्ध्वा में कल्पना कर! तू विलासों की कल्पना मत कर, तू महानता की कल्पना कर कर्तव्यवाद की कल्पना कर, यहां घृणित वाद की कल्पना मत कर। यह संसार क्या है? तो प्रथम दार्शनिक कहता है कि यह संसार कज्पवृक्ष है। यहां कल्पना की जाती है, यहां ब्रह्माण्ड में ऊर्ध्वा की रचना की होती रहती है। एक वैज्ञानिक है वह अपने में विज्ञान की कल्पना कर रहा है मानो विज्ञान के आंगन में प्रवेश हो रहा है। यहां संसार में प्रत्येक मानव नवीन नवीन कल्पना करता रहता है तो ऋषि कहता है कि यह संसार कल्पवृक्ष है इस में मानव जैसी कल्पना करता है वैसा ही बन जाता है दार्शनिक यह उद्गीत गाकर मौन हो गया।

द्वितीय दार्शनिक कहता है कि नहीं यह संसार कल्पवृक्ष भी होगा परन्तु मुझे यह संसार

एक प्रकार की व्यापार शाला दृष्टिपात आती है यहां प्रत्येक मानव व्यापार करने के लिए आया है, व्यवसाय करने के लिए आया है। यहां किसी का किसी पर कुछ है वह मानव देने के लिए आया है और किसी का कुछ है तो लेने के लिए आया है। यह संसार एक प्रकार की व्यापारशाला है एक प्रकार का व्यवसाय है। प्रत्येक मानव कल्पना करता रहता है यह देने लेने की व्यापारशाला है। यहां प्रत्येक मानव कल्पना करता है। यह देने लेने की व्यापारशाला है जहां प्रत्येक मेरी माता का पुत्र है माता के गर्भ से उसने जन्म लिया है। वह मानव शिशु बन करके माता के गर्भस्थल में आया है देखो, जब शिशु बन के आया तो माता के गर्भस्थल में विद्यमान जब हुआ तो वह बिन्दु बिन्दु के रूप में शिशु बनके आया, जब शिशु विद्यमान हुआ तो सर्वत्र देवताओं की एक माला बन गई और उस काल में मेरी माता नही जानती थी कि तेरे गर्भस्थल में कौन शिशु का निर्माण कर रहा है, परन्तु देखो, एक माला बन गई है और वह माला कैसे बनी पृथ्वी गुरूतव देने लगी, चन्द्रमा अमृत देने लगा, सूर्य ने प्रकाश दिया, अग्नि उष्ण बनाया। अब वह आसन और भोजन बन गया था इसीलिए यज्ञमान यज्ञशाला में तीन आचमन करता है क्योंकि माता के गर्भ में वह बालक पनप रहा था तो जभी तो उसका आसन बना जब ओढ़न बन गया तो जब पांसे बन गये, तो वह जन्म ही वह पनप रहा था और वह आपोमयी ज्योति कहलाती है अग्नि उसे उष्ण बनाने वाली है।

विचार क्या सूर्य प्रकाश, चन्द्रमा अमृत और अग्नि ज्योति बन के रहती है वहीं तो बालक का गृह बना हुआ है। वायु प्राण दे रहा है। अन्तरिक्ष आकाश दे रहा है माता की नाभि के द्वारा अमृतमयी नाड़ियां के द्वारा अमृत को पान कर रहा है भोली माता तुझे यह प्रतीत नही हैं कि वह निर्माण कौन कर रहा है और वह निर्माणवेत्ता है वह अमृतवर्षा कर रहा है विचार क्या वेद का ऋषि कहता है कि यह संसार व्यापारशाला है माता के गर्भस्थल में उसने अपना व्यवसाय प्रारम्भ किया है। माता कह रहा है वह माता कहने वाला उच्चारण करने वाला ही है अपने में आत्मामयी समायित हो रहा है। न्यूनता से पूर्णता का जन्म हो रहा है। वाह रे प्रभु तू कितना वैज्ञानिक है आज मैं तेरे विज्ञान की सीमा में जाने वाला नहीं हूँ क्योंकि तू विज्ञान में गति करने वाला है। यह संसार

व्यापारशाला में मानव एक दूसरे के व्यवसाय में लगा हुआ है। माता का पुत्र माता से कुछ लेने के लिए आया है और कुछ समय के पश्चात चला जाता है।
बेटा! मुझे एक वाक् स्मरण आ गया है एक महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज हुए वह भयंकर वन में रहते थे वह वायु गोत्रीय कहलाते थे उनकी पत्नी उद्दालक गोत्र में जन्म ले करके उनका वायु गोत्र में गृह में संस्कार हुआ। कुक्कुट मुनि महाराज बड़े तपस्वी थे। अपने में तपस्या करते रहते थे। उनकी पत्नी के गर्भ में शिशु का प्रवेश हुआ जब चतुर्थमास हो गएं एक समय उनकी पत्नी ने कहा भगवन! हे वायु गोत्रीय ब्रह्मे मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरे गर्भस्थल में जो शिशु पनप रहा है उसका बाह्य जगत में हमसे इसका क्या समन्वय है देवी के इन वाक्यों को पान करके ऋषि बोले कि हे देवी! मैं इसका उत्तर कल दूंगा। वह एक नदी के तट पर विद्यमान होकर के समाधिष्ट हो गएं और समाधिष्ट हो करके माता के गर्भस्थल में जो आत्मा विद्यमान थी शिशु के रूप में वह अपने वाक् को प्रगट करने लगे। उन्होंने कहा हे आत्मा! तू हमारे कुल में प्रवेश हो रहा है, तेरे आने का मन्तव्य क्या है? तो आत्मा उत्तर देता है कि मैं इससे पूर्व जन्मों में राजा होकर मेरा कुछ ऋण तुम पर रह गया, इसीलिए मैं व्यापारशाला में आ रहा हूँ संसार में आ रहा हूँ और द्रव्य को लेकर मैं यहां से चला जाऊंगा।
वह ऋषि वह वाक् श्रवण करके अपने देवी से बोले कि हम तो बड़े दुर्भागी हैं। उन्होंने कहा कि क्यों उन्होंने कहा कि हमारे यहां दर्शनकारों ने कहा है कि पिता से पहले पुत्र का निधन नही होना चाहिए। परन्तु यह जो तुम्हारे गर्भ से जन्म लेगा हमसे पूर्व इसका निधन हो जाएगा। देवी ने कहा प्रभु! ऐसा क्यों उन्होंने कहा देवी! कि इससे पूर्व काल में सुदर्शन नाम के राजा था और वह राजा होने से तुम मेरी पत्नी थी यह लेने के लिए आया है देवी ने कहा कोई बात नहीं भगवन! कुछ समय के पश्चात उस आत्मा का जन्म हुआ। पुत्र के रूप में प्रगट हुआ और आनन्दवत होने लगा। कुछ समय के पश्चात वह रूग्णता को परणित हो गया जब रूग्णता को प्ररणित हो गया तो देवी के द्वारा जो मुद्राएं थीं वह समाप्त हो गयी। जितनी मुद्राए उसकी थी जब समाप्त हो गई तो उसका प्राणान्त हो गया। परिणाम, ऋषि ने यह कहा कि यह संसार एक प्रकार की व्यापारशाला

है यहां किसी का देना है तो किसी का लेना है।
जब ऋषि ने अपने निर्णय दिया तो अपने में व्यापारशाला कह करके लेने देने की व्यापारशाला उद्गीत गा करके वह मौन हो गये, उनका वाक् समाप्त हो गया कि यह संसार एक प्रकार की व्यापारशाला है। किसी ने कहा कि यह संसार एक प्रकार का कल्पवृक्ष है। तो तीसरा वैज्ञानिक कहता हैं नही यह संसार व्यापारशाला भी होगा परन्तु मुझे यह संसार एक विज्ञानशाला के रूप में दृष्टिपात आया है यहां प्रत्येक मानव विज्ञान में रत्त होना चाहता है, विज्ञान की ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ने होनें लगीं और विज्ञान यह कहता है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु का मिलान करता है। और वे परमाणु एक दूसरे के गतित हो करके यन्त्रों का निर्माण करना है यहां परमाणु का निर्माण होता रहता है और निर्माण हो करके विशाल अग्नि प्रचण्ड होती रहती है। वह संसार एक प्रकार की विज्ञानशाला है यहां संसार में जो आया है और वह विज्ञान के लिए तत्पर हो जाता है। कृषक भी विज्ञान में रत्त हो करके अन्न की उपज करना चाहता है इसी प्रकार नाना प्रकार के उपकरणों के द्वारा अनाज उत्पन्न करना चाहता है राष्ट्र अपने विज्ञान व वैज्ञानिकों की घोषणा कर रहा है कि वैज्ञानिकों तुम विज्ञान में रत्त हो जाओ, विज्ञानवेत्ता बनो। मेरे प्यारे! माता कहती हे कि हे बालक, तुम अपने क्रियाकलापों में परणित हो जाओ। तो मेरे प्यारे! वे कहीं सूर्य से उपकरण लेते है, कहीं से कान्ति लेते हैं, कहीं तारामण्डलों की माला बनाने लगते हैं, तो कहीं संसार विज्ञानशाला के रूप में दृष्टिपात आने लगता है। वह कहते रहते है कि यह संसार एक दूसरे के विज्ञान में रत्त होता है, विज्ञान कहते किसे हैं? विज्ञान कहते हैं सूक्ष्म धाराओं का एकोकीकरण करने का नाम विज्ञान कहलाता है विज्ञान किसे कहते हैं जहांमानव अपनी वाणी में अपने चित्र का दर्शन करता है विज्ञान किसे कहते हैं जहां मानव अन्तरिक्ष में विराजमान हो करके यन्त्रों का दर्शन करता है।
मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा है कि यह विज्ञान कैसा है। विज्ञानशाला में विद्यमान हो करके अपने पूर्वजों का दर्शन करता है। मुझे स्मरण आता रहता है कि शटांगकेतु मुनि महाराज का जीवन शटांगकेतु मुनि महाराज उद्दालक गोत्रीय कहलाते

थे उद्दालक गोत्र में बहुत से वंशज हुए हैं परन्तु उनमें एक महर्षि शटांगकेतु मुनि हो गएं हैं उनकी पत्नी का नाम रेणुका था रेणुका ने कहा प्रभु! मैं बाल्यकाल में अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन करती रही हूँ और मेरी हार्दिक कामना हैं कि हमें विज्ञान में जाना चाहिए। वैज्ञानिक बनना चाहिए। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। वैज्ञानिक तो हमें बनना चाहिए। शटांगकेतु मुनि महाराज और उनकी पत्नी नित्यप्रति याग करते थे साकल्य एकत्र करती थीं याग के द्वारा याग करना और उनमें जो तरंगों उत्पन्न हुआ करती थी याग के द्वारा तरंगों को एकत्रित करके उनमें वे विज्ञान का दर्शन करते थे। विज्ञान का जब दर्शन करने लगे तो तरंगें उत्पन्न हुआ करती थी विज्ञान का जब दर्शन करने लगे तो विज्ञानता का दर्शन हुआ। विज्ञानां ब्रह्मा दर्शनं तरंगों में जैसे हमारे यहां याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने क्या मैत्रेयी ने भी यह कहा था कि महाराज! एक यज्ञमान याग कर रहा है इस यज्ञ में यज्ञ की आत्मा क्या है, जब यज्ञ की आत्मा का प्रसंग आया तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि यज्ञ की आत्मा स्वाहा है तो यज्ञमान होताजन विद्यमान होकर से स्वाहा उच्चारण करते हैं वह यज्ञ की आत्मा कहलाता है परन्तु ऋषि मुनि ऐसे सही नहीं किसी वाक् का उच्चारण करते थे, चिन्तन करते रहते थे कि स्वाहा यज्ञ की आत्मा कैसे बनता है वे महर्षि शटांगकेतु व उनकी पत्नी यह विचारते रहते थे कि महाराज! वेद ने यह कहा है कि यज्ञक की आत्मा स्वाहा है वेदमन्त्रों से स्वाहा उच्चारण किया जाता है वह यज्ञ की आत्मा है जैसे हम स्वाहा उच्चारण करते हैं तो हमारे स्वाहा कहते ही अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके वह जो स्वाहा शब्द द्यौ लोक को जाता है उस स्वाहा शब्द में हमारा चित्र हमारा शब्द विद्यमान रहता है जब उन्होंने यह कहा कि शब्द विद्यमान है तो उनकी पत्नी ने कहा कि इसके आगे चलकर हमें दिग्दर्शन करना है। उन्होंने कहा देवी! हम दिग्दर्शन करेंगें। जब अनुसन्धान करने लगे तो उन्होंने यन्त्रों का निर्माण किया और यन्त्रों का निर्माण करने के पश्चात उनके यन्त्रों में उनके चित्र दृष्टिपात आने लगे। जब उनके चित्र आने लगे तो उन्होंने कहा कि हे भगवन! पत्नी बोली हे प्रभु! हमारे तो चित्र आ रहे हैं इस यन्त्र में उन्होंने कहा हे देवी! यथा ब्रह्मा वृतं उन्होंने यह वाक् कहा तो वेद का ऋषि निर्णय

करने लगा अनुसन्धान करने लगा। दर्शन होने लगे मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है कि शटांगकेतु मुनि ने विद्यालय में शटांगकेतु मुनि की यज्ञशाला में उनके यहां पचासवें महापिता तक के दर्शन होते थे।

विचार क्या वेद का ऋषि कहता है कि यह संसार एक प्रकार की विज्ञानशाला है यहां प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनने के लिए आया है, मेरी प्यारी माता जब प्रातःकालीन तर्पण करती है, यज्ञ में स्वाहा देती है तो वह स्वाहा ही तो यज्ञ की आत्मा है। वह आत्मा बन करके याग को अन्तरिक्ष में ले जाता है। मैं विशेष वाक् तो नही दे पाऊंगा केवल यह विचार देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को यह विचार विनिमय करना है कि यह संसार क्या है यह एक प्रकार की विज्ञानशाला है। यहां प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनने के लिए आया है, यहां विज्ञानशाला में हम सब विद्यमान हैं यह परमात्मा का जगत एक प्रकार की विज्ञानशाला है जब ऋषि ने यह वाक् किया तो उन्होंने कहा कि यहां प्रत्येक मानव अपने आपको वैज्ञानिक बन करके अपने में अपनेपन को दृष्टिपात करता रहा है तो शटांगकेतु मुनि महाराज ने विज्ञान को यहीं तक नही जाना था। मुझे वेदमन्त्र स्मरण आया है और वह वेदमन्त्रों द्वारा याग कर रहे थे। वह कहते थे ऊर्ध्वां ब्रह्म एवं लोकां व्रतं देवी ब्रह्मः वह उच्चारण कर रहे थे हे देवी! वेदमन्त्र यह कह रहा है कि हम लोक लोकान्तरों में भी गमन कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि प्रभु हमें उस विज्ञान को अपने आंगन में प्रवेश करना चाहिए। उन्होंने एक समय बहुत समय के पश्चात एक यन्त्र का निर्माण किया था। और यन्त्र में उन्होंने कहा कि हे देवी! आओ आज हम लोकों का भ्रमण करके आते हैं उन्होंने कहा बहुत प्रियतम महर्षि शटांगकेतु उनकी पत्नी श्रेय और एक ब्रह्मचारी विरेन्द्रकेतु तीनों याग में विद्यमान हो गएं और विद्यमान हो करके वहां से जिस यन्त्र को उन्होंने जाना वह यन्त्र सूर्य की ऊर्ध्वा में गति करने लगा। तो सबसे प्रथम पृथ्वी से उड़ान उड़ता हुआ वह यान बुद्ध में चला गया। जब बुद्ध से उड़ान उड़ी तो मंगल में चला गया। मंगल से उड़ान उड़ी तो वह रोहिणी केतु मण्डल में चला गया। जब रोहिणीकेतु मण्डल से उड़ान उड़ी तो वह तृतिका मण्डल में चला गया। वहां से वह मृचिका में प्रवेश मण्डल में चला गया। वहां से वह अरूणधती

मण्डल में चला गया। वहां से वशिष्ठ मण्डल में चला गया। वहां से रेवाचुक मण्डल में चला गया। वहां से बृचगाथुन मेघमण्डल में चला गया। मैं यह विचार देने के लिए आया हूँ कि वह यान लोकों का भ्रमण करके पुनः पृथ्वी पर आ गया। मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा कि संसार एक विज्ञानशाला है यहां प्रत्येक मानव वैज्ञानिक बनने के लिए आया है मेरी पुत्री अपने विज्ञान में सार्थक बन जाती है।

मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराया। मैं विज्ञान की कहां तक चर्चा करूं त्रेता के काल में महर्षि पणपेतु मुनि महाराज की कन्या शबरी थी, वह शबरी भारद्वाज मुनि के यहां विज्ञानशाला में उपकरणों के द्वारा यन्त्रों के द्वारा एक यन्त्रशाला में एक यन्त्र का निर्माण किया गया। उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि एक रक्त के बिन्दु प्रवेश किया और उस यन्त्र में जिस मानव के रक्त का बिन्दु था उस मानव का स्वरूप दृष्टिपात आने लगा। वह शबरी उपकरणों वह यन्त्रों के द्वारा विज्ञानवेत्ता बन गईं यह वही शबरी थी जब राम वन को जा करके रावण को विजय करने के लिए चले तो भारद्वाज मुनि ने सर्वयन्त्रों को उन्हें प्रदान किया था वह कहा था कि तुम यह राम को प्रदान कर देना। और वह यन्त्रों को लेकर पंहुच गईं। मैं विज्ञान की कहां तक चर्चा करता रहूँ। मेरा तो मन्तव्य केवल यह कहता है कि यह संसार एक प्रकार की विज्ञानशाला है और यह विज्ञान में रत्त रहने वाला है। परन्तु अन्त में ऋषियों ने एक वाक् कहा कि इस संसार को मानव जिस दृष्टि से मापने लगता है तो इसी प्रकार का दृष्टिपात आने लगता है।

मेरे कल्पवृद्ध वालों ने कल्पवृद्ध व्यापारशाला वालों ने व्यापारशाला वालों ने व्यापार सिद्ध कर दिया और विज्ञानवेत्ताओं ने विज्ञान में सिद्ध कर दिया । विचार विनिमय क्या बेटा! यहां प्रत्येक मानव विज्ञानवेत्ता बनने के लिए आया है। मैं शटांगकेतु की चर्चा कर रहा था वह उद्दालक गोत्रीय थे उद्दालक गोत्र होने के 977 वंशज समाप्त हो गएं थे उद्दालक गोत्र का निकास वायु गोत्रों से हुआ था वायु गोत्रों का निकास हरितत गोत्रों से हुआ था और वायु गोत्र के पचतर हजार पांच सौ इक्कसठ वंशज समाप्त हो गये। वायु गोत्रों का जो निकास है वह हरितत गोत्रों से हुआ था जिनके चवालीस हजार पांच सौ पचतर वंशज समाप्त हो गएं हरितत ब्रह्मा के पुत्र कहलाते थे जिनके लगभग

इक्यानवें हजार पांच सौ इक्कसठ उनके वंशज समाप्त हुए। मैं वंशजों में नही जाना चाहता हूँ। यह एक प्रकरण आ गया परन्तु विचार क्या सदा आध्यात्मिकवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता विज्ञान में रत्त होते चले जा रहे हैं। यह है आज का वाक् मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल आगे प्रगट करूंगा।

बेटा! यह संसार विज्ञानशालामय है विज्ञान के सम्बन्ध में ओर चर्चाएं कल प्रगट करेंगें आज का वाक् केवल यह जिन्होंने जिस प्रकार संसार को, परमात्मा के जगत को मापने का प्रयास किया वह आभामय दृष्टिपात आता रहा है बेटा! यह आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है आगे किस किस रूप में इस संसार को दार्शनिक किस रूप में स्वीकार करते हैं यह चर्चाएं कल प्रगट करेंगें आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा।

१८ 03 05 1987 पुष्प 54 55 महाराजा अश्वपति का याग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप माने गएं हैं, जितना भी यह संसार रूपी मानो याग हो रहा है, यह उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा यह उसी का क्रियाकलाप है। जब हम यह विचारने लगते है, कि परमपिता परमात्मा अपने में यज्ञोमयी माना गया है, आज के हमारे वेद के पठन पाठन में, नाना प्रकार के यागों का वर्णन आ रहा था। मानो यागों की चर्चा आ रही थी। और विचार आ रहा था, क्या प्रत्येक मानव इस संसार का याज्ञिक बना रहे। क्योंकि याग तो मानव का एक आत्मीय कर्तव्य कहलाता है। यह आत्मा की आभा में

निहित होने वाला है।

आनन्द की अनुभूति

तो आओ मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेदमन्त्र, हमें नाना प्रकार की प्रेरणा दे रहा है, नाना प्रकार की जो प्रेरणाएं, परमपिता परमात्मा की वेदोमयी वाणी से प्रायः हमे प्रेरणा आभा में प्राप्त होती रहती है। तो मानो उसी में सदैव रत्त रहते हैं। तो आओ मेरे पुत्रों! आज मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, आज का हमारा वेदमन्त्र, यागमयी चर्चा कर रहा था। अथवा याग के सम्बन्ध में, भिन्न भिन्न प्रकार के मन्त्रों का उद्गीत गाया जाता है, अथवा उच्चारण किया जाता है, जिससे मानव का अन्तर्हृदय, अन्तर्मुखी बन करके, अपने में वह मानवीय दर्शनों का चिन्तन कर सके। क्योंकि चिन्तन करना बहुत अनिवार्य है। इससे पूर्व शब्दों में बेटा! हम यह उच्चारण कर रहे थे कि मनस्तव प्राणतव चिन्तनं ब्रीहि व्रतं देवाः मेरे प्यारे! मन और प्राण के दोनों के सन्निधान से दोनों के समन्वय से, एक मानव दर्शन का अद्भुत चिन्तन होता है। तो मानव को उस चिन्तन में चिन्तनीय रहना चाहिए। क्योंकि मानव जब संसार में आता है, तो उसका एक उद्देश्य बना रहता है। इस संसार में आने का केवल एक ही उद्देश्य है कि वह आनन्द के लिए पिपासी रहता है और आनन्द के लिए मानो देखो, वह सर्वत्र क्रियाकलापों में परणित होता रहता है कहीं वह मानो देखो, पुत्र में, पुत्रियों में, **संसार का जितना भी प्रपञ्च है, मानो उसमें सब में वह एक आनन्द की अनुभूति ही प्राप्त करता रहता है। परन्तु उसमें आनन्दवत प्राप्त नही होता है।** आनन्द जब प्राप्त होता है, जबकि संसार को जान करके और संसार की प्रतिभा मानो देखो, अन्त में संसार में मानवीय अकृतियों में उनका सबका एकत्रित करता हुआ, अपने में सबका समावेश करता हुआ मेरे प्यारे! देखो, वह अन्त में मौन हो जाता है। और अन्तर्मुखी हो करके अपनी अन्तरात्मा में परमात्मा का जो दर्शन करता है। वही मुनिवरों! देखो, उसका एक परमानन्द कहलाता है। आज हमें आनन्द को प्राप्त करने के लिए, हम परमपिता परमात्मा के यज्ञमयी स्वरूप का दर्शन करना चाहते हैं। प्रत्येक मानव उन दर्शनों में लगा रहता है, जिन दर्शनों में मानवीयता

का ह्रास होता है। मानो देखो, मानवीयता का दिग्दर्शन नही होता, तो इसलिए दर्शन करने लिए, हम मानवीय उस परमपिता परमात्मा जो यज्ञोमयी स्वरूप है, उसका प्रायः मुनिवरों! देखो, हम दर्शन करना चाहते हैं, प्रत्येक आभा में नियुक्त रहना चाहते हैं। तो आज का हमारा वेदमन्त्र ये परमपिता परमात्मा की जहाँ उपासना और जहाँ महिमा का वर्णन आता रहता है, प्रत्येक वेदमन्त्र, उसकी प्रतिभा में लगा हुआ है, तो मुनिवरों! देखो, उसी आभा में, उसी वृत्तियों में, उसी आभा में ले जाते हुए, हम उस परमपिता परमात्मा के अद्भुत ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा में रत्त रहना चाहते हैं। तो मेरे प्यारे! आओ आज मैं तुम्हें एक यज्ञ के सम्बन्ध में, यागों की प्रतिभा में, एक मानो देखो, मानवीय दर्शन का दार्शनिक रूप, तुम्हारे समीप हम ले जाना चाहते हैं। मेरे प्यारे! आज का हमारा वेदमन्त्र याग सम्बन्ध में उद्गीत गा रहा है, वास्तव में परमपिता परमात्मा ने, जब इस संसार का सृजन किया, अथवा ब्रह्माण्ड की रचना की है, उस ब्रह्माण्ड की रचना में मानो देखो, यह संसार, यज्ञोमयी स्वरूप का उन्होंने वर्णन किया है, अथवा उसको रचाया है, जैसे यज्ञशाला में, यज्ञमान अपनी यज्ञवेदी का रचयिता है वह यज्ञवेदी को रचता रहता है, परन्तु इसी प्रकार परमपिता परमात्मा की महानता, एक आभा में निहित रहने वाली है। मानो देखो, उसी में हम, अपने को आभा को रत्त कराना चाहते हैं।

सूर्य भी याज्ञिक

तो आओ मेरे पुत्रों! देखो, यागां देयस्सुतां याग प्रव्हा लोकं सूर्या आज के हमारे वेद के पठन पाठन में यह आ रहा था कि सूर्य भी याज्ञिक है, मानो चन्द्रमा भी याग कर रहा है, मेरे प्यारे! जितने तारामण्डल है, एक दूसरें में ओत प्रोत हो करके, एक दूसरे से उनका समन्वय होने से, मेरे पुत्रों! एक भव्य याग हो रहा है, परमपिता परमात्मा इस संसार रूपी याग के बेटा! देखो, मान वह ब्रह्मा निर्माणित किए गएं हैं, उद्गाता वायु उद्गीत गाता रहता है प्राण का सञ्चार करता रहता है, मेरे प्यारे! देखो, यह अग्नि तेजोमयी दे करके, तेजस्वी बना करके, ऊर्ज्वा दे करके, मेरे पुत्रों! यह अपने में याग

कर रही है, यह आपोमयी हिरणां ज्योति यह आपो मानो देखो, एक ज्योति है, अनुपमता यह भी अपने में याज्ञिक बना हुई है, मेरे प्यारे! नाना प्रकार के खाद्य खनिज पदार्थों को प्रदान करने वाली, ये वसुन्धरा मुनिवरों! देखो, जिसे पृथ्वी के नामों से वर्णन किया जाता है, इसे वसुन्धरा भी कहते हैं। प्रथा भी कहते हैं। धेनु भी कहा जाता है, भिन्न-भिन्न रूपों से बेटा! इसका निरूपण किया है और निरूपण वेत्ताओं ने अपना वर्णन करते हुए यह कहा कि सम्भव व्रहे व्रातं देवं अग्नि यागाः मेरे प्यारे! देखो, एक दूसरे में पिरोएं हुए होने से, सहायक होने से बेटा! याग हो रहा है। जैसी मेरी प्यारी माता, अपने पुत्र को महान बनाने के लिए अपने गर्भस्थल अप्रतों में बेटा! शिक्षा देना प्रारम्भ करती है, तो वह शिक्षा देती हुई, मानो एक भव्य याग हो रहा है, तो बेटा! याग के सम्बन्ध में वैदिक मन्त्रों में, वेदाचार्यों ने अपनी बड़ी बड़ी सुन्दर अपनी बेटा! टिप्पणियां दी हैं, अपना विचार दिया है।

पण अकाल में प्राणों की रक्षा

आओ आज मैं तुम्हें देखो, उस अतीत के काल में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ बेटा! देखो, अर्द्धभाग इत्यादि मुनियों की चर्चा आती रहती है, एक समय बेटा! देखो इन्द्र और वत्रासुर का संग्राम हुआ, और वत्रासुर और इन्द्र के संग्राम में, मानो देखो, वत्रासुर ने अति वृष्टि के रूप में, मानो इस पृथ्वी को जल मग्न कर दिया। जब यह पृथ्वी जल मग्न हो गई, तो पण अकाल हो गया, जब पण अकाल हो गया तो बेटा! अन्नाद सब समाप्त हो गया। अन्न नही रहा। अब मानव प्राणी देखो, प्राणों की रक्षा कैसे करें? तो मुनिवरों! देखो, एक समय महर्षि अर्द्धभाग अपने यहाँ अपने आश्रम में उनकी पत्नी मानो अन्न के बिना प्राणान्त होने लगे जब प्राणान्त होने लगे, अपने देव को कहा हे प्रभु! हे देवत ऋषि! मेरा प्राणान्त होने वाला है। मैं अन्न के बिना इस संसार से जा रही हूँ। मेरे पुत्रों! देखो, महात्मा अर्द्धभाग ने वहाँ से गमन किया, और भ्रमण करते हुए, मेरे पुत्रों! देखो, एक हाथीवान मानो देखो, माह, उड़दों को पान कर रहा था। ऋषि ने जा करके कहा भिक्षामयी देहि मेरे पुत्रों! जैसे भिक्षा उन्होंने प्राप्त की, तो उन्होंने मुनिवरों!

देखो, अपने उड़दों में से उन्हें प्रदान कर दिया जब प्रदान कर दिया तो स्वीकार कर लिया। ऋषि ने कहा ऋषि ने जब वह उनको प्राप्त कर लिया, तो हाथीवान ने कहा क्या ऋषिवर! मैं आपको जल लाऊं। उस समय कहा तुम शूद्र हो।

दूसरे के आश्रित मत बनो

जब शूद्र का वाक् उच्चारण किया, तो हाथीवान ने कहा प्रभु! आपने मुझे मेरे झूठों में उड़दों में तो मैं शूद्र नही हूँ, जल में कैसे शूद्र बन जाऊंगा? तो मेरे प्यारे! हाथीवान से ऋषि कहते हैं क्या देखो, जिनसे प्राणों की रक्षा होती हो, उसमें झूठन कुछ नही होता क्योंकि मानव यह संसार एक दूसरे से पिरोया हुआ है, यह प्राणी मात्र एक दूसरे से पिरोया हुआ है, इसीलिए वह एक ही सूत्र कहलाता है। परन्तु देखो, यह जो जल है, यह पर्याप्त है, अन्न का अभाव है, इसीलिए मैं तुमसे प्राप्त कर रहा हूँ, प्राणों की रक्षा के लिए, परन्तु देखो, जल बहुतायात में हैं, इसीलिए जल के लाने में जिसको मैं स्वतः कर सकता हूँ, उसका मैं आश्रित क्यों बनूं? जो मानो जिन क्रियाकलापों को स्वतः मानो किया जा सकता है वह दूसरों का जो आश्रित होता है वह मुनिवरों! देखो, उसे शूद्र की सज्ञा प्रदान की गई है। मानो देखो, वही शूद्र है, जो अपने स्वतः अपने क्रियाकलापों से विभिन्न क्रियाओं में रत्त हो करके, मेरे पुत्रों! वह उसका आश्रित बन जाता है। वह शूद्र संज्ञा को भी प्रदान है। यह महर्षि ने बेटा! अर्द्धभाग ने जब वर्णन किया, तो हाथीवान बड़े प्रसन्न हो गएं। इस उपदेश पा करके, कि मानव को अपने भुजों से अपने क्रियाकलापों को स्वतः की करना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, वहाँ से महर्षि ने वह झूठें उड़द ले करके, वह अपने आश्रम में पंहुचे, पत्नी का कोई कोई श्वास गति कर रहा था, मेरे प्यारे! उन्होंने जैसे माह उन्हें प्रदान किया। तो बेटा! प्राणों की रक्षा हो गई। मानो देखो, जब उदर में अप्रतं ब्रह्मे वाचप्रव्हा यह अन्नाद जब पंहुचा तो बेटा! मानो देखो, जैसे सूर्य मुनिवरों! देखो, वत्रासुर के ओझल में आ जाता है, और वह ओझल में आ करके मानो देखो, जब वह देखो, उनका दर्शन समाप्त हो जाता है। तो सूर्य अपने में प्रकाश देता है। उष्णाता और कान्ति को ले करके प्रकाश का द्यौतक

बना हुआ है, वह प्रकाश देता है, वह आनन्दवत बनाता रहता है। तो मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार व्रत्यं ब्रह्मे पत्नी के प्राणों की रक्षा की, तो मुनिवरों! देखो, अगले दिवस उन्हें कहीं से महाराजा अश्वपति के यहाँ से एक निमन्त्रण आया, और निमन्त्रण यह था कि आप हमारे याग के मानो देखो, अध्वर्यु के आसन को प्राप्त करो।

मेरे प्यारे! महात्मा अर्द्धभाग ने मानो देखो, उसको स्वीकार कर लिया, जब स्वीकार कर लिया तो बेटा! देखो, अगला जो दिवस आया, प्रातःकालीन, वहाँ से गमन करते है गमन करने से पूर्व अपने पत्नी से बोला कि हे देवी! मानो मैं याग के लिए मानो महाराजा अश्वपति के यहाँ याग में सम्मिलत होना चाहता हूँ, और तुम मानो देखो, अपने में प्रभु का चिन्तन करती रहो, और संसार को नाना रूपों में निहारने की आवश्यकता नही है। क्योंकि प्रभु की प्राण प्रतिष्ठा रूप में परणित रहने वाला है। तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा भगवन! मैं वृत्तियों में हूँ, मेरे प्यारे! देखो, महात्मा अर्द्धभाग ने वहाँ से गमन करते हुए मेरे प्यारे! महाराजा अश्वपति के याग में परणित हो गएं, यज्ञशाला विद्यमान है, निर्माणित हो गई है, उसमें मानो एक आसन मानो शून्यता में है जिसको उद्गाता गा आसन कहा जाता है।

उद्गाता

मेरे प्यारे! महात्मा अर्द्धभाग ने, उस आसन को ग्रहण किया और उस आसन पर वह विद्यमान हो गएं, जब विद्यमान हो गएं, तो बेटा! राजा अश्वपति उपस्थित हुए, और राजा अश्वपति ने कहा हे महात्मन! आप शासन पर ब्रह्मचर्य व्रतं मानो जिस आसन पर तुम विद्यमान हो, यह आसन कौन है? उन्होंने कहा कि यह भगवन! उद्गाता का आसन है। मैं उद्गीत गाने वाला हूँ, मैं उद्गाता हूँ, उन्होंने कहा उद्गाता किसे कहते हैं? उन्होंने कहा उद्गाता उसे कहते हैं। जो उद्गीत गाता है। जो वेदमन्त्रों को स्वरों से मानो देखो, उद्धधृत करने वाला है। जो स्वरों से गाता है। स्वर अपने में मानो देखो, गम्भीर आत्मीय चिन्तन का एक अनुपम विषय रहा है, तो मैं मानो देखो, उद्गाता के रूप में विद्यमान हूँ, तो मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने यह वाक् कहा, तो राजा ने पुनः कहा कि उद्गाता

किसे कहते हैं? उन्होंने कहा उद्गाता उसे कहते हैं, जो विशुद्ध रूपों से मानो देखो, यज्ञशाला में जब आहुति साकल्य के साथ जो आहुति का प्रतिनिधितव करने वाला है, वेदमन्त्रों का उद्गीत गाने वाला है, मानो जिसका स्वर देखो, अन्तरिक्ष में, क्या द्यौ लोक को प्राप्त हो जाता है। वह द्यौ लोक में प्रवेश हो जाता है, वही तो द्यौ लोक को ऊँचा बनाता है। मेरे प्यारे! देखो, पुनः उन्होंने महाराजा अश्वपति ने यह प्रश्न किया, क्या भगवन आप जो यज्ञशाला में विद्यमान हैं आपने उद्गाता के आसन को प्राप्त किया है, यह उद्गाता का आसन क्या कर रहा है? क्या कहता है? उद्गीत क्या है? तो मेरे प्यारे! राजा को यज्ञमान को उत्तर देते हुए, उद्गाता ने कहा क्या भगवन! मानो देखो, तीन प्रकार के विचार हमारे समीप होते हैं, एक भूः एक भुवः एक स्वः मानो ये तीन व्याहृतियों में परणित हो जाते है। मानो सबसे प्रथम भूः जो मानो देखो, जिसमें गुरूतव विद्यमान रहता है और द्वितीय जो भुवः है जिसमें तरलतव परमाणु अपने में गति करता रहता है, और देखो, तृतीय यह स्वः कहलाता रहता है। मानो इन सब परमाणुओं की गति को वह द्यौ से परणित करा देता है वह द्यौ कहलाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह स्वः द्यौ है, और तरलतम मध्यम है, ओर देखो, जो गुरूतव वाला है, वह वृत्तियों में मानो देखो, भू कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा कि भु र्भुवः स्वः यह तीन प्रकार के लोक कहलाते हैं।

जब हम विज्ञान के वाङ्गमय में प्रवेश करते हैं, जब आध्यात्मिकवाद में जाते हैं, तो मानो यह तीन प्रकार के परमाणु हैं। मुनिवरों! विज्ञान जिन पर आधारित रहता है। मेरे प्यारे! देखो, गुरूतव तरलतव ओर तेजोमयी ये तीन प्रकार के परमाणु हैं तेजोमयी का प्रतिनिधि करने वाला अग्नि कहलाता है। और तरलतव का निर्माणं ब्रीहि मानो आपोमयी ज्योति कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, गुरूतव अपने में महानता की आभा का वर्णन कर रहा है। मानो तीन प्रकार के परमाणुओं के भिन्न भिन्न प्रकार के भेदन माने गएं हैं।

परन्तु मूल रूप में तीनो देखो, आभा में रत्त रहने वाला है।

भू भुंवः स्वः

मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार महात्मा अर्द्धभाग ने बेटा! अपना वर्णन किया तो वर्णन करते ही ऋषि राजा ने कहा प्रभु! यह वाक् तो हमें स्वीकार हो गया। परन्तु हम यह जानना चाहते हैं क्या भू भुंवः स्वः यह क्या है कि मानव का कर्तव्य है, कि वाणी और अपने में ऐसे क्रियाकलाप समाज के होने चाहिएं, विशेष राजा के होने चाहिएं, जिससे मानो देखो, यह भू भुंवः स्वः यह पवित्र हो जाएं मानो यह सत्य उच्चारण करने से सत्य क्रियाकलापों में परणित रहने से ही मानो देखो, उनका रूपण अप्रतियों में परणित होता रहता है? तो उन्होंने कहा क्या यह तीन प्रकार का जो परमाणुवाद है, तीन प्रकार की जो प्रतिभा है, मानो इसीलिए यज्ञमान भी तीन ही आहुति प्रदान करता है एक मानो पुनरूक्ति है एक पुर्नवाका है एक वाचक कहलाता है। ये तीन प्रकार की मानो देखो, आहुतियां यज्ञमान अपने में प्रदान करता है जिससे मानो बेटा! देखो, स्वाहा, उच्चारण होते ही वह अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके, बेटा! द्यौ में प्रवेश कर जाता है। वही शब्द मेरे प्यारे! वायुमण्डल को ऊँचा बनाता है क्योंकि उसमें साकल्य है, उसमें सत्यवाद है उसमें ऋतवाद है ऋत और सत से ही मुनिवरों! देखो, यह संसार एक दूसरे में गुथा हुआ सा दृष्टिपात आता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्रों में न ले जाता हुआ, बेटा! देखो, राजा मौन हो गएं, ऋषि भी वाक् उच्चारण करता हुआ मौन हो गया उसने कहा हे ऋषिवर! हम यह जानना चाहते हैं? क्या मानो देखो, भूः का समन्वय कहाँ है और भुवः का समन्वय किससे है? और देखो, स्वः का समन्वय किससे रहता है? मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने वर्णन करना प्रारम्भ किया, उन्होंने कहा भूः का समन्वय मेरे प्यारे! देखो, पृथ्वी रूप में परणित होता है, और मुनिवरों! देखो, स्वः का जो समन्वय है, वह आपोमयी में जिससे उसका चन्द्रमा से समन्वय रहता है, इसीलिए चन्द्रमा अमृत की अमृत की वृष्टि करता रहता है और मुनिवरों! देखो, स्वः का सम्बन्ध द्यौ से रहता है, और द्यौ का समन्वय

सूर्य से होता है, सूर्य ही मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार की वृष्टि का मूल है, और मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार की ऊर्ज्वा दे करके, इस संसार को प्रकाश में बना देता है। रात्रि के अस्तित्व को समाप्त करके ये प्रकाश में ला देता है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह हमारे यहाँ सूर्य, द्यौ से प्रकाश ले करके, ऊर्ज्वा को बिखेरता रहता है। तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या, हमारा यह वाक् यह कह रहा है, कि हम मुनिवरों! देखो, उस सूर्य की आभा में, द्यौ से प्रकाश ले करके, द्यौ में अभ्योदय होता हुआ अपने में एक महानता का दर्शन होता रहता है।

मेरे प्यारे! देखो, राजा बड़े प्रसन्न हुए, राजा ने यज्ञमान ने कहा धन्य है यह उद्गाता तो वास्तव में बड़ा सुयोग्य है, अध्ययनशील है और मानो देखो, चिन्तन में शील कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, राजा अश्वपति तो मानो देखो, मौन हो गया, इतने में उनकी पत्नी उपस्थित हुई और पत्नी ने कहा हे उदगातं ब्रह्मे हे आसनं ब्रह्मे ऋषिवर अवृत्ति उन्होंने कहा हे ऋषि अर्द्धभाग! जिस आसन पर तुम विद्यमान हो, यह आसन किसका है? उन्होंने कहा यह आसन उद्गाता का है। जो उद्गीत गाता है। उन्होंने कहा उद्गाता कौन होता है? उद्गाता वह होता है, जो वेदमन्त्रों को स्वरों से उच्चारण करता है। जो वेदमन्त्रों की ध्वनि में ध्वनित हो जाता है। मानो देखो, वही तो उद्गाता है जो मानो देखो, संसार के ज्ञान और विज्ञान में जो रत्त रहने वाला है। और अपने में जो उसको ग्रहण करता है, और अपने में जो धारण करता है, वही तो उद्गाता है, वह उद्गीत रूप में गाता रहता है। मेरे प्यारे! पत्नी बड़ी प्रसन्न हुई, देवी ने यज्ञमानं ब्रहे उन्होंने कहा ऋषिवर! आपका उत्तर यथार्थ है परन्तु हम जानना और चाहते हैं क्या यह जो उद्गीत गाने वाला है, इसका समन्वय किससे रहता है? उन्होंने कहा जो उद्गीत गाने वाला है, उसका समन्वय मानो देखो, चन्द्रमा से होता है, और चन्द्रमा का समन्वय सूर्य से होता है, और सूर्य का समन्वय द्यौ से होता है, और द्यौ का समन्वय मानो देखो, अन्तरिक्ष से होता है और अन्तरिक्ष का समन्वय महतत्व से होता है। मानो देखो, सबका तारतम्य, एक दूसरे से गुथा हुआ होने से, मानो देखो, हमारा जो समन्वय, वह चन्द्रमा से रहता है। इसीलिए चन्द्रमा सोम कहलाता है, जो सोम की वृष्टि करने वाला है, मेरे प्यारे! वही सौम्य

प्रवृत्ति देखो, स्थावर जो सृष्टि है, जो नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं, उनमें जो रसों का स्वादन करने वाला है, रसों को प्रदान करने वाला है, मेरे प्यारे! देखो, वह चन्द्रमा कहलाता है। ऐसी वाणी में रस आता है, वाणी में एक स्वर ध्वनि होती है, उस ध्वनि में चन्द्रमा का समन्वय होता है, माता के गर्भस्थल में जब पुत्र विद्यमान होता है, शिशु विद्यमान होता है, तो उसी चन्द्रमा का समन्वय मानो देखो, माता की रसना के निचले भाग में चन्द्रकेतु नाम की नाड़ी है, उसका समन्वय पुरातत नाम की नाड़ी से है। पुरातत नाम की नाड़ी का सम्बन्ध, माता की लोरियों से है, माता की लोरियों से पश्चम नाड़ी बन करके, नाभि से नाभि का समन्वय हो करके बेटा! वह सोम अमृत की वृष्टि कर रहा है।

मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विज्ञान या शारीरिक विज्ञान में ले जाना नही चाहता हूँ, विचार केवल यह हमारा कि हम मानो देखो, उदगं ब्रह्मे वाचप्रव्हा मेरे पुत्रों! जब महात्मा अर्द्धभाग ने इस प्रकार उत्तर दिया, तो मानो राजलक्ष्मी बेटा! देखो, मौन होने लगी, और राजलक्ष्मी ने पुनः मौन हो करके यह प्रश्न किया कि महाराज! हम यह ओर जानना चाहते हैं कि मंगल ब्रहे यह जो उद्गाता का आसन है, यह मानो देखो, उद्गीत गाता रहता है, यह किसका उद्गीत गाता है, उन्होंने कहा कि यह जो परमपिता परमात्मा की जो अमृतमयी वाणी है, अथवा वेदमयी वाणी है। उस वाणी का वह उद्गीत गाता रहता है, और वाणी अपने में मानो श्रद्धा व्रतं ब्रह्मे ये वाणी सत्य को उच्चारण करती रहती है, तो मानो देखो, उद्गीत का समन्वय सत्य से होता है, सत्य का समन्वय प्रकृति से होता है, प्रकृति में जो चेतनामयी आती है, वे परमपिता परमात्मा है, इसीलिए ब्रह्म सत्यं है देखो, यह प्रकृति जड़वत हो करके ये मानो देखो, अपने में ऋततव हो जाती है। तो मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने, इस प्रकार उत्तर दिया, ऋषि पत्नी अपने आसन पर विद्यमान हो गई, उसने कहा धन्य है ऋषिवर! आपका जो अध्ययन है, वह बड़ा गम्भीर और मनन शील है। मानो जिसमें सर्वत्र ब्रह्माण्ड समाहित हो जाता है, तो ऐसा एक विचार होता है वेदमन्त्रों का जिसमें बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड, उसी में समाहित हो जाता है। और ब्रह्माण्ड अपने में ब्रह्मण्डतव कहलाता है। जिसमें बेटा! देखो, नाना प्रकार के

मण्डल एक दूसरे से गुथे हुए हैं, जैसे एक माला है, माला में भिन्न भिन्न प्रकार के मनके हैं, और वह एक सूत्र में पिरोए जाते हैं, उस सूत्र और देखो, मनकों का दोनों का समन्वय हो करके बेटा! माला बनती है। इसी प्रकार ये प्रत्येक मानो देखो, जितने भी तत्त्व कहलाते हैं ये उस माला के मनके हैं, जितने भी लोक लोकान्तर हैं, ब्रह्माण्ड हैं, ये भी उस परमपिता परमात्मा का ही मानो देखो, माला और मनकों के सदृश्य कहलाता है।

तो आओ मेरे पुत्रों! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है यागां रुद्र ब्रहे वेद का मन्त्र कहता है, यागां ब्रह्मे वाचप्रहे यागां जोतप्रव्हा लोकं मेरे प्यारे! देखो, याज्ञिक जो पुरूष होते हैं, वह इस संसार को और लोक को विजय कर लेते हैं। मेरे प्यारे! देखो, याग का अभिप्रायः यह है, क्या जितना भी संसार का शुभ क्रियाकलाप है, शुभ कर्म है, आत्मीय चिन्तन है, आत्मीय कर्म है, उस सर्वत्र का नाम बेटा! देखो, याग के रूप में परणित किया गया है। वह सर्वत्र एक यागमयी स्वरूप माना गया है। तो मेरे पुत्रों! देखो, महात्मा अर्द्धभाग ने इस प्रकार अपना निर्णय देते हुए, विचार देते हुए, बेटा! देखो, मौन हो गएं, यज्ञमान और उनकी पत्नी मानो देखो, मौन हो गई, और याग का प्रारम्भ होने लगा। मानो देखो, अग्न्याधान करते हुए, अग्नि में जब साकल्य प्रदान किया जाने लगा। तो मेरे प्यारे! एक एक आहुति द्यौ में प्रवेश हो जाती है यदि यज्ञमान का हृदय प्रायः पवित्र है। मानो देखो, हृदय महान है मुनिवरों! देखो, वह हृदय श्रद्धामयी ज्योति बन करके मेरे पुत्रों! देखो, द्यौ में प्रवेश हो जाती है, वह द्यौ में मेरे प्यारे! द्यौ में उसकी प्रतिभा अपने में कृतियों में परणित हो जाती है। विचार केवल यह कि हमारे यहाँ बेटा! देखो, हृदय जो शुद्धम जो क्योंकि हृदय में ही संसार समाहित रहता है। मेरे प्यारे! नाना प्रकार के रूप, रस गन्ध को मानो जो भी ग्रहण करता है, उसकी स्थिति सब हृदय में रहती है। इसीलिए मानव जब याज्ञिक बनता है तो इसीलिए हृदय ग्राही बन करके हृदय में मानो श्रद्धा की ज्योति जागरूक करके, मेरे पुत्रों! देखो, उसे परमात्मा से समन्वय करते हुए उस क्रियाकलापों में जब मानव रत्त हो जाता है तो एक आनन्दमयी ज्योति जागरूक हो जाती है। आओ मेरे प्यारे! देखो, वही तो वायुमण्डल का शुद्धिकरण

करता है। वही तो मेरे पुत्रों! देखो, दूषित मानो देखो, जो आवरण आ जाता है उसको वह दूरी की देता है।
तो विचार विनिमय क्या, आज का हमारा वाक् यह कहता है कि हम परमपिता परमात्मा के रचाए हुए, इस ब्रह्माण्ड को चिन्तन में लाना प्रारम्भ करें, परमात्मा ने एक ऐसा अनूठा जगत निर्माणित किया है, जो एक दूसरे से बेटा! एक दूसरा मानव कटिबद्ध हो रहा है। निर्णायक हो रहा है, तो विचार विनिमय क्या मुनिवरों! देखो, आज का विचार, यह क्या कह रहा है? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम इस संसार रूपी याग में से मानो देखो, कुछ तो अपने चिन्तन में लाने का प्रयास करें जिससे बेटा! हमारा मानवीयतव पवित्रता की आभा में रत्त हो जाएं। मेरे प्यारे! देखो, महात्मा अर्द्धभाग अप्रत्तम उस याग में बेटा! सम्मिलित रहे परन्तु याग चलता रहा। बहुत समय तक मुनिवरों! बेटा! देखो, याग अपनी आभा में रत्त होता रहा। याग की प्रतिभा अपने में महानता का प्रायः दर्शन करता रहा।

प्रतिभोज

मेरे पुत्रों! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता रहता है। राजा अश्वपति का याग जब सम्पन्न हुआ, अथवा पूर्णता को प्राप्त होने लगा, जब पूर्णता को प्राप्त हो गया, उनका याग मेरे प्यारे! देखो, याग का एक मानो एक याग के पश्चात उसका प्रतिहार होता है, प्रतिभोज होता है, प्रतिभोज का अभिप्रायः होता है क्या जितने भी ऋषि मुनि, बुद्धिमान मानो उस सभा मण्डप में आते हैं, वह अपना विचार विनिमय प्रगट करते रहते हैं, क्या वह जो भी क्रियाकलाप है, इसकी अपनी अपनी उप्प्रहारता अपने में परणित करते रहते हैं।
मेरे प्यारे! जैसे ही याग सम्पन्न हुआ, महाराजा अश्वपति ने अपना वाक् अपना व्यक्तव्य देना प्रारम्भ किया वह एक याग क्या हमारे यहाँ वाजपेयी याग कहलाता है वाजपेयी याग का अभिप्रायः है जहाँ जिस राजा के राष्ट्र में गऊ हों जिस राजा के राष्ट्र में वृख बन करके मानो पृथ्वी में अन्न इत्यादियों में सहायक बन करके मानो देखो, अपने को

समर्पित कर देते हैं, मेरे प्यारे! देखो, जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाएं। तो उसको हमारे यहाँ अग्निष्टोम याग, वाजपेयी यागों में परणित किया गया है। मेरे पुत्रों! देखो, महाराजा अश्वपति ने याग के सम्पन्न होने के पश्चात, उन्होंने सबका अतिथि किया, और सबको कहा कि धन्य है भगवन! मेरे यहाँ बुद्धिमानों का समूह आ करके, मेरे याग को सम्पन्न कराया। मेरे प्यारे! देखो, उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं, महात्मा अर्द्धभाग से, ये प्रार्थना की कि महाराज! आप कुछ उच्चारण कीजिए। उन्होंने कहा कि आज यह जो याग हुआ है, यह याग मानो देखो, इसे प्रथा याग कहते हैं। यह पृथ्वी का शोधन करने वाला है, मानो देखो, इसकी तरंगें वायुमण्डल में प्रवेश होती है, द्यौ इन्हें स्पर्श करता है, और वही देखो, वृष्टि का मूल बन करके देखो, वहीं देखो, यहाँ वृष्टि करा करके, नाना अन्नाद और खनिजों के मूल में विद्यमान है। मेरे पुत्रों! देखो, यह उच्चारण करके, वह मौन हो गएं। जो ब्रह्मा बने हुए थे, यज्ञ के, वह स्वानि ऋषि महाराज, स्वानि ऋषि महाराज ने कहा कि क्या मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ, ऐसा राजा जिस राजा के राष्ट्र में यागों में वृत होता हो, जिसमें रूढ़िवाद का विनाश होता हो, याग भी रूढ़ियों से रहित होता हो, मानो देखो, ऐसा याग प्रायः देखो, इस संसार को ऊँचा बनाता है राष्ट्र और प्रजा को महानता की वेदी पर ले जाता है, मेरे प्यारे! देखो, ये उच्चारण करते हुए, अपने विचार देते हुए मुनिवरों! देखो, याग अपने में सम्पन्न हो गया। याग अपने में बेटा! देखो, उद्गम् ब्रह्मे एक हमारे यज्ञ में चार आसन होते हैं, सबसे प्रथम यज्ञमान, ब्रह्मा, उद्गाता, ओर अध्वर्यु कहलाता है। एक पुरोहित कहलाता है, जो पराविद्या को प्रदान करने वाला है। परा विद्या को मेरे प्यारे! अपने यज्ञमान को पवित्र बनाता है। तो मुनिवरों! देखो, मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, आज का विचार केवल यह है, कि हमारा जो जीवन है, वह याग में है, हमारे जितने क्रियाकलाप है, वह यागों में परणित रहते है। जैसे परमपिता परमात्मा ने, इस संसार रूपी मानो देखो, राष्ट्र का निर्माण किया है। वह यज्ञमयी इस संसार का जिसने निर्माण किया है, मेरे प्यारे! वह निर्माणवेत्ता है, महान है, पवित्र है, आभा में नियुक्त कहलाने वाला है। हम उस परमपिता परमात्मा जो सम्राट है, सम्राटों का भी महान सम्राट कहलाता है। हम उस परमपिता परमात्मा

की आराधना करते हुए, अपने को ऊँचा बनाते हुए, उसके संसार रूपी यज्ञशाला को जानते हुए प्रेरणा पा करके अपने जीवन को, प्रेरणादायक बना करके संसार से बेटा! पार होना चाहिए। आज का हमारा यह वाक् समाप्त होने जा रहा है, आज के हमारे वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः तुमने जान लिया होगा, परन्तु अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् यशो सर्वं मया वर्धप्रव्हा वाचन्नमा देवोभ्यो नमाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, एक ऐसे गम्भीर सागर में, अपने को ले जा रहे थे, और हमें यह अनुभव हो रहा था, कि हम कैसे अनुपम महान सागर में चले गएं है, जहाँ सागर और गागर की चर्चाएं है, मानो देखो, उन्होंने अपने वाक् याग के सम्बन्ध में, परम्परागतों से बड़ा अध्ययन रहा है। ऋषि मुनियों का भी बड़ा गम्भीर अध्ययन रहा है, इस सम्बन्ध में, परन्तु आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है कि हम जो उच्चारण करने के लिए आए हैं, आज जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है। वहाँ प्रायः एक साम याग का पूर्णता को प्राप्त हुआ है। आज हमारा बड़ा सौभाग्य है मानो मेरा अन्तरात्मा, जहाँ यह संसार को दृष्टिपात कर रहा है, यह संसार तो वाममार्गियों का युग कहलाता है, परन्तु देखो, जहाँ दूसरे के रक्त को पान किया जाता है, यह संसार वाममार्ग कहलाता है। परन्तु ऐसे वाममार्ग के काल में, यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके, हूत कर रहा है, वायुमण्डल में अपनी भावना और अपनी श्रद्धा मानो देखो, याग के द्वारा परणित करा रहा है। हे यज्ञमान! मेरा अन्तरात्मा यज्ञमान के साथ रहता है, यज्ञमान के जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। मेरी सदैव ये कामना रहती है, कि यज्ञमान अपने में महान बना रहे, क्योंकि याग हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानो देखो, एक क्रियाकलाप, एक यागों का माना गया है। आधुनिक काल जो वर्तमान का काल चल रहा है, यह बड़ा विचित्र काल है, इस काल में विज्ञान की आभा रत्त हो रही है। मानो विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है, और विज्ञान के दुरूपयोग होने से ही देखो, ये संसार विज्ञानां ब्रहे ये मानो वाममार्ग का कुल मुझे दृष्टिपात आता है। वाम मार्गी कौन होते हैं? जो उल्टे मार्ग पर अपनी गतियां करते हैं,

उल्टे मार्ग के पथ को अपनाते हैं, आहार और व्यवहारों में, दोनों में अश्लीलता आ जाने का नाम ही वाममार्ग कहलाता है। अपना आहार न पान करना, नाना प्रकार के देखो, मांस का भक्षण करना, और भी नाना प्रकार अशुद्ध आहारों को ग्रहण करना उससे उनका वाममार्ग काल की प्रवृत्ति बन जाती है। तो आधुनिक काल में मैं अपने यज्ञमान को, हे यज्ञमान! इस वाममार्ग के युग में, तुम्हारे जीवन के सौभाग्य की, मैं कामना करता रहता हूँ। आज तुम देखो, ऐसे क्रियाकलाप में परणित हो, जिससे मानो देखो, तुम्हारे अन्तरं ब्रह्मा इस देवतं आधुनिक काल का विज्ञानवेत्ता यह कह रहा है क्या प्रदूषण आ रहा है ओर वह प्रदूषण मानो देखो, कुछ समय के पश्चात बीस वर्षों के पश्चात यह संसार ऐसा बन जाएगा कि मानो श्वास लेने मात्र से देखो, प्राणान्त हो सकता है। ऐसा विज्ञानवेत्ता कहते हैं। परन्तु मैं यह कहता हूँ कि हे वैज्ञानिकों! इस संसार को संसार को प्राणियों को त्रास न दो ऐसा मानो देखो, कोई परमाणुवाद अपने में ग्रहण करने के लिए तत्पर हो जाओ जिससे मानो देखो, यह प्रदूषण समाप्त हो जाएं। ऐसा कोई क्रियाकलाप है, तो वह याग है, क्योंकि याग में वाणी का शुद्धिकरण हो रहा है, वेदमन्त्रों के शब्द एक माला बन करके अन्तरिक्ष में गति कर रहे हैं, और प्रहे शुद्धिकरण हो रहा है। जितना भी मानो सत्य उच्चारण करने वाले जिस काल में होते हैं। उतना वायुमण्डल पवित्र होता है, जितना अशुद्ध उच्चारण करने वाले प्राणी होते हैं। उतना ही देखो, यह वायुमण्डल अशुद्ध हो जाता है। इसीलिए सत्य उच्चारण करना आत्मीय विचारों को अपनाना मानो देखो, धर्म ओर मानवीयता को अपनाते हुए, रूढ़िवाद को समाप्त करना, इसके मूल में सबसे प्रथम रूढ़ि कहलाती है। राजा को चाहिए हे राजन्! तेरे राष्ट्र से ये नाना प्रकार की रूढ़ियां समाप्त हो जानी चाहिएं। यह रूढ़ियां धर्म का विनाश कर रही हैं, और धर्म जब तक नही रहेगा और रूढ़ि पनपती रहेगी, तो राजा के राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्तियों का सञ्चार होता रहेगा। तो विचार क्या मुनिवरों! मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन करते हुए कहा था कि धर्म रक्त नही बहाता है, धर्म केवल रक्त का शोधन करता है और देखो, यह रूढ़ियां रक्त को बहाती हैं, और अमृतं देखो, रक्त भरी क्रान्ति उत्पन्न हो जाती हैं। वही राष्ट्र के लिए

घातक है, समाज के लिए मानो देखो, समाज ही जो मानवीय सत्य है, उन्हें नष्ट कर देती है। मानव दर्शन का ह्रास हो जाता है।
तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यही मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय देने के लिए आया हूँ कि आज का जो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कैसे अगाध समुद्रों में, क्या राजा अपने राष्ट्र में अग्निष्टोम, वाजपेयी याग कराते हैं, आधुनिक काल का जो राष्ट्रवेत्ता है वह याग से शत्रुता कर रहा है, महाराजा अश्वपति जलों का पान करते थे आधुनिक काल का राष्ट्र नाना प्राणियों को अग्नि में तपा करके मानो उसका पान करा करके प्रातःराश की प्रतिभा कर रहा है, तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ कवल यह कि हे यज्ञमान! ऐसे वाममार्ग के काल में तुम्हारे हृदय में यह याग इत्यादियों का जो शुद्धिकरण की प्रतिभा का जन्म होता है। यह सदैव बना रहे, और तुम्हारा मानो सौभाग्य अखण्ड बना रहे। इसके साथ मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पा रहा हूँ। अप्रतं ब्रह्म लोकां।
पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे महानन्द जी के हृदय में राष्ट्रीय एक बड़ी दाह रहती है। मानो यह विचार रहते हैं कि राष्ट्र सदैव पवित्र होना चाहिए, प्रत्येक मानव पवित्र होना चाहिए, ऐसी इनकी प्रतिभा बनी रहती है। विचार देते रहते हैं, परन्तु देखो, यह आज का विचार क्या है, आज के हमारे वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में आए हैं, याग करना हमारा मौखिक कर्तव्य है, हम अपने विचारों में शुद्धिकरण अपने गृह को ऊँचा बनाना मानवीयता का यह एक वृत कहलाता है।
तो आज का विचार यह समाप्त होने जा रहा है, मेरे प्यारे महानन्द जी के हृदय में तो एक राष्ट्रीय दाह बनी रहती है, प्राणी मात्र का शुद्धिकरण प्राणी मात्र देखो, धर्म मानवीय मानो दर्शन को अपनाने वाला हो ऐसा इनका मन्तव्य रहता है। तो आज का विचार यह समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् देवं भविता आभ्यां रथं आपा गतं माहम् आभ्यां रथं वाचन्नमाः। ओ३म् यशश्चं ब्रीहि वरुणा वाचन्नमाः अच्छा भगवन्! आज्ञा।

दिनांक 03 05 1987।

१९ 08 05 1987 पुष्प 54 55 राजकुमारों का नामोकरण

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना, मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गएं हैं, और सर्वत्र ब्रह्माण्ड में, मानो उसकी अनन्तता और महानता का यह प्रदर्शन हो रहा है, जहाँ भी मानव चिन्तन और मनन करने के लिए तत्पर होता है, तो प्रभु का चिन्तन, जब करने लगता है, तो ऐसी गम्भीर मुद्रा में मानो मुद्रित हो जाता है। जिसके ऊपर विचार विनिमय करते करते और उसकी महिमा का चिन्तन करते हुए अन्त में बेटा! वह मौन हो जाता है। और अपने को और उस प्रभु के जो मध्य में जो अन्तर्द्वन्द्व है मानो उसे भी वह समाप्त कर देता है। तो बेटा! विचार कि हम उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर हम सदैव विचार विनिमय करते चले जाएं, जिससे हमारा मानव जीवन, पवित्रता की वेदी पर रत्त हो जाएं। और हम पवित्रता मानो क्रियाकलापों में सदैव तत्पर हो जाएं तो आज का हमारा वेदमन्त्र, भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचना दे रहा है, और नाना रूपों में मानो उसकी प्रतिभा का वर्णन होता रहता है। तो आज का हमारा वेदमन्त्र, ऊँची ऊँची उड़ाने उड़ रहा है, ऊर्ध्वा में जाने के लिए मानव को भिन्न भिन्न प्रकार की प्रेरणा दे करके, उसे प्रेरित कर रहा है।

तो आओ मेरे पुत्रों! आज का वेदमन्त्र जहाँ हम परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप का वर्णन करते रहते हैं, तो आज हमें वेद का मन्त्र कुछ कह रहा है, आज मुझे महानन्द जी के द्वारा प्रेरणा भी प्राप्त हो रही है। उसी प्रेरणा के आधार पर, आज बेटा! हम अपने वाक्यों को प्रारम्भ करने जा रहे हैं, मेरे महानन्द जी की एक प्रेरणा आ रही है कि जब संसार में हमारा आगमन होता है, तो आगमन होने के पश्चात मानव आनन्दवत और मग्नता की एक प्रतिभा का जन्म होता है। मानो द्वितीय हृदयों में ऐसा एक उल्लास

उत्पन्न होता है, क्योंकि संसार में मिलन और विच्छेद का यह एक जगत माना गया है। जितना भी यह जगत हमें यह दृष्टिपात आता है जितना भी सम्बन्ध हैं, परस्पर मानव का सम्बन्ध हैं, यह सब मानो देखो, एक आभा में नियुक्त है, और वेद का मन्त्र कहता है, अश्वं ब्रहे वृतं देवाः मानो शिशु का आना है, और मानो उसके विच्छेद और आने और जाने में ही यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड मानो दृष्टिपात आता है। यह एक मध्य में मानो एक नृत्त हो रहा है। आज हम नृत्त को विचार विनिमय करते हुए अपने ऊपर भी बेटा! अनुसन्धान करें, और जब हम साहित्य के चरण में जाते हैं जहाँ साहित्यवादियों ने जब हम संसार में आए हैं। उनका ऋषि मुनियों ने मानो मध्य में जो समन्वय रहा है, आज मुनिवरों! देखो, हम उन विचारों को ले करके हम आएं, जैसे मुझे प्रेरणा प्राप्त हो रही है, उसी प्रेरणा के आधार पर, बेटा! मैं आज अपने उन वाक्यों को दृष्टिपात कराना चाहता हूँ, जहाँ ऋषि मुनियों का बेटा! अपना मन्तव्य रहा है अपनी एक धारणा रही है, क्या मानो देखो, पितर अपने बाल्य जब गमन करता है, अपने गृह में, जब प्रवेश करता है तो उस समय मन्त्रों का उद्घोष करता हुआ, अग्ने मानो देखो, अग्नि अतिथि है, अपने पुरोहित है, वह अग्नि देवता है, वह अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है। मानो देखो, वही तो प्राणतव कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो, जब पितर यह कहता है, कर्णां ब्रीहि वश्वसुतं वाचन्नमं ब्रहे वृतं वह आत्मा से प्रार्थना करता है, कि हे शिशु! हे आत्म तत्त्व! तू कहाँ से मानो ओर कैसे तेरा जन्म हुआ है? और मानो देखो, वह नामोकरण भी कुछ उच्चारण नही कर रहा है, तो उस समय वह नामोकरण पिता और माता दोनों कहते हैं कि हम मानो देखो, हमारा यह कर्तव्य है कि जब तू कुछ उच्चारण नही कर रहा है, तू कुछ शब्द नही उद्गीत रूप में गा रहा है, तो मानो तेरा नामोकरण हम, अपनी अन्तरात्मा से समन्वय अन्तरात्मा मन और प्राण के साथ हमारा समन्वय होता है, और चेतना के द्वारा, हम तुम्हारे नामोकरण का उद्गीत गाना चाहते हैं। मानो उस समय भी कोई वाक् उच्चारण नही करता तो वह विद्वानों की महान सभा में, वह घोषित

हो जाता है।

राजा दशरथ के पुत्रों का नामोकरण

तो मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आ रहा है, जब मेरे पुत्रों! देखो, वह अयोध्या के काल में चला जाता हूँ, तो मेरा अन्तरात्मा गद्-गद् होता है जहाँ मेरे प्यारे! देखो, महाराजा दशरथ के यहां जब चारों राजकुमारों का आगमन हुआ, तो आगमन होने के पश्चात, मेरे पुत्रों! देखो, उनके नामोकरण की एक चर्चा आई, जब नामोकरण की चर्चा आई, तो वह वशिष्ठ मुनि के द्वार पर पंहुचें, और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा प्रभु! वेदमन्त्रों में आपने हमें अध्ययन कराया था, कि बाल्य का नामोकरण घोषित होना चाहिए। तो हे प्रभु! हमारी इच्छा यह है, कि आप नामोकरण के लिए नाम घोषित करें। मेरे प्यारे! वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह वाक् स्वीकार कर लिया क्योंकि वह राज पुरोहित थे, राजपुरोहित का यह कर्तव्य हो जाता है, क्या वह जो भी पुरोहित हो पुरोहितों का ये कर्तव्य है कि वह यज्ञमान के प्रोप्रेहे मानो उनके गृह में जो भी क्रियाकलाप हो, जो भी नामोकरण हो, उसका उद्घोष होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने यह वाक् स्वीकार कर लिया, माता अरुणधती ने भी, माता अरूणधती से भी जब प्रार्थना की गई, तो उन्होंने भी स्वीकार कर लिया। मेरे प्यारे! देखो, माता अरुणधती ने कहा, कि सर्वत्र जितने बुद्धिमान तपस्वी प्राणी हों तुम्हारे राष्ट्र में निमन्त्रित होना बहुत अनिवार्य है। तो मेरे प्यारे! देखो, राजा ने वह वाक् स्वीकार कर लिया, और स्वीकार करने के पश्चात, मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने महर्षि कागभुषुण्ड जी, महर्षि लोमश इत्यादि सर्वत्र ऋषि मुनियों को बेटा! उन्होंने निमन्त्रित किया, और महर्षि श्वेतकेतु और महर्षि वैशम्पायन और मुनिवरों! देखो, विभाण्डक, श्रृङ्गी इत्यादियों को निमन्त्रित करते हुए मुनिवरों! देखो, उन्होंने एक मानो देखो, नामोकरण का एक उत्सव मनाया। जब वह उत्सव मनने लगा, ब्रहे वंजनं ब्रीहि ब्रह्मे महाराजा शिव हिमालय से मानो देखो, उनके निमन्त्रण के कथानुसार, बेटा! उनका सबका आगमन हुआ, और ऋषि मुनियों की एक पंक्ति ब्रह्मवेत्ताओं के एक पंक्ति भिन्न हो गई, और देखो, जो ब्रह्मवर्चोसि थे, उनकी पंक्ति भिन्न

नाना ब्रह्मवेत्ता, नाना ब्रह्मवर्चोसि, मेरे प्यारे! देखो, लगभग ऐसे ही महान तपस्वी और उनकी गणनाएं, तो राजा के राष्ट्र में जितने भी बुद्धिमान तो मैंने ऐसा दृष्टिपात भी किया है, क्या जितने पृथ्वी पर बुद्धिमान प्राणी थे, मानो तपस्वी थे, जो वेद के वाङ्गमय में प्रवेश करने वाले, सबको निमन्त्रित किया। निमन्त्रित करने के पश्चात, मेरे पुत्रों! देखो, राजा ने अपने बाल्यों को ले करके वह मानो देखो, यज्ञशाला के मानो अन्तर्गत विद्यमान हो करके, वह अपने में उद्घोष करने लगे, और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज को, आज्ञा दी कि महाराज! आप याग का आयोजन कीजिए, महर्षि विभाण्डक महाराज को भी और वैशम्पायन को यह आज्ञा दी कि आईए भगवन! हम आपको पुरोहित के रूप में, ब्रह्मा के रूप में आपको निर्वाचित करते हैं। मानो देखो, जब निर्वाचित हो गएं, तो याग का प्रारम्भ हुआ, नामोकरण में मुनिवरों! देखो, राजा दशरथ से यह कहा हे राजन! नामोकरण उदगीत रूप में गाओं। तुम क्या चाहते हो राजकुमारों का नामोकरण? मेरे पुत्रों! देखो, उन्होंने उनका बारी बारी नामोच्चारण किया, मेरे पुत्रों! देखो, राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न मेरे पुत्रों! देखो, उनके अनुसार, उनका नामोकरण उद्गीत रूप में गाया, और वहाँ उनसे यह प्रार्थना की, कि यह जो आत्मा से जो शिशु रूप में विद्यमान थी, आत्मा से कहा हे आत्मा! तुम्हारा परिचय क्या है? तो बाल्यों की आत्मा ने कुछ परिचय नही दिया, जब परिचय नही दिया तो उन्होंने कहा तुम्हारा नामोकरण, उसमें भी उन्होंने कोई उच्चारण नही किया। परन्तु अन्त में उन्होंने कहा कि तुम्हारा नाम हम उद्घोष करते हैं। उन्होंने नामोकरण उच्चारण करके, उन्होंने उद्घोष किया ओर उद्घोष जब हो गया, तो याग हुआ याग के पश्चात मानो देखो, सब उस बाल्य ब्रह्म वृत्तियों को मेरे पुत्रों! देखो, वह अपने में, अपने अपने अनुभव उच्चारण करने लगे, तो दशरथ ने ऋषि से कहा वशिष्ठ मुनि और माता अरुणधती से कहा, क्या यह राजकुमार मानो यह हमारा सौभाग्य है, हमारे गृह में ओर राजस्थली पर मानो इनका पदार्पण हुआ है, हमारी इच्छा यह है कि इनका मानो देखो, पूर्व परिचय दिया जाएं। तो मेरे प्यारे! देखो, माता अरूणधती उपस्थित हो गई और माता अरुणधती ने कहा ये जो शिशु होता है, मानो उस आत्मा का नाम, एक रूप में शिशु कहलाता है। मानो एक शिशु के रूप में रत्त रहता है मानो

वास्तव में तो यह शिशु होता है, यह बाल्य होता न वृद्ध होता है, न युवा होता है, यह आत्मा जो शरीर में भास रहा है यह एक रस रहने वाला है यह एक रस रहता है मानो शरीर के मानो अपनी अपनी आभा के अनुसार उसका परिवर्तन होता रहता है, आत्मा का परिवर्तन नही होता, मेरे प्यारे! देखो, माता अरुणधती ने यह कहा कि मेरा तो अन्तरात्मा यही कहता है कि आत्मा! तुम इस राष्ट्र गृह में प्रवेश हुई हो, मानो तुम्हारा हृदय मानो तुम्हारी वृत्तिका मानो इस प्रकार की रहनी चाहिए, जिससे देखो, यह राष्ट्र पवित्र बन जाएं, राष्ट्र के ऐश्वर्य में परणित न हो करके, मानो अपने को वास्तिवकता को समाप्त न करना मानो देखो, शिशु का कर्तव्य है, क्या वह अपनी आभा में ऐसा निहित रहना चाहिए, जिससे देखो, वह त्याग और तपस्या में परणित हो करके, राष्ट्र और समाज माता पिता की मानो आज्ञा का पालन करने वाला हो, ऐसा माता अरूणधती ने कहा, कि आचार्य कुल में प्रवेश हो करके, आचार्यों की आज्ञा और आचार्यों की प्रतिभा में रत्त रहने वाला मानो देखो, बुद्धिमान ऐसा ओजस्वी बने जिससे इस ब्रह्माण्ड के आन्तरिक जगत की चर्चा को जानने वाला हो।

आध्यात्मिकवाद का आधार

तो मेरे प्यारे! देखो, अध्ययन यह उच्चारण करते हुए, अप्रतं हे श्रोत्रीय शिशु! तू मेरे इस वाक् को स्वीकार करता हुआ, अपने में तेरा संस्कार उज्ज्वल रूप को धारण करता रहे। ऐसा उच्चारण करके बेटा! माता अरूणधती, अपने में शान्त अपनी स्थली पर विद्यमान हो गई। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि जिस वायुमण्डल में इन बाल्यों का जन्म हुआ है। यह वायुमण्डल ऐसा विज्ञान में हैं, ऐसा मानो देखो, आध्यात्मिकवाद में परणित हो रहा है, आध्यात्मिकवाद त्याग और तपस्या के बिना आध्यात्मिकवाद पनपा नही करता है। इसीलिए आध्यात्मिकवाद अपने में महान और त्याग और तपस्या में परणित होना चाहिए, मानो देखो, ऐसा वेद का मन्त्र, का भाव उच्चारण करते हुए, उन्होंने कहा कि वेदमन्त्र यह कहता है कि ब्रह्मणां ब्रीहि वृतप्रव्हा शिशु राजन्नम ब्रह्मे व्रतम् मानो देखो, राजाओं के यहाँ राजा उसे कहते हैं, जो अपने मनों का राजा होता है, जो अपनी

इन्द्रियों का राजा होता है, राजा प्रजा के शासनवेत्ता को राजा नही कहते, राजा उसे कहते हैं, जो मन को, अपना प्रतिनिधि बना करके, मानो प्रत्येक इन्द्रियों को जो अपने में वशीभूत करता है, मानो प्रत्येक इन्द्रियां उसके अवृत्तियों में रत्त हो जाती हैं, तो वह धिराज कहलाता है। मेरे पुत्रों! देखो, महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा, कि मेरा अन्तरात्मा यह कहता है, कि ये शिशु ऐसे बनें ऐसे निर्माणित हों, जिससे मानो देखो, इनके अन्तरात्मा की जो प्रेरणा हैं, उसके आधार पर, आत्मा इन्द्रियां देखो, उसके अनुसार बरतती रहें, और यह राष्ट्र मानो देखो, इनका जीवन राष्ट्र त्याग में तपस्या में परणित हो करके मानो देखो, इनके हृदय और राष्ट्र में सुखद की आनन्द की तरंगें उनके जीवन में आत्मीयता की तरंगें ज्ञान और विवेक से मानो राष्ट्र और समाज ओर शरीर को पनपाने वाले बनें, ऐसा मानो देखो, वशिष्ठ मुनि महाराज ने, ये दो शब्दों का उपदेश दे करके, और उन्होंने पुरोहितपने के आसन को त्याग करके, वह अपने निचले भाग में विद्यमान इसीलिए हो गएं, कि मेरे से महान तपस्वी देखो, यहाँ देखो, मुनिवर हैं, मेरे से तपस्वी यहाँ देखो, वेदज्ञ और वेद के गान गाने वाले हैं मानो देखो, जो पर्जन्य ब्रह्मचारी हैं, पर्जन्य ब्रह्म का चिन्तन और मनन करते रहे हैं, ऐसे भी महापुरूष हैं, तो इसीलिए मैं अपने आसन को त्याग करके, निचले आसन पर, हम विद्यमान हो गए। मेरे प्यारे! देखो, राजा ने ये प्रार्थना की, राजा ने कहा हे भगवन! मैं महर्षि कागभुषुण्ड जी से ये प्रार्थना करना चाहता हूँ, क्या वह अपने दो शब्दों में, इस राष्ट्र के, जो बाल्य है वह मानो देखो, इनको अपना उद्गीत गाए अन्तरात्मा की जो प्रतिभा है उसका प्रायः वर्णन करें।

तो मेरे प्यारे! देखो, महर्षि कागभुषुण्ड जी उपस्थित हुए ओर कागभुषुण्ड जी ने उपस्थित हो करके यह कहा चरणा मंगल गान गाया, देखो, वाम देव जो वेदमन्त्रों में वाम देव कहते हैं, जो मुनिवरों! देखो, जो सामगान है, मानो देखो, वामदेव गान गाया, और वामदेव गान गा करके, उन्होंने उच्चारण किया, अपना वाक् प्रारम्भ किया क्या आज मैं मानो सभा मण्डल में, इस यज्ञशाला के आनन्द में विद्यमान हो करके, मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न हो रहा है, क्या राजा दशरथ के चार राजकुमारों का जन्म हुआ है। मानो

इनका नामोकरण भी आज घोषित हुआ है, मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है, मेरा तो हृदय यह कहता है कि आत्मा का कोई नामकरण नही होता, आत्मा तो एक चेतना है, वही आत्म तत्त्व मानो देखो, वही आत्मा है, जो सब शरीरों में व्याप्त हो रही है। परन्तु देखो, आत्मा का कोई नामोकरण नही होता है, परन्तु देखो, संसार में कहीं से मानो देखो, वायुमण्डल से भ्रमण करती हुई, यह आत्मा मानो देखो, माता के गर्भस्थल में जब प्रवेश करती है। तो सर्वत्र देवता इसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं, सर्वत्र मानो देखो, शरीरों में प्रवेश करते हुए वह जब संसार में मानो देखो, माता पिता के एक संकल्प मात्र से देखो, पुत्र बन करके आते हैं। क्योंकि आत्मा तो न किसी का पुत्र होता है, न पुत्री होती है। न नामोकरण होते हैं, परन्तु देखो, जब संसार में आते हैं, तो नामोकरण इस शरीर के नामोकरण का उद्घोष किया जाता है। तो आज हम मानो चारों राजकुमारों के नामोकरण का उद्घोष हुआ है, हमारा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है, क्या यह राष्ट्र जैसा अयोध्या में राजा हुए हैं, मनु से ले करके, यहाँ और भी राजा हुए हैं, सगर इत्यादि राजा इसी अयोध्या में हुए हैं। परन्तु ऐसे ही जैसे इनकी पवित्र परम्परा चल रही है, मानो देखो, निष्पन्न परम्परा, इसमें वैदिकता की प्रथा की अपने में पतिका का एक उद्घोष होता है और वह पतिका मानो देखो, अपने में पतित हो, पत्री अव्रणां वाच ब्रह्मे देखो, वह पतिका राजा की स्थलियों में निहित रही है, इसी प्रकार देखो, इन बाल्यों का ऐसा संस्कार होना चाहिए। जिससे अयोध्या और यह सर्वत्र राष्ट्र पवित्र बना रहे, परन्तु देखो, आत्मा को जानने वाला, माता का यह कर्तव्य है, कि माता और पितर आत्म चेतना में, उसको चेतनित करते रहें, जिससे मानो देखो, संसार की प्रतिभा में, वह प्रतिभाषित न रहे, वह सदैव अपने में मानो देखो, अपनेपन की आभा में निहित रह करके, आत्म चिन्तनवादी भी होने चाहिएं। परन्तु देखो, माताओं को अपना अपना दृष्टिकोण रहा है, चिन्तन करने का, मैंने बहुत संसार को बेटा! दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मेरी प्यारी माताओं का भी पुत्रों के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार का दृष्टिकोण रहा है। कागभुषुण्ड जी कहते हैं, एक समय मेरी प्यारी माता ने मुझे यह उपदेश दिया क्या मानो मुझे ब्रह्मवेत्ता बनना है, तुझे संसार के वैभव में रत्त

नही रहना है। मानो देखो, माता यह कह करके शान्त हो गई थी, और वह वाक् आज तक हमारे हृदयों में अंकित हो रहे है, तो विचार हमारा यह है कि यह राजकुमार अपने में महान और पवित्रता की प्रतिभा में रत्त होते रहें, जिससे मानो देखो, यह आध्यात्मिकवाद देखो, उत्पादकवाद, नाना प्रकार के रूपों में एक रस बना रहे, मेरे पुत्रों! देखो, यह वाक् उच्चारण करके मैं इनके हृदय के लिए आयु की, मैं अपने हृदय की कामना ये कर रहा हूँ, कि इनका दीर्घ जीवन, इस संसार में व्यतीत होना चाहिए, परन्तु जिससे यह राष्ट्रवाद ऊँची आभा में रत्त होता रहे, ऐसा मानो मेरा मन्तव्य है।

तो यह वाक् उच्चारण करके बेटा! महर्षि कागभुषुण्ड जी, अपने में शान्त हो गएं राजा ने पुनः यह प्रार्थना की कि मैं महर्षि लोमश मुनि महाराज के विचारों को हम श्रवण करना चाहते हैं, बहुत समय हो गया है, इनके विचारों को श्रवण किए, इनका विचार मानो देखो, ऐसी वृत्तियों में रहता है, जिनका आयु जो अपनी आयु में बड़े दीर्घ हैं, मानो देखो, जो आत्म चिन्तन में सदैव लगे रहते हैं। मेरे प्यारे! देखो, महर्षि लोमश मुनि महाराज यह वाक् श्रवण करके, अपने में उपस्थित हुए, और महर्षि लोमश मुनि महाराज ने व्यक्तव्य देते हुए कहा क्या जब हमारा संसार में आगमन हुआ था, आज भी आगमनवाद के ऊपर अपनी चर्चा करने लगूं, यह जो आगमनवाद है यही तो महान है, परन्तु देखो, आगमनवाद ब्रहे यह वायु में भ्रमण करता हुआ आत्मा अपने चित्त के मण्डलों में भ्रमण करता हुआ मानो देखो, इन्द्र ब्रेतिमा वाचकेतप्रहे यह नाना प्रकार की जो वायु है, इसमें वायु भ्रमण करता हुआ, जब यह शिशु माता के गर्भ में प्रवेश करता है, तो मानो देखो, यह संसार में आता है, संसार में आने के पश्चात मानो देखो, गया था तो आना है, इसी का नाम आवागमन कहते है। क्योंकि जो जाता है, उसका ही आगमन होता है, और जो जाता नहीं, उसका आगमन नही हुआ करता है। इसी प्रकारे देखो, इसी का नाम आवागमन, आवागमन इसीलिए कहते हैं, कि जो गया है, वही आना है। उसी को आना है। क्योंकि संस्कारों की जो एक जोड़ी लगी हुई है, संस्कारों का जो एक सूत्र है, उस सूत्र में कटिबद्ध हो करके, मुनिवरों! ये आना जाना लगा हुआ है। जब संसार में मानव देखो, मेरे पुत्रों! ब्रह्मणां ब्रहे, जब यह अपने में वृत्तियां में रत्त

हो करके, मानो संस्कारों से रहित हो जाता है, संस्कार नही रह पाते संसार में आने के, तो आगमन नही हुआ करता है। परन्तु देखो, इस सम्बन्ध में, भिन्न भिन्न प्रकार की कल्पना ऋषि मुनियों ने की हैं। और दार्शनिकों का दृष्टिकोण बड़ा विचित्र रहा है। उन्होंने यह कहा है कि संसार को, क्या यह तो देने लेने का एक व्यापार बना हुआ है देखो, आत्मा आया है, संस्कारों को ले करके, आवागमन की प्रतिभा में मानो देखो, वह किसी का देने आया है, और लेने के लिए भी आता है। तो विचार देखो, इस सम्बन्ध में विशेष देना नही, महर्षि लोमश मुनि का यह विचार रहा है, इस सम्बन्ध में, क्या यह जो आना है, और यह जाना है, यह तो संस्कारों का एक सूत्र है। संस्कारों का चित्त के मण्डल में मानो देखो, वृत्ति विद्यमान रहती है, यह बाह्य जगत, आन्तरिक जगत दोंनों में चित्त विद्यमान होता है। मानव के शरीर में, आन्तरिक रूपों से भी चित्त है, और बाह्य जगत में भी चित्त है, चित्त की विवेचना करते हुए ऋषि ने कहा है जहाँ जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान होते हैं, जहाँ जन्म जन्मान्तरों की प्रतिभा निहित रहती है, तो मानो देखो, वही तो अपने में मानो देखो, संग्रहित हो करके, संसार में उनका आगमन होता रहता है। तो विचार क्या मानो देखो, आगमन न होने के लिए, ऋषि मुनि अपने में तपस्या करते हैं। ऋषि मुनि अपने में मानो प्रतिभाषित रहते हैं। जिसके ऊपर विचारता रहता है, अनुसन्धान करता रहता है, जो मानो देखो, उसकी आभा में निहित रहते हैं। तो विचार मानो देखो, महर्षि लोमश जी ने यह कहा कि मेरा अन्तरात्मा इसमें बड़ा प्रसन्न है, राष्ट्र और समाज मानो देखो, ये भी ऊँचा होना चाहिए। समाज की पद्धतियों में, मानो देखो, अति रूढ़ि नहीं होनी चाहिए, उनमें सामान्य ज्ञान और विवेक होना चाहिए मानो यही मेरी प्रार्थना है, हे शिशुओं! वृतं देवं ब्रह्मा, तुम ब्रह्म का चिन्तन करते हुए तुम ब्रह्मात्मा हो, और आगमन ब्रह्म आत्माओं का, जब संसार में होता है तो कुछ ना कुछ वह ऊर्ध्वा में क्रियाकलाप करते हैं, और वह देवताओं की मानो आज्ञा का पालन करते है। और दुष्टों को हनन करते रहते हैं। तो यह मेरा अन्तरात्मा हे शिशुओं! तुम्हारे अन्तर्हृदय में ऐसे संस्कारों की उद्बुद्धता होनी चाहिए, जिससे वह संस्कार तुम्हारे महानता में परणित हो करके और अपने में महान बन करके मानो देखो, उज्ज्वलता का

एक स्वरूप हमारे साथ समाज के समीप होना चाहिए। ऐसा उपदेश दे करके बेटा! महर्षि लोमश मुनि महाराज अपने में मौन हो करके, एक वाक् यह उन्होंने यह और कहा क्या माताओं का जैसा पूर्व विचार, रूपों में वर्णन करते हुए, माताओं के सहयोग की चर्चाएं कीं, माताओं का उस सम्बन्ध में देखो, उनका बड़ा सहयोग रहा है माताओं ने हमें निर्माणित किया है, माता मानो देखो, बाल्यकाल में जब मेरी माता श्वंधुनि मानो देखो, उनका नामोकरण था उस सुगन्धि और ध्वनि रूपों में मानो देखो, माता पिता ने नामोच्चारण किया। तो माता देखो, लोरियों का पान कराती रहती है, तो उस समय हमे यह सखा रूप में उपदेश दिया, क्या तुम्हें ब्रह्मवेत्ता बनना है, आयु को दीर्घ बनाना है, आयु दीर्घ जब बनती है। जब मानो देखो, प्राण और मन का दोनों का समावेश कर लेता है, वह प्राण और मन को दोनों को एक सूत्र में पिरो करके आत्मा के सानिध्य से ही मानो देखो, उसका ज्ञान और विवेक मानो देखो, वह ऊर्ध्वा में परणित होता रहता है।

तो विचार यह इसलिए माताओं का बड़ा उज्वल सहयोग रहा है। आज मैं अपने विचारों को यहीं समाप्त करने जा रहा हूँ, क्या ये बाल्य अपने में अपनी कर्तव्यवाद की वेदी में विद्यमान हो करके, अपने में महान और उज्वलता मानो देखो, प्रसारित करते रहें। तो इतने में बेटा! देखो, यह विचार मानो जब श्रवण किए, तो महाराजा शिव से यह कहा गया कि हिमालय के राजा होते हुए महान तपस्वी हमारे मध्य में विद्यमान हैं, इनका भी मानो चरणामृत हमें प्राप्त होना चाहिए। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने राजा ने यह कहा कि हमें ऐसा मार्ग दर्शन देंगें, जिस मार्ग पर हम गति करते हुए, मानो देखो, अपने मानवीय राष्ट्र और महानता में परणित होते चले जाएं। मेरे प्यारे! देखो, वह, महाराजा शिव उपस्थित हुए, और महाराजा शिव ने मानो देखो, तपस्वियों को नमस्कार करते हुए, मन ही मन में उन्होंने कहा कि मानो देखो, अयोध्या से मेरा परस्पर बड़ा समन्वय रहा है, राजा होते हुए, मैं मानो देखो, अयोध्या से पूर्व काल की हमारे यहाँ जो उपाधिवत रही है, वह सर्वत्र मानो देखो, इसे आभा में गीत गाती रही है कि हमारे यहाँ राजाओं में एक शिव राजा भी होना चाहिए। तो मानो देखो, मैं अपने में ग्रत्तियाँ करता

हुआ, मानो देखो, सभा मराडल में पधारा हूँ। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है, क्योंकि वास्तव में यह राष्ट्र नही हैं, अयोध्या राष्ट्र नही है यह कर्तव्यवादियों का एक क्षेत्र है। कर्तव्यवादियों का एक वास है, यहाँ जो भी राजा हुआ है, उसमें अपने-अपने कर्तव्य का पालन किया है, और जहाँ कर्तव्यवाद में विहिनता आई है, वहीं देखो, यह राष्ट्रवाद अन्धकार में चला गया है। तो राष्ट्रवाद की चर्चा क्या, मैं भी एक राजा हूँ, जो हिमालय में वास करता हूँ, हिमालय में मानो देखो, एक धर्म मर्यादा की प्रतिभा में और विज्ञान अपने में अनूठा बनाता हुआ, राष्ट्रीयता को ऊँचा बनाना हमारा कर्तव्य है। तो मानो देखो, उस समय महाराजा शिव ने कहा ये मेरा बड़ा सौभाग्य है। जो मैं आज इस यज्ञ मराडप में, इस मानो देखो, नामोकरण की अभ्योदय में, एक मेरा एक आगमन हुआ है, और मैंने इसमें अपने आनन्दवत्, अपनी अन्तरात्मा से हर्ष ध्वनि करता रहता हूँ। मेरा यह सौभाग्य है, देखो, मैं कोई व्यक्तव्य देने वाला नही हूँ, केवल मैं यह उच्चारण करने आया हूँ, कि माताओं ने तपस्या से मानो जन्म दिया है, यह हमारा बड़ा सभी का सौभाग्य रहा है। यह जो तीनों राज लक्ष्मियां हैं मानो देखो, इन्होंने जब तक यह बाल्य गर्भ में पनपते रहें है, जब तक इन्होंने राष्ट्र का अन्न ग्रहण नही किया, यह अन्न से मानो उस अन्न का ग्रहण करने के लिए ये तप कर रही है जिससे मन की उत्पति, बाल्यों के हृदयों में जो मन व्याप रहा है, वह पवित्रवत बने, क्योंकि अन्नादं भूतं ब्रह्मा वेद की आख्यिका कहती है, कि मन की जो तरंगों की उपलब्धि होती है, वह अन्न के द्वारा होती है, तो अन्न इतना पवित्रतम रहा है, अन्न इतना महानता में रत्त रहा है, क्या उसी अन्न के द्वारा मानो मन की उत्पति तो देखो, राजलक्ष्मियों ने, इसी प्रकार का अन्न ग्रहण किया है। तो यह बाल्य मेरी दृष्टि में नामोकरण उच्चारण करने से मेरा मानो तात्पर्य यह है कि इनका एक नामोकरण हो गया है, और आगे चल करके मानो ये राष्ट्र त्याग और तपस्या में परिणत होते रहे हैं, क्योंकि माताओं का जो यह सहयोग रहा है, माताओं का जो त्याग और तप रहा है वह बड़ा विचित्र रहा है। मैं भी समय समय पर कैकेई के द्वारा आता रहा हूँ, कैकेई ने अपने में ये निश्चय किया था, कि मैं मानो देखो, उस अन्नाद को पान कर रही हूँ, जिस अन्न के द्वारा, मन मेरा और बाल्य जो शिशु रूप में पनप

रहा है, उसमें मानो एक मनो वृत्तियों में रत्त होता रहे है। तो इस प्रकार मानो देखो, उन्होंने अप्रतं ब्रह्मे उनका बड़ा सहयोग रहा है। मानो देखो, वह इसी प्रकार सुमित्रा इत्यादि की वृत्तियों में सदैव रत्त रहना है, देखो, सुमित्रा इत्यादि वर्णनं ब्रहे वाचन्नमः तीनों राज लक्ष्मी अपने में बड़ी अद्वितीय अपने तपो में मानो रत्त रही हैं, इसी प्रकार राजा का भी बड़ा तप रहा है, इस सम्बन्ध में, वह तपों में रहें। तो इसीलिए देखो, जब मैं यहाँ पुत्रेष्टि संस्कार हुआ, पुत्रेष्टि के उस उपलक्ष्य में भी मेरा आगमन हुआ था, जब मैंने महर्षि शृङ्गी जी से यह उपदेश ग्रहण किया था और यह उन्होंने इन राज लक्ष्मियों को त्याग और तपस्या में परणित कर दिया। यहाँ पुरोहितों का बड़ा मन्तव्य मानो देखो, महानता में रहा है। तो मेरे विचार में यह है कि राजा के राष्ट्र में इस अयोध्या राष्ट्र में पुष्पांजलियां पवित्र होती रहें। और त्याग और तपस्या में यह राष्ट्र मानो देखो, जो भी पृथ्वी पर कुरीतियां हैं उन कुरीतियों का ह्रास करने वाले यह बाल्य होने चाहिएं। माता की ऐसी शिक्षा हो पितर की ऐसी शिक्षा हो, आचार्य कुल में जाएं तो वहाँ भी इस प्रकार की शिक्षा हो, जहाँ देखो, कुरीतियां नष्ट हों और एक वैदिकता और एक मानवीय दर्शन एक दार्शनिक रूपों में रत्त होता रहे।

तो विचार विनिमय क्या जब यह वाक् महर्षि ने देखो, महर्षि के उन शब्दों की टिप्पणियां करते हुए महाराज शिव ने कहा सूर्य जब प्रातःकाल में उदय होता है तो वह शिव कहलाता है मानो देखो, ये राजा शिव की भांति मानो देखो, उदय होने वाले, प्रकाश में रत्त हो करके, सबको सान्त्वना महानता की प्रतिभा में रत्त होने वालें बनें। तो मानो देखो, इस प्रकार उन्होंने अपना उपदेश दिया, अपना मन्तव्य उन्होंने प्रगट किया, उन्होंने कहा कि मैं त्याग और तपस्या में मेरा बड़ा एक विश्वसनीय मेरा जीवन रहा है और में विचारता रहता हूँ कि कोई भी राष्ट्र हो, समाज हो, गृह हो, मानो देखो, जब तक ऊँचे नही बनते, जब तक मानो देखो, त्याग और तपस्या प्रदर्शित नही होती और जब त्याग और तपस्या में मानव का जीवन और मानव दर्शन में घटित हो जाता है तो यह समाज और गृह सब पवित्रवाद की वेदी पर निहित हो जाते है मानो देखो, इस प्रकार जब यह उपदेश महाराजा शिव ने दिया उन्होंने कहा मैं सदैव देखो, अपने राष्ट्र में भी मैं

माताओं के प्रति मेरी बड़ी आस्था रहती है और मैं विचारता रहता हूँ कि संसार के लोलुपतता में न आ करके तुम्हें तो अपने कर्तव्य का पालन करना है, और कर्तव्यवाद यही होता है कि माता अपने गर्भ से ले करके अपनी लोरियों को और नामोकरण तक बालक को एक महानता का उपदेश संस्कार में संस्कारित कर दें। वह संस्कार मानो बाह्य जगत में मानो प्रस्तुत होते हैं तो वही संस्कार राष्ट्रवाद में कर्तव्यवाद के रूप में बेटा! देखो, उभर करके आते हैं जिससे मानो अपने में देखो, अपनेपन की प्रतिभा का गान गाता रहे। तो जब महाराजा शिव ने यह कहा, और उन्होंने कहा मेरी तो यह कामना है, ये वायुमण्डल में मुझे अपने विचार देने हैं, जो इनके सम्बन्ध में आगे चल करके, इनके अन्तःकरण को स्पर्श करने वाले बनेंगें, तो मानो देखो, शिव ने ये उच्चारण करके कि यह राष्ट्र ऊँचा बना रहे, ऐसा उपदेश दे करके वह अपनी स्थली पर विद्यमान हो गएं।

राजा मुनिवरों! देखो, राजा दशरथ अपने में हर्ष ध्वनि करने लगा, क्या आज देखो, यह मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो ज्ञान और विज्ञान की चर्चाएं जो मानो देखो, इन नामोकरण की चर्चाओं में भिन्न भिन्न प्रकार का हमें उपदेश मिल रहा है। यह उपदेश है, इसी उपदेश के आधार पर ये राष्ट्र की परम्परा बनी रहे, ऐसा राजा उच्चारण करते मुनिवरों! देखो, अन्त में उन्होंने महर्षि वैशम्पायन से यह कहा क्या महाराज, वास्तव में तो बहुत से यहाँ देखो, ब्रह्मवेत्ता हैं, जो ब्रह्म की ऊँची-ऊँची उड़ाने उड़ते रहते हैं, मैं एक केवल वैशम्पायन के उपदेश अपने में चाहता हूँ। कि ये अपना कुछ वाक् प्रगट करें।

तो महर्षि वैशम्पायन उपस्थित हो करके बोले क्या, यह हमारा बड़ा सौभाग्य है, जो आज मानो देखो, हम इस आभा में कुछ वाक् अपने हृदय के उद्गार प्रगट कर सकें। यह कहा है कि यह जो आत्मा है, मानो देखो, यह शिशु के रूप में रहता है, यह आत्मा ही देखो, इस संसार को एक कटिबद्ध करने वाला है, माता के मध्य में, पिता के मध्य में एक बाल्य रहता है, एक शिशु रूप में रहता है, मानो देखो, माता पिता की जो हर्ष ध्वनियां हैं, उनका जो हर्ष विचर वृत्तियाँ हैं, वह उसके मानो देखो, संलग्न होती हैं, और यदि वह माता पिता का हृदय से, जब समन्वय होता है, तो वही बाल्य माता

के चरणों से उस मानो उपदेश से यह बाल्य देखो, उनका आज्ञाकारी बन करके, इस संसार को और राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है। तो मानो देखो, मेरा अन्तरात्मा तो ये सदैव कहता रहता है कि विज्ञान का दुरूपयोग, विज्ञान अपने-अपने आसन पर एक अनूठा बन करके रहा है, यह वास्तव में परमात्मा का बड़ा विशाल विज्ञान है, विज्ञान की चर्चा अभी-अभी विज्ञान की चर्चा पूर्व विद्वान महर्षियों ने अपना अपना मन्तव्य दिया है कि मैं भी इस सम्बन्ध में यह वाक् उच्चारण करने वाला हूँ, ब्रह्मणं ब्रहे व्रतं आच प्रही लोकं ब्रह्मा वर्णों सम्भवा मानो देखो, यह वर्णन है, यह अवृत कहलाता है तो इसी उपलक्ष्मय में एक यही वाक् उच्चारण करने के लिए आया हूँ क्या मानो देखो, विज्ञान एक राष्ट्र में अनूठा बन करके रहे, और वैज्ञानिक बन करके यह ब्रह्मचारी विज्ञान में रत्त रह करके, जैसे परमपिता परमात्मा ने इस संसार रूपी मानो जगत को मानो विज्ञानशाला के रूप में रत्त किया है, इसी प्रकार यह भी एक विज्ञान है, यह भी एक धारा है, जिसको ला करके मुनिवरों! देखो, यह समाज ऊँचा बनता है। मेरे पुत्रों! देखो, ऋषि ने यह उपदेश दिया कि परमात्मा के विज्ञान से मानव को जीवन को विज्ञान के रूपों में रत्त करके कहा क्या यह विज्ञान जब आन्तरिक विज्ञान बाह्य जगत में आता है। और उस विज्ञान का दुरूपयोग नही होता तो राष्ट्र मानो समाज और शिशुवाद सर्वत्रता में रत्त होता रहता है।

तो विचार विनिमय क्या मैं विशेष विवेचना न देता हुआ एक-एक वेद के मन्त्र के ऊपर, राजा के राष्ट्र में विद्वानों का अनुसन्धान होना चाहिए, जो मानव दर्शन को ऊँचा बनाता है, आज मानो देखो, जब, मानव दर्शन विद्यालयों में, मानव दर्शन गृह में, मानव दर्शन मानव के क्रियाकलापों में रहेगा, तो यह मानवीय दर्शन ही देखो, समाज को ऊँचा बनाता है। तो इस प्रकार उपदेश दे करके, महर्षि अपने आसन पर विद्यमान हो गएं, राजा ने बेटा! देखो, अपनी इस यज्ञ मण्डप की महानता का वर्णन करते हुए कहा, कि मेरा सौभाग्य है कि ऋषि मुनियों का आगमन है, मानो देखो, राष्ट्र वेत्ताओं का आगमन, मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न है, मेरे प्यारे! देखो, राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न मेरे प्यारे! देखो, भरत इत्यादि ब्रहे ये घोषणा करके मेरे प्यारे! देखो, सभा मौन हो गई। और मौन हो

करके, उन्होंने देखो, वेदमन्त्रों का उद्गीत गाया वामदेव साम गान गाया, साम गान करके, सब ऋषि मुनियों की वह सभा मेरे पुत्रों! देखो, विर्सजन हो गई। और विर्सजन हो करके तो विचार विनिमय क्या मेरे पुत्रों! आज महानन्द जी की प्रेरणा के आधार पर अपने विचारों को देता हुआ, बहुत दूरी चला गया हूँ। विचार केवल यह है कि आज मुनिवरों! देखो, हम अपने में नामोकरण की घोषणा करना बड़ा एक परमपिता परमात्मा नामोकरण मानो देखो, ओ३म् कहलाता है। गुण अनन्य माने गएं हैं, परन्तु देखो, मुख्य वेदा दर्शनं ब्रह्मे जो देखो, प्राकृतिक रूप में ओ३म् का जो नाम है। वह ओ३म् कहलाता है। क्योंकि जो वाणी का उद्घोष है, वही शब्द मुनिवरों! देखो, बाल्य जब संसार में माता के गर्भ से आता है, वह भी ओ३म् का उद्गीत गाता है, व्याकुल हो रहा है, संसार में आ करके रूधन करता है, परन्तु ओ३म् की ध्वनि को व्याकुलता से गान गाने लगता है। यही साधना है मानो देखो, यौगिक जन जब मन और प्राण के ऊपर जब इसको साध लेते हैं, तो यही ओ३म् जो मुनिवरों! देखो, जो योगेश्वर बना देता है। आओ मेरे पुत्रों! देखो, आज का उपदेश यह क्या कह रहा है हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, मानो देखो, हमारा आत्म ब्रहे महानन्द जी के आधार पर हमनें यह वाक्यों का उद्गीत गाया है, आज का यह वाक् अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस संसार सागर से पार होते चले जाएं। यह है बेटा! आज का वाक् समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। हीरानन्द खट्टर, दिनांक 18 15 1987।

२० 09 09 1987 पुष्प 54 55

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी और यज्ञोमयी

स्वरूप माने गएं हैं याग उसका आयतन है उसका गृह है उसका सदन है और वह उसी में वास करने वाला है तो हम इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती व महानता का प्रायः वर्णन करते रहते हैं और प्रत्येक मानव उसका उपास्य बना रहता है सृष्टि के प्रारम्भ से ले ककरे वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नही हुआ, जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके, क्योंकि वह सीमा से रहित हैं वह सीमा में आने वाला नहीं हैं इसीलिए परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में आता रहता है प्रत्येक वेदमन्त्र उसके उद्गीत गा रहा है अथवा उसके गुणों का वर्णन कर रहा है और उसकी महती में वह सदैव रत्त रहता है। आज का हमारा वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गा रहा है, हमारे यहां ऋषि मुनियों का विचार विनिमय प्रारम्भ से होता रहा है परन्तु उनकी विचार धाराएं बड़ी विचित्रतम रही हैं परमपिता परमात्मा की सृष्टि के इन अवयवों को बेटा! अपने में समाधिष्ट होकर के दृष्टिपात करते रहे हैं। हमारे यहां प्रकाश के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की विचार धाराओं का वर्णन होता रहा है, कोई देखो, परमपिता परमात्मा को प्राप्त करना ही प्रकाश को स्वीकार कर रहा है कोई मानव यह कहता है कि इस संसार को जानने का नाम ही प्रकाश है। हमारे वैदिक साहित्य में अथवा ऋषि मुनियों की जो अनन्तमयी परम्परा रही है, वह बड़ी विचित्र रही है। अथवा उसके विचार विनिमय करने की जो धाराएं हैं एक महानता मे सदैव रत्त रही हैं आओ मेरे पुत्रों! देखो, मैं इस सम्बन्ध में तुम्हें उनके विचारों में ले जाना चाहता हूँ, जहां नाना प्रकार की विचार धाराओं में मानव रत्त रहा है और उन विचारों को ले करके ऋषि मुनि अनुसन्धान अथवा अन्वेषण करते रहे हैं और ज्ञान विज्ञान की बड़ी विचित्र उड़ाने उड़ते रहते हैं उनके ज्ञान औरविज्ञान की बड़ी विचित्र उड़ाने उड़ते रहे है उनके ज्ञान और विज्ञान में जाना मानव का एक स्वाभविक गुण माना गया है। जिस भी काल में मानव अपने अन्तरात्मा में प्रवेश करता है, और आन्तरिक जगत में बाह्य जगत को ले जाता है, तो नाना प्रकार के ज्ञान और विज्ञान की उपलब्धियां होती रहती हैं तो मुनिवरों! इसी से प्रत्येक मानव को यह विचारना है कि

हम बाह्य जगत का अन्तरात्मा में, अन्तरीय जगत में उसका अन्वेषण करना चाहिए, और उसकी अन्तरात्मा में दृष्टिपात करना चाहिए जिससे नाना प्रकार की ज्ञान और विज्ञानमयी भिन्न भिन्न प्रकार की तरंगों का निर्माण होता रहे। उसकी उपलब्धियां में हम जब प्रवेश करते हैं तो मानव का जीवन एक महान और पवित्रता की वेदी पर रत्त हो जाता है।

मैं बहुत दूरी नही जाना चाहता हूँ आज मैं तुम्हें ज्ञान और विज्ञान की उस आभा ममें ले जाने के लिए तत्पर हूँ जहां लोक लोकान्तरों का वर्णन आता रहता है जहां मानव ज्ञान के माध्यम से कहां कहां उसने उड़ाने उड़ी हैं यह बड़ा विचित्रतम एक रहस्य माना गया है। मेरे प्यारे! देखो, दार्शनिक जिस भी काल में विद्यमान हो करके अपने दर्शनों का और मानवीय दर्शनों को साक्षात्कार दृष्टिपात करते रहे हैं, उसी क्षेत्र में आज मैं तुम्हें ले जाना चाहता हूँ क्योंकि हमारे यहां पुरातन काल में जो समय चला गया आधुनिक जगत का तो मुझे प्रतीत नहीं, परन्तु बाह्य व आन्तरिक दोनों का वहन करने वाले राजा रहे है।

राजा जनक की सभा में नाना प्रकार का विचार विनिमय होता रहा है। परन्तु वहां आध्यात्मिकवाद याग जिसे हम ब्रह्मयाग भी कहते हैं। ब्रह्म का चिन्तन, ब्रह्म के ऊपर मानवीय दर्शनों को और ब्रह्मं का दोनों का समन्वय करा, यह राजा जनक की सभा में होता रहा है। हमारे यहां राजा जनक की सभा में ही नही परन्तु भिन्न भिन्न राजाओं के यहां महाराजा अश्वपति के यहां भी प्रायः ऐसा होता रहा है, अयोध्या में नाना राजा हुए है रघु वंश से पूर्व जो राजा हुए है। उनकी सभा में भी ब्रह्मयाग की चर्चाएं होती रही हैं ब्रह्म के ऊपर जानना प्रकाश को लाना प्रकाश में रत्त रहना, यह प्रायः होता रहा है।

मेरे प्यारे! हमारे यहां एक राजा जनक नाम की उपाधि मानी जाती थी। मुनिवरों! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस समय महाराजा अश्ववति के यहां एक सभा हुई थी, वहां यह निर्णय किया गया था, जिस राजा के यहां ब्रह्मवेत्ताओं की परीक्षाएं होंगी और ब्रह्मवेत्ताओं की सभाएं होती रहेंगीं, राजा ब्रह्मवेत्ता हो, गृहस्वामिनी भी ब्रह्मवेत्ता हो ब्रह्म के ऊपर चिन्तन मनन करने वाले हों परन्तु याग जिसके यहां विशेष माने जाते

हों तो उस राजा को जनक की उपधि प्रदान की गई। क्योंकि यहां सृष्टि के प्रारम्भ से तो नहीं परन्तु जब से राष्ट्रवाद का निर्माण हुआ और राष्ट्रीय परम्परा बनी रही है उस काल में यह माना गया है कि हमारा राष्ट्र और हमारा ऋषिमण्डल और ब्रह्मवेत्ता यह सब उपाधि के क्षेत्र में रहते हैं भिन्न भिन्न प्रकार की उपाधियां का निर्माण महाराजा अश्वपित के राष्ट्र में में होता रहा है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय कराया, हमारे यहां उपाधि जो काल है वह प्रायः विद्यालय में होता रहा है आचार्य जब आयुर्वेद के विद्वान आयुर्वेद के जानने वाले होते हैं, वह मस्तिष्क का अध्ययन करके ब्रह्मचारी का निर्णय देते है तो इसी प्रकार राजा को भी चुनौती दे क्या वह राजा जनक बनेगा? जनक का अभिप्रायः यह है कि राष्ट्र को तयगते उसे देरी न हो, अपनाने को भी देरी न हो तो उस राजा को जनक कहा जाता है, जो ब्रह्म उपाधियों में, ब्रह्म जिज्ञासा में सदैव रत्त रहने वाला हो।

मुझे वह काल स्मरण है, हमारे यहां वशिष्ठ जन जगनशतं नाना उपाधियां मानी गयी, क्योंकि इन्द्र भी एक उपाधि का क्षेत्र माना गया है, मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में इसका निर्णय देते हुए कहा था कि जिस भी काल में उपाधि को साहित्य में निहित कर लेते है तो साहित्य में अन्धकार आ जाता है इसीलिए हमारा अलंकार उसी प्रकार उपाधि क्षेत्र वाला बना रहना चाहिए। मैं तुम्हें राजा जनक की उस महान यज्ञशाला में ले जाना चाहता हूँ जहां नाना ऋषिवर विद्यमान हैं। जिसमें महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का ऊर्ध्वा आसन है। उनके पुरोहित अश्वल्य विद्यमान हैं राजा जनक के पुरोहित का नाम अश्वल्य माना जाता था, जो वेद के मर्म को जानने वाले अर्धभाग, महात्मा दिग्ध और ब्रह्मचारी कवन्धि, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, कृतिका, चाक्राणी गार्गी, महर्षि सोमकेतु, महर्षि सोमभानु थे। महात्मा ब्रह्मवेत्ता अष्टावक्र बड़े बुद्धिमान जो आकृतियों में भी रत्त रहने वाले, मेरे प्यारे! ज्ञान और विज्ञान में बड़ी विचित्र उड़ाने उड़ते रहते थे। राजा जनक के यहां यज्ञशाला में भिन्न भिन्न प्रकार के आसन लगे हुए हैं। उन आसनों पर ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हैं वह ब्रह्म चर्चाएं कर रहे हैं राजा जनक ने उसकी पत्नी रम्भेश्वरी ने अपने गृह से यज्ञशाला में जब प्रवेश किया तो

ऋषि मुनियों को नतमस्तक होकर के उन्होंने नमस्कार करते हुए यज्ञशाला में अग्न्नाधान किया उदबुद्ध स्वाहा के मन्त्रों का उद्गीत गाते हुए अग्नि को उदबुद्ध किया, अग्नि देवता से कहा हे अग्नि जैसे तू समिधा के द्वारा उदबुद्ध हो रही है हे आत्मा! ब्रह्मं महति मैं अपनी आत्मा को इसी प्रकार चेताना चाहता हूँ, उदबुद्धरा करना चाहता हूँ जैसे अग्नि अपने में सुगन्धित है, अग्नि अपने में तेजोमयी है, मैं भी अपनी आत्मा को तेजोमयी बनाना चाहता हूँ उदबुद्धरा करना चाहता हूँ जैसे अग्नि अपने में सुगन्धित है, अग्नि अपने में तेजोमयी है, मैं भी अपनी आत्मा को तेजोमयी बनाना चाहता हूँ जिससे आत्मा तेजोमयी रही है स्वतः है मैं बनाना नही चाहता हूँ मैं बनाना नही चाहता परन्तु जिससे प्रकृति के आवेशों में मैं उसे लाना नही चाहता हूँ। मेरे हृदय की यह कामना रहती है कि हे अग्नि तू जैसे उदबुद्ध हो करके समिधा को अपने में निगल जाती है समिधा को निगल करके तू प्रदीप्त होती है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जो दोष हैं काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि जो दोष हैं उनको ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा भस्म करके मैं अपनी आत्मा को उदबुध् करना चाहता हूँ

वह जो उदबुद्ध होने वाला आत्मा है वही तो उस परमपिता परमात्मा के उस मार्ग को प्राप्त करता है मार्गं ब्रह्म स्वयं भवे ऐसा राजा जनक ने प्रार्थना करने के पश्चात याग और देवताओं की पूजा उन्होंने की। पूजा का अभिप्रायः यह है कि अग्न्नाधान करते हुए जल देवता इत्यादि सर्वत्र देवताओं का पूजन उनका उनका सदुपयोग करना, उनमें जो गुरा हैं अपने में धाररा करना, मानव को उसी के अनुसार आचररा करना है यह पूजा का अभिप्रायः माना गया है।

तो राजा जनक याग करने के पश्चात मौन हो गए। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जो ब्रह्मवेत्ता थे उन्होंने कहा हे राजन! यज्ञमान मेरे से प्रश्न कर सकता है यज्ञमान उपस्थित हो करके बोले कि प्रभु आपने कल के उपदेश में इससे पूर्व के उपदेश में यह आपने वर्रान किया था कि ये जो तारामराडल है, ये प्रकाश का द्यौतक है इसके प्रकाश में मानव अपनी विशुद्धता, अपनी प्रकाश की पगडराडी को ग्रहरा कर लेता है हम प्रकाशवाली पगडराडी को ग्रहरा करने के पश्चात हम यह प्रश्न कर रहे हैं कि जब ये

तारामण्डल नहीं तोते तो प्रकाश को द्यौतक कौन है तो राजा जनक के इन वाक्यों को पान करने वाले महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे राजन! जब ये तारामण्डल नही हाते तो प्रकाश का द्यौतक अग्नि है यह अग्नि प्रकाश्ज्ञ के देने वाली है। हम अग्नाधान करते हैं अग्निमयी प्रकाश में रत्त हो जाते हैं मेरी प्यारी माता गृह में अग्नि का प्रकाश कर लजेती है ओर प्रकाश से उस अग्नि के प्रकाश से हम भिन्न भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में रत्त हो जाते हैं। उन क्रियाकलापों में रत्त रह करके अग्नि के प्रकाश को अपने में धारण करते हुए समवृत्तियों को प्राप्त कर लेते हैं, यह अग्नि हमारा प्रकाश है, यह अग्नि भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नियां बन करके रहती है।

हे राजन! जब हम आयुर्वेद में प्रवेश करते हैं तो आयुर्वेद वाले यह कहते हैं कि पिच्चासी प्रकार की अग्नियां जो शरीरों में प्रदीप्त रहती हैं यह बाह्य जगत में भी भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नियां हैं। परन्तु आयुर्वेद के आचार्य पिच्चासी प्रकार की धाराएं स्वीकार करते हैं परन्तु जब अग्नि का अग्नाधान करते हुए जब हम आध्यात्मिक वेत्ताओं में प्रवेश करते रहते हैं या जो विज्ञानवेत्ताओं को जब अपने में ले जो हैं तो चार प्रकार की अग्नियों का चयन होता हे तो एक अग्नि का नाम गार्हपथ्य नाम की अग्नि है द्वितीय अग्नि का नाम गृहपथ्य नाम की अग्नि है तृतीय अग्नि का नाम आह्वनीय अग्नि है चतुर्थ का नाम वेश्वानर नाम की अग्नि है विचार आता है कि यह चारों प्रकार की अग्नि को अग्नाधान करने वाला यह चारों प्रकार की अग्नि क्या करती है गार्हपथ्य नाम की अग्नि से ब्रह्मचारी तपता है, जब ब्रह्मचारी उस अग्नि में तपता है तो ब्रह्मवर्चासी बन जाता है ओर ब्रह्मवर्चोसि बन करके विद्या का अध्ययन करता हुआ वह ब्रह्म चरिष्यामि बनता है, वह ब्रह्म का आदान करता हुआ वह ब्रह्मचरिष्यामि बनता है, वह ब्रह्म का आदान करता है ओर प्रकृति को अंगों उपांगों से जानने वाला है, जब अंग ओर उपांग से प्रकृति को जानने वाला है तो वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करत है, उसे अग्नि का नाम हमारे यहां गार्हपथ्य नाम की अग्नि कहते है।

प्रत्येक माता के हृदय में मेरी प्यारी माताओं व पुत्रियों के हृदय में यह विचार आता रहता है कि मेरा गृह स्वर्ग बन जाएं परन्तु यह स्वर्ग कैसे बनेगा? तब तक नही बनता

जब तक गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन नही कर लेता, गृहपथ्य नाम की अग्नि क्या है? माता पिता प्रातःकालीन जब ब्रह्म का चिन्तन करते हैं अथवा मनन करते हैं याग इत्यादि करने के पश्चात दर्शनों का अध्ययन करते हैं तो उनके गृह में बाल्य बालिका माता पिता का अनुसरण करते हैं तो गृह स्वर्ग बन जाता है यदि माता पिता का मार्ग कुछ ओर होता है ओर बाल्यों का मार्ग कुछ ओर बन जाता है तो गृह स्वर्ग नही बनता। स्वर्ग कहा बनता है जहां विषमता परमाणुवाद गृह में भ्रमण करता है।

एकोकी विचारधारा वाला जब गृहस्वामी बन जाता है गृह स्वामी बन जाती है वह गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन कर रहा है। पूजन का अभिप्रायः यह है कि यह अग्नि शब्द में अमृतवृती बन के रहती है, पूजन का अभिप्रायः यह है यह अग्नि शब्द अग्निवृत्ति बन के रहती है, वह पवित्रतव कहलाती है। तृतीय अग्नि का नाम आह्वनीय अग्नि नाम की अग्नि कहा जाता है। जो विद्यालयों में पनपती रहती है, वानप्रस्थियों के हृदयों में पनपती रहती है वह अग्नि विद्यालयों को ऊँचा बनात है। विद्यालयों में चरित्रता की आभा का प्रदर्शन करती रहती हे वह अग्नि ब्रह एकावन्य नाम की अग्नि है वहीं ब्रह्मवेत्ताओं के हृदय में प्रदीप्त रहने वाली चार प्रकार की अग्नि कहलाती है।

मैं यज्ञ का विज्ञान विस्तार तो तुम्हें देना नही चाहता हूँ, संक्षिप्त परिचय मैंने तुम्हें यह प्रगट किया है कि विचार क्या है वेद का ऋषि आगे कहता है सम्भवः हे राजन! चार प्रकार की अग्नियां हैं परन्तु आगे वह अग्नि ब्रह्म पिच्चासी प्रकार की अग्नियां का चयन हो रहा था ओर वेदाचार्यों ने सूक्ष्म रूप से माना है परन्तु यही अग्नि जब विज्ञान के युग में प्रवेश करती है तो वैज्ञानिकों के समीप जाती है तो एक अग्नि बड़वानल नाम की अग्नि कलाती हे जो समुद्रों में प्रदीप्त रहती है समुद्रों में भी कहीं कहीं अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। जिस भी काल में जल प्लावन आता तो जल प्लावन में बड़वानल नाम की अग्नि अपना विराट रूप बना करके जलाशयों में वह प्रदीप्त हो जाती है ओर जल प्लावन हो जाता है यह पृथ्वी जल मग्न हो जाती है और जल प्लावन हो जाता है यह पृथ्वी जल मग्न हो जाती है अग्निं ब्रह्मः जब यह अग्नि पिच्चासी प्रकार की अग्नियां आयुर्वेदाचार्यों के गृह में विचारों में रहती हैं जब यह अग्नि वैज्ञानिकों के द्वारपर जाती है तो इस

पिच्चासी प्रकार की अग्नि जब वैज्ञानिक विभाजन करता है जो उस अग्नि से अरबों खरबों प्रकार की तरंगों का जन्म होता है। जब अरबों खरबों वाली तरंगों का विभाजन होता है उसमें भिन्न भिन्न प्रकार की तरंगों का जन्म होकर जिसको गणना नही ला सकती वह अग्नि अणु और परमाणु के रूप में परणित हो जाती है, उस अग्नि के द्वारा वैज्ञानिक नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करते रहते हैं। वही अग्नि जो कहीं शब्द बन करके रहती है वही अग्नि अन्तरिक्ष और पृथ्वी का एक सौर रूप है विचार विनिमय क्या यही अग्नि अणुरूप में प्रवेश कर जाती है मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि के यहां एक परमाणु विभाजन किया गया तो उस परमाणु को जब यन्त्रों से दृष्टिपात किया गया तो एक ही परमाणु में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का दर्शन होने लगा। एक एक परमाणु में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात होते रहते हैं वही ब्रह्माण्ड जिसकी चर्चाएं हम इससे पूर्व काल में कर रहे थें।

तो विचार विनिमय क्या यह अग्नि है इस अग्नि के प्रकाश में हम प्रकाशित रहते हैं जब तारामण्डल नही होते तो मालाएं नही होती तो हम अग्नि के प्रकाश में प्रकाशित होते हैं अग्निं ब्रह्म तो यह अग्नि ब्रह्म अग्नि बन करके रहती है विचार विनिमय क्या? हम अग्नि को अपना प्रकाश बनाएं और उसी के प्रकाश में रत्त हो जाएं। जब ऋषि ने इस प्रकार की विवेचना प्रगट की, इतने में हम रत्त हो जाएं। जब ऋषि ने इस प्रकार की विवेचना प्रगट की इतने में गृह ब्रहे राजा ओर उनकी पत्नी बोले कि हे प्रभु! हम जानना चाहते हैं कि हे प्रभु! यह अग्नि नही होती तो हम किसके प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं उन्होंने कहा जब यह अग्नि नही होती तो हम शब्द के प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं यही शब्द मानो ध्वनि आ रही है ध्वनि में ध्वनित होता हुआ यह जगत दृष्टिपात आता है यह ताण्डव नृत्य कहला है विचार आता रहता है कि ध्वनि आ ही है अन्धकार छाया हुआ है परन्तु ध्वनि के प्रकाश्ज्ञ से ध्वनित हो रहा है जैसे एक मानव अन्धकार में चला जा रहा है अन्धकार से अन्धकार में जाकर के मार्ग उससे विच्छेद हो जाता है वह मार्ग में जाकर के अपनी वाणी से शब्द कह रहा है अरे, कोई है मार्ग चेताने वाला? जो मानव मार्ग में स्थिर है वह कह रहा है आ जाओ मैं मार्ग में स्थिर हूँ वह उसी शब्द का

तारतम्य लगा करके मार्ग का पथिक बन जाता है वह पथ दर्शन गामी बन जाता है तो वह शब्द का प्रकाश है कि मानव विज्ञानवेत्ता भी है परन्तु परम शान्ति आत्म शान्ति प्राप्त नही हो रही है आचार्य शब्द के द्वारा ब्रह्मचारी को साधक के द्वारा वह श्ज्ञब्द में शान्ति की स्थापना करता है। वह कहता है इस शब्द का प्राण ही तारतम्य माना गया है। यह शब्द ही मन और प्राण को एक सूत्र में लाने वाला है इसीलिए तुम शब्द की उपासना करो और शब्द के द्वारा ही इस ब्रह्माण्ड को इस शब्द में निहित कर लो। साधक अपने गुरु, ब्रह्मचारी को और गुरु शिष्य का दोनों का सम्वाद में दोनो शब्द विद्यमान होता है।

एक राष्ट्रवेत्ता है वह राजा यह चाहता है कि मेरा राष्ट्र पवित्र बन जाए, तो राजा के राष्ट्र मे शब्द पवित्र होना चाहिए। जब राजा अपने शब्दों में पवित्र बन जाएगा सत्यवादी शब्द उच्चारण करेगा इसमें शब्द की कृति विद्यमान होती है। शब्द के ही कारा शब्द के पवित्र होने पर राष्ट्र पवित्र हो जाता ै विद्यालय में आचार्य यह चाहता है कि मेरा विद्यालय पवित्र होना चाहिए। वह शब्द के सदाचार से ध्वनि के ध्वनित होने पर ध्वनि के तप से ही वह विद्यालय पवित्र बन जाता है। और विद्यालय में आचार्य अपने ब्रह्मचारियों को सत्य का उपदेश देता है तो राष्ट्र और समाज पवित्रता की वेदी पर निहित हो जाते हैं जब प्रत्येक मानव सत्यवादी बन जाता है और सत्य में उसका जीवन है और सत्यमयी ब्रह्म है सत्यमयी ब्रह्माण्ड को सत्यमयी एक ही सूत्र में पिरोना स्वीकार कर लेता है तो सत्यं ब्रह्म वह शब्द ही मानव को ऊँचा बना देता है जब पण्डित वेद का अध्ययन करता है और अध्ययन करता हुआ प्रत्येक शब्द की ध्वनि में पिरोता है तो वेद मन्त्रों की एक कड़ी बन जाती है वेदमन्त्रों के शब्दों की कड़ी बन करके वह शब्द उसके पश्चात आचार्य उद्गीत रूप में गाता है गाता ही रहता है।

बेटा! कैसा यह अनुपम जगत है एक एक शब्द दूसरे में पिरोया हुआ है इसी ब्रह्माण्ड का एक एक परमाणु पिरोया हुआ है। शब्द के साथ ब्रह्म वृत शब्द में मानव का चित्र पिरोया हुआ है विचार आता रहता है कि जब श्री कान्त केतु मुनि भारद्वाज गोत्र की चर्चा मुझे स्मरण आती है जो अपनी विज्ञानशाला में अपनी पत्नी और पति सहित

अनुसन्धान करते थे। वैज्ञानिक यन्त्रों के द्वारा शब्द अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके द्यौ लोक में जाता है अपने पूर्वजां के शब्दों में चित्र हैं शब्दों में शब्दों का चित्रण हो रहा है यन्त्रों के द्वारा शब्दों का दर्शन करता है जब यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान होता है तो अपनी देवी से कहता है कि देवी अप्रतं ब्रह्म स्वाहा हे देवी! तुम स्वाहा उच्चारण करो क्योंकि यह जो शब्द है यही तो आत्मा है यह हमारा वृतं आत्मा नही परन्तु हमारे यज्ञ की आत्मा है यज्ञ का कितना भी सुक्रियाकलाप है। चाहे वह संसार में हो चाहे वह हमारे समीप हो रहा है। परन्तु वह जो स्वाहा है वही तो शब्द बन करके द्यौ लोक में जाता है। और द्यौ लोक मे यज्ञशाला का रथ बन करके प्रवेश करता है।

मैं अपने विचारों को दूरी नही तो ले जाना चाहता हूँ। परन्तु उद्दालक गोत्रीय के ऋषि जब स्वाहा उच्चारण करते तो उसका यन्त्रों में दृष्टिपात करते, जितने होतागण, उद्गाता जितना भी यज्ञशाला का कार्य है वह रथ बन करके यन्त्रो के द्वारा यन्त्रों में दृष्टिपात करते रहते हैं। विचार आता रहता है कि उसी शब्द में यज्ञशाला है उसी शब्द में मानव का चित्र विद्यमान है जो अन्तरिक्ष में ओत प्रोत रहता है। उद्दालक गोत्र मे श्री कान्त केतु ऋषि महाराज अपने पचासवें महापिता का दिग्दर्शन करते रहते थे। यन्त्रों के द्वार मैं विज्ञान के द्वारा उस रहस्तम में ले जाना नही चाहता हूँ विचार केवल यह है कि शब्द कितना विचित्र है ध्वनि पर ध्वनियां हो रही हैं एक शब्द अपने में बड़ा महत्वदायक है तो ऋषि कहता है याज्ञवल्क्य मुनि कहता है है हे राजन! यह शब्द ही प्रकाशित है, यह शब्द ही प्रकाश का देने वाला है जब देखो, शिष्य गुरु के द्वारा दीक्षा लेने के लिए जाता है तो आचार्य उसे शब्द ही शब्द ही तो देता है। तो मानव आध्यात्मिकवाद को जानने के लिए शब्द की ध्वनि करता है ओर कहता है तू प्राण है मन को एक सूत्र में लाने का प्रयास कर ओर वह शब्द की डयोढ़ी है ओर शब्द का सूत्र है उसी सूत्र में दोनों को पिरो करके तू आत्मा की वृत्तियों में लाने का प्रयास कर।

ऋषि कहता है कि याज्ञवल्क्यम मुनि महाराज कि हे राजन! यह शब्द ही हमारा जीवन है ओर यह शब्द ही अन्तरिक्ष को ऊँचा बनाता है इसी पृथ्वी के मध्य में भी यह शब्द ही अन्तरिक्ष को ऊँचा बनाता है इसी पृथ्वी के मध्य में भी यह शब्द ही अपनी ध्वनियों

मे ध्वनित हो रहा है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज जैसे शान्त होने लगे तो दोनों ने उपस्थित होकर कहा कि हे प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि जब यह शब्द नही होता तो प्रकाश का द्योतक कौन है भगवन! जब ऋषि ने यह वर्णन किया कि राजा को शान्ति प्राप्त नही हुई तो उन्होंने कहा हे राजन! हम आत्मा के प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं यह हमारा आत्मा ही तो प्रकाशित है आत्मा के रहने से शरीर चेतनित बना रहता है आत्मा के निकल जाने पर यह मानव का शरीर शून्यवत रूप में परणित हो जाता है। विचार विनिमय क्या ऋषि कहता है कि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि तुम आत्मा को जानने का प्रयास करो जिस समय यह शरीर आत्मा को जानने का प्रयास करो। जिस समय यह शरीर से आत्मा निकल जाता है तो राजन देखो, सूर्य अपना प्रकाश दे रहा है, परन्तु शरीर में आत्मा नही हैं तो मानव क्यों नही प्रकाशमान हो जाता है चन्द्रमा अमृत बिखेर रहा है चन्द्रमा अमृत दे रहा है शरीर में आत्मा नही है और नेत्रों के गोलकने ज्यों के त्यों निर्माणित हैं परन्तु क्यों नही प्रकाशमान हो जाते? चन्द्रमा अमृत बिखेर रहा है अग्नि तारामण्डल की माला बनी हुई है । आकाश गंगा के रूप में कहीं निहारिका के रूप में है कहीं अवन्तिका के रूप में हैं परन्तु देखो, इस शरीर में आत्मा नही हैं अरे, मानव तू उस पगडण्डी को क्यों ग्रहण नही कर लेता, क्योंकि आत्मा नही हैं। वह अग्नि अपना प्रकाश दे रही है अग्नि प्रकाशित बनी हुई है वह माता प्रकाश दे रही है परन्तु आत्मा शरीर में नही हैं यह शव बना हुआ है ब्रह्म आत्मा ब्रहे यह आत्मा के न रहने से मानव का शरीर शून्यवत को प्राप्त होता रहता है ब्रह्मणां ब्रह्म शब्द ज्यों का त्यों बना ध्वनित हो रहा है क्योंकि अन्तरिक्ष का यह गुण है अन्तरिक्ष में रत्त हो रहा है मानव के शरीर में भी वही है मन्त्रों की ध्वनियां हो रही हैं अन्तरात्मा नही हैं शरीर में अरे, मानव क्यों नही ध्वनित हो जाता है इसमे हमें यह सिद्ध होता है कि आत्मा ही प्रकाश का द्योतक है यहां तो आत्मा के रहने से मानव के सब अवयव बने रहते हैं परन्तु आत्मा के रहने से मानव के सब अवयव बने रहते हैं परन्तु आत्मा पृथक होने पर यह शरीर शून्य रह जाता है शब्द हा यह भौतिक विज्ञान कहलाता है और जहां यह शब्द विज्ञान समाप्त होता है वहां से आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ होता है आत्मा

को जाने के लिए मानव को प्रयास करना चाहिए। और भौतिक विज्ञान को जान करके ही हम आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर सकते हैं जब तक हम अपनी इन्द्रियों के अवयवों को नही जान पाते हैं, इन्द्रियों के विज्ञानमयी रहस्यों को जब तक हम उद्गीत रूप में नही गात गाते तब तक हम आत्मा के समीप नही जा सकते। यह आत्मा ब्रह्मणं ब्रह्म आत्मा परमात्मा के राष्ट्र में चला जाता है वहां प्रकाश रहता है परमात्मा के राष्ट्र में जाने के पश्चात परमात्मा के राष्ट्र में न तो रात्रि है, जब रात्रि नही है जहां आलस्य नही हैं वहां प्रमाद नही भी नही हैं जहां प्रमाद नही है वहां सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है जहां प्रकाश है वहां रात्रि नही, जहां रात्रि नही वहां आलस्य और प्रमाद नही हैं और जहां आलस्य ओर प्रमाद नही वहां मृत्यु भी नही कहलाती। मानव मृत्यु से पार हो जाता है प्रत्येक मानव की यही आकांक्षा बनी रहती है कि मेरी मृत्यु नही होनी चाहिए। मैं सदैव प्रकाश में रत्त रहना चाहता हूँ परमपिता परमात्मा के उस महान आंगन ममें जाने का प्रयसा किया जाएं जहां सदैव प्रकाश रहता है वहां आत्मा का राष्ट्र है वहां आत्मा का वास है।

मुनिवरों! आत्म तत्त्वों को जानने के लिए मानव को सदैव अनुसन्धान करना है विचारना है कि ओर विचार विनिमय करके इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करना है आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अन्तरात्मा को जानने का प्रयास करें जो ब्रह्माण्ड को मापने वाला है ब्रह्माण्ड के समीप अपने में सन्धि चाहता है उस सन्धि काल में हम प्रवेश करना चाहते हैं हम आत्म तत्त्व को जानते हुए इस शरीर को नश्वर स्वीकार करते हुए आत्म चेतना के ऊपर विश्वसनीय बन करके परमात्मा के सूत्र में सूत्रित हो जाएं।

यह है बेटा! आज का वाक् आज का विचार क्या? जब याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने आत्मा की चर्चा की तो यहां आ ककरे राजा ओर उनकी पत्नी रम्भेश्वरी मौन हो गए। ओर ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो करके बोले कि धन्य है प्रभु! आपने हमें अन्धकार से प्रकाश में पहुचाया है वास्तव में प्रकाश यही है आपने हमें अन्धकार से प्रकाश में परणित कर दिया है हमारा अन्तरात्मा प्रसन्न है प्रभु इस वाक्य पर उनका हृदय प्रसन्न

हो गया राजा और ऋषि दोनों आपस में विचार विनिमय करने लगे।

जहां वेद याग होता है वहां आध्यात्मिक यागा भी होता है आध्यात्मिकवाद याग की विचार धाराएं मानव के अन्तर्हृदय में रहनी चाहिए। यह है आज का वाक् आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जाएं। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें।

२१ 17 10 1987 पुष्प 54 55

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परगतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गएं हैं और वे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है क्योंकि याग उस का आयतन है उसका गृह है उसका सदैन है अथवा वह उसी में व्याप्त रहते हैं, और जितना भी यह जगत मानो एक यज्ञशाला के रूप में प्रायः हमें दृष्टिपात आ रहा है उस महानता में सदैव रत्त रहते हैं और उसका ज्ञान और विज्ञान प्रायः वह अनन्तमयी माना गया है। यह ब्रह्माण्ड उसकी प्रतिभा का दर्शन कर रह है जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से ही, प्रायः अनुसन्धान करता रहा है और विचारता रहा है कि वे परमपिता परमात्मा जो अनन्तमयी है, मानो जिसका ज्ञान व विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है, हम उस परमपिता परमात्मा की अनन्तमयी महिमा का दर्शन करना चाहते हैं। तो सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक वह मानव अपने में विचारता रहा है और अनुसन्धान भी करता रहा है।

आज मैं विशेष विवेचना तो तुम्हें देने नही आया हूँ विचार केवल यह प्रगट करने के लिए आए हैं कि वे परमपिता परमात्मा जो अनन्तमयी है उसके सम्बन्ध में मानव अपने विचार देता रहा है और उन विचारों में जब मानव रत्त रहता है तो वह राष्ट्रीय विचारधारा हों, चाहे विज्ञानमयी धारा हो चाहे वह आध्यात्मिक विज्ञान में रत्त रहने वाली हो हमारे

यहां भिन्न भिन्न प्रकार के विज्ञान ओर ज्ञान की चर्चाएं प्रायः वैदिक साहित्य में होती रहती हैं। प्रत्येक रूपों में उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसका वेदज्ञ ज्ञान को अनन्तमयी माना गया है उसके ऊपर मानव अपने विचार विनिमय करता रहता है तो आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है। वेद ध्वनि अपने में ध्वनि होती रहती है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा का अनन्त विचार कृतियों में रहता है आज का हमारा विचार यह कहता है कि यज्ञं प्रथम ब्रह्माः कृतम् लोकाः वाचन्नमम् ब्रह्मे कृतं गृहे। बेटा! वेद का मत्र यह कहता है कि यज्ञ भवितां मानो यह जो याग है, यह मानव को द्यौ लोक में पंहुचा देता है अग्निम् ब्रह्मे कृतं यह जो अग्नि की जो धाराएं हैं अथवा अग्नि की जो नाना प्रकार की तरंगें हैं इन तरंगों के ऊपर मानवीय हव्य जब विद्यमान हो जाता है तब वह अन्तरिक्ष में गति करने लगता है। मैं विशेष विवेचना देने नही आया हूँ आज का हमारा विचार यह कि जो यह यज्ञोमयी संसार मानवीयता में रत्त होता रहा है इसके ऊपर मानव को विचारना चाहिए ओर मानो देखो, इस संसार रूपी यज्ञशाला के ऊपर मानव का अधिपथ्य होना चाहिए।

मैं विशेष विवेचना न देता हुआ आज तुम्हें ऐसे क्षेत्र में ले जान चाहता हूँ जहां याग क्रियात्मक में रहा है। जैसे महाभारत का काल भगवान राम का काल, ओर भी नाना काल राष्ट्रीय जो अपने में व्यतीत होते रहे हैं, बड़े विचित्रता में परणित रहे हैं, जिसके ऊपर मानव नाना प्रकार की टिप्पणियां भी करता रहता है परन्तु राम के यहां राष्ट्र वृत्तियों में अधिपथ्य को एक खिलवाड़ बनाया ओर यह विचारा गया कि राष्ट्रीयता में वास्तव मे कोई रहस्य नही है। इस रहस्यता को उन्होंने अपने पगों से दूरी करते हुए अपने त्यागमयी जीवन को बनाने का प्रयास किया। इसी प्रकार एक काल वह कहलाता है जो महाभारत का काल है। महाभारत का काल ओर राम का काल दोनों भिन्न भिन्न काल कहलाते हैं। राष्ट्रं ब्रह्मा एक काल राष्ट्र अपने में धारयामि बनाने की इच्छा प्रगट कर रहा है ओर भयंकर वनों में ऋषि मुनियों में ओर तपश्चरों में अपने जीवन को व्यतीत करना चाहते हैं ओर राष्ट्र को नही चाहते हैं, राष्ट्र एक खिलवाड़ बन गया। महाभारत का काल ओर राम का दोनों ही मुनिवरों! देखो, भिन्नता में माने गएं हैं जहां

राष्ट्र को अपनाना चाहते हैं वह भिन्नता हैं, जहां राष्ट्र को मुनिवरों! अपनाने में लगे हुए हैं गृहा ब्रहे मेरे प्यारे! जहां मानव मानव को नष्ट करने के लिए तत्पर हो रहा है तो महाभारत का काल बेटा! एक विचित्र काल कहलाता है।

आज मैं तुम्हें एक याग की चर्चा करने जा रहा हूँ जहां बेटा! देखो, राजेश्वरी याग हुआ। राजेश्वरी याग में मौन ब्रह्मा मुनिवरों! देखो वह कृष्णा अपनी पतिभा में निहित रहते हैं, मानो गम्भीर मुद्रा में मुद्रित होते हुए उन्होंने एक याग का आयोजन कराया। इन्द्रप्रस्थ में जब वह याग हुआ तो महाराजा युधिष्ठर अपने में शान्त मुद्रा में मुद्रित थे याग का जब प्रारम्भ हुआ तो बड़े प्रतिभाओं से याग सम्पन्न हुआ। सम्पन्न हो जाने के पश्चात जिस वाक्य का जिस वाक्य में में तुम्हें ले जाना चाहता हँ वह वह वाक्य बड़ा विचित्र माना गया है मेरे प्यारे! देखो, याग जैसे सम्पन्न हुआ और याग का शेष रह गया आपोमयी ज्ञान प्रवामहे मेरे पुत्रों! देखो, इदन्नमम् वह सब यज्ञशाला में विद्यमान थे। याग सम्पन्न होने के पश्चात एक नवलेश्वर नाम के ऋषिवर जो भयंकर वनों में रहते थे उन्होंने श्रवण किया कि इन्द्रप्रस्थ में एक राजेश्वरी याग हुआ है और उस याग में मुझे गमन करना चाहिए। नवलेश्वर ऋषि महाराज भयंकर वनों में गमन करते हुए इन्द्रप्रस्थ पंहुचें इन्द्रप्रस्थ में महाराजा युधिष्ठर अपनी स्थली पर विराजमान हैं भगवान कृष्णा भी अपनी स्थली पर विद्यमान हैं नाना ब्रह्मवेत्ता जो ब्रह्मा मुनिवरों! वेदान ब्रह्म ब्रह्मे जो वेद का उद्गीत गान गाने वाले आचार्यजन भी प्रायः वहां विद्यमान हैं तो मेरे पुत्रों! देखो, जैसे ही वह याग सम्पन्न हुआ, तो नवलेश्वर ऋषि महाराज जो यज्ञ का शेष था जल था उसमें स्नान करने के लिए जल को अपने शरीर से पखार रहे थे उसमें अर्पित हो रहे थे तो उस समय महाराजा युधिष्ठर ने कहा कि महाराज! यह मैं क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ भगवान कृष्णा ने कहा कि इनसे जानकारी की जाएं। तो महाराजा युधिष्ठर ने नवलेश्वर ऋषि महाराज को कहा पधारिए भगवन! यह विराजमान हो गये। उन्होंने कहा प्रभु! आप जल से अपने शरीर को इस प्रकार क्यों पखार रहे हो? उस समय महाराजा युधिष्ठर से नवलेश्वर ऋषि महाराज ने कहा कि महाराज! बहुत पुरातन काल की वार्त्ता हो गई है एक समय जब मैं भयंकर वनों में तप कर रहा था तो भयंकर

अकाल हुआ था ओर उस अकाल में जब वृष्टि नही हो रही थी तो एक भुञ्जु नाम के ऋषि थे। महात्मा भुञ्जु ने अपने विचारों को राष्ट्रीय वृत्ति में ले जा करके भयंकर वनों में साकल्य एकत्रित किया ओर साकल्य एकत्र करने के पश्चात उससे उन्होंने याग किया याग जब शुद्ध हृदय से किया तो वृष्टि प्रारम्भ हो गई। जब वृष्टि प्रारम्भ हो गई तो ब्राह्मण जो यज्ञ का शेष रह गया था उसमें मैंने स्नान कया तो मेरा जो आधा अंग था वह स्वर्णमयी बन गया, इतना पवित्र बन गया, इतना पवित्र बन गया इतना स्वर्णमयी बन गया, कि मुझे ज्ञान की उपलब्धि होने लगी। तो मेरे प्यारे! देखो, स्वर्णमयी का अभिप्रायः यह कि ज्ञान की तरंगें एक महानता में परणित होने लगी। उसी ज्ञान ओर विज्ञान को ले करके मेरा अन्तरात्मा प्रसन्न हो रहा है। आज मैंने यह विचारा कि बहुत समय हो गया है, देखो, आज राजेश्वरी याग हुआ है, मैं उस जल में स्नान करूं तो मेरा सर्वत्र शरीर ज्ञानमयी स्वर्णमयी बन जाएं। जब नलेश्वर ऋषि महाराज ने यह वाक्य कहा तो उस समय महाराजा युधिष्ठर ने भगवान कृष्ण से कहा कि हमाराज मैं यह क्या श्रवण कर रहा हूँ क्या यह याग नही हुआ, याग सम्पन्नता को प्राप्त नही हुआ तो नलेश्वर ऋषि महाराज की इच्छा पूर्ण न हो सकी। तब उस समय भगवान कृष्ण ने कहा हे युधिष्ठर आप इसका आश्चर्य मत कीजिए, यह कोई आश्चर्य की बात नही हैं, माना इनका स्वर्णमयी शरीर नही हुआ कोई वाक् नहीं है परन्तु तुम इसमें आश्चर्य क्यां कर रहे हो हे राजन! आगे जो समय आ रहा है वह इतना अविचाराय समय आ रहा है कि जितना हमने यह याग किया है, इतना भी याग नही रहेगा? इतने में ही प्राणी ओैर राजा भी सान्त्वना को प्राप्त हो जाएंगें इसका कोई आश्चर्य नही हैं। भगवान कृष्ण ने कहा कि हे नलेश्वर महाराज यह याग राजसी है ओर वह याग सात्विक था। हमारे यहां दो प्रकार के याग परम्परागतों से ही, माने गए हैं। जिनमें एक याग वह होता है जो सात्विक याग है सात्विक याग वह होता है जो तपस्वियों के द्वारा हुआ करता है, जो भयंकर वनों से साकल्य एकत्रित करके याग होता है व हयाग मानो देखो, सात्विक कहलाता है, जिसमें किसी मानव का कोई उद्देश्य नही होता है, वह निरुद्देश्य वायु मण्डल के लिए ओर द्यौ लोक में जाने के लिए किया जाता है। एक याग वह याग है जिसको

हम राजेश्वरी याग कहते हैं यह याग ऐसा है, जो राष्ट्र के कल्याणार्थ ओर प्रजा के सुखी बनाने के लिए प्रजा में एक महानता का दर्शन लाने के लिए होता है। इससे राजा के राष्ट्र में सुविचार आ जाएं, सुमानवता आ जाएं, ऐसा एक याग हमने प्रारम्भ किया है। उस याग को राजसूय याग कहते हैं। नवलेश्वर ऋषि महाराज का जो विषय है वह सात्विक कहलाता है।

जब भगवान कृष्णा ने यह अपने विचार दिए तो मुनिवरों! महारा युधिष्ठर मौन हो गए। तब भगवान कृष्णा ने नेवले से कहा हे नवलेश्वर ऋषि महाराज आप अपना अनुभव प्रगट कीजिए मानो जो हामरा यह विचार है राजसी याग है एक स्थान में तुम्हारा याग है जो भयंकर वनों में महात्मा भुञ्जु ने किया थ दोनों यागों में तुम अपने में क्या भिन्नता स्वीकार करते हो। उस समय नवलेश्वर ऋषि ने कहा कि मेरा विचार तो यह है कि जब मैं भयंकर वनों में तप कर रहा था मानो देखो, तप उसे कहते हैं कि मानव अपनी इन्द्रियों को वशीभूत कर लेता है, जहां इन्द्रियां वशीभूत हो जाती हैं ओर वे प्राण में संचरित हो जाती हैं मानो वह तपस्या कहलाती है तपस्या का अभिप्रायः यह है कि अपने में पवित्र अन्नादि को ग्रहण करता हुआ मन, वचन, कर्म ओर सर्वत्र मानो देखो, एक ही सूत्र में आ जाएं ओर सूत्र में हो करके एक माला बन जाएं उस माला को धारण करने के पश्चात मानो अपनें में तपश्चर बन जाता है तो तपस्यं ब्रह्मः जब मन ओर प्राण दोनों एक सूत्र में सूत्रित हो जाते हैं तो उसी समय मानव की अन्तरात्मा में ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है मानव का जीवन स्वर्णमयी बन जाता है स्वर्णमयी का अभिप्रायः यह है कि उसके हृदय में ऐसा सौन्दर्य आ जाता है कि वह ज्ञान ओर विज्ञान में रत्त हो जाता है संसार में प्रभु का अस्तित्व बन जाता है ओर प्रभु को वह निश्चय कर देता है कि प्रभु मुझे उसके समीप जाना है।

तो नलेश्वर ऋषि ने कहा कि वह विचार भयंकर वनों में प्रायः आते रहते है एक तुम्हारा याग है परन्तु देखो, राजा इसीलिए अपनें यागों में लगा रहता है जिससे राष्ट्र में रहने वालीप्रजा है वह अकर्मण्य न बन जाए ओर उसमें धार्मिक ऐश्वर्य ओर याग के प्रति भावना उत्पन्न हो जाएं। राजा इसीलिए याग करता है कि जैसे अश्वमेध याग है ओर

देखो, वाजपेयी ायग है अग्निष्टोम याग है, नाना प्रकार के जो यागों में राजा अपने को ले जाता है इसीलिए कि प्रजा में एक याग की भावना बनी रहे। और वह जो याग का परमाणुवाद है वह अन्तरिक्ष में रत्त होकर के समय समय पर वृष्टि प्रारम्भ हो जाएं। राजा के राष्ट्र में प्रजा एक धर्म और मानवता को जानने वाली बने, मानवीय दर्शन प्रजा के अन्तर्हृदय में प्रवेश्ष कर जाएं, ऐसा राजा का भाव रहता है। इस याग में और तपश्चर के याग में बहुत अन्तर्द्वन्द्व फैलाया गया है उस समय महाराजा नवलेश्वर ऋषि महाराज ने कहा क हे भगवन! तुम्हें यह प्रतीत है कि मैं बहुत सी संसार की वार्त्ता को जानता रहता हूँ परन्तु मुझे जब इस साहित्य की आभा में स्मरण आती तो है, आने लगती है तो हृदय प्रायः गदगद हो जाता है मैं यह जानता रहता हूँ अपने में यह अनुभव करता रहता हूँ कि यह जो यागां ब्रह्मणे लाकां तपश्चर का जो हमारा जीवन रहा है वह बड़ा अद्वितीय रहा है। महात्मा भुंजु मुनि महाराज बारह वर्ष पर्यन्त तक एक अनुष्ठान करते रहते थे। और अनुष्ठान के पश्चात वह याग वह याग करते और उसी याग का परिणाम यह होता है कि समय समय पर वायुमण्डल अपने में महानता का गान गाता रहता था। द्यौ से प्रकाश लेकर के, द्यौ से अग्नि ब्रह्मण ले करके वही प्रदीप्त होकर के द्यौ को ऊँचा बना देती है द्यौ को पवित्र बना देती है। इसी प्रकार दोनों का तारतम्य तो एक ही रहता है। दोनों का तारतम्य तो राजा भी चाहता है कि मेरे राष्ट्र में, मेरे राजेश्वरी याग से प्रजा पवित्र बन जाएं और वायुमण्डल पवित्र हो जाएं। इसमें दुषित वायुमण्डल न रहे, एक ऋषि का तपस्वी का भी यही मन्तव्य रहता है दोनों की गम्भीरता में अन्तर्द्वन्द्व होता है ऋषि का तपोमयी गम्भी है राजा का क्रियाकलापों में राजसी होने से प्रजा को मानो देखो, सुखद की भावना है वह इतनी गम्भीर मुद्रा में मुद्रित नही हैं तो जब उन्होंने विचार दिया तो नवलेश्वर ऋषि महाराज ने अपने में यह अनुभव किया कि प्रभु मैं यह चाहता था कि जब इस याग के यज्ञशेष में स्नान करू तो मेरा जीवन पवित्र हो बन जाएं, मैं इस पवित्रता में लगा हुआ था, परन्तु वह मुझे प्रतीत न हुआ। नवलेश्वर ऋषि महाराज ने इतना उच्चारण करके भयंकर वनों को प्रस्थान किया। महाराजा युधिष्ठर ने उनसे बहुत प्रार्थना की प्रभु मेरे याग का अन्न तो ग्रहण कीजिए नवलेश्वर ऋषि ने

कहा कि राजन तुम्हें यह प्रतीत है कि राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण नही करता हूँ, क्योंकि यह रजोगुण, तमोगुण से सना हुआ अन्न होता है, इसीलिए मैं इसको ग्रहण नही करूंगा। नवलेश्वर ऋषि इतने वाक्य उच्चारण करके भयंकर वनो को प्रस्थान किया।

महाराजा युधिष्ठर बड़े दुखित हुए और उन्होंने भगवान कृष्ण से कहा प्रभु! मेरा याग तो मुझे नीरस प्रतीत होता है। कृष्ण भगवान बोले क्यां? क्योंकि महाराजा! राष्ट्र का अन्न महाराजा नवलेश्वर ऋषि ने प्राप्त नही किया। ब्रह्मलं गृहे राजा ने जब यह कहा तो भगवान कृष्ण बोले कि तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए कि वह तपस्वी हैं और तपोमय जो जीवन होता है उसकी कोई सीमा नही होती है, वह सीमा से रहित होता है। इसीलिए तुम दुखी क्यों हो रहे हो। उन्होंने कहा कि किन्हीं तपस्वियों का जीवन उस अन्न को उस साकल्य को ग्रहण करता है जिससे उनके अन्तरात्मा में पवित्रता आ जाएं तो हे राजन! तुम दुखित न हो। तुम्हारे राष्ट्र का अन्न तो उसने ग्रहण कर लिया है, जल को पान किया है। मानो देखो, जल का, अन्न का, पान करना ही प्राण की सत्ता को ऊर्ध्वा में पंहुचाना है तो हे राजन्! तुम दुखित न हो। तुम्हारा याग सम्पन्न हो गया, पूर्णता को प्राप्त हो गया। भगवान कृष्ण ने कहा राजन् तुम्हें यह प्रतीत है कि ये जो नवलेश्वर ऋषि महाराज हैं इनका जो वंशलज है वह अग्नि वंशलज कहलाया जाता है अंगिरा ऋषि से लेकर के इनका वंश चल रहा है और ये वंशलज भिन्न भिन्न रूपों में परणित होता रहता है परिवर्तनशील भी होता रहा है परन्तु विचार केवल यह कि उनके याग में प्रायः एक महानता का दर्शन होता रहता है, उनका आध्यात्मिक याग चलता रहता है।

हमारे यहां दो प्रकार के यागों की विशेषता मानी गई है। एक भौतिक याग है, उसी भौतिक याग को आध्यात्मिक याग में पंहुचाना है भौतिक याग उसे कहते हैं कि जिससे जन समूह में मानो देखो, सुगन्धि आती है और आध्यात्मिक याग है इस भौतिक मार्ग से हो करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करते हैं और आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं जो मानो देखो, अपनी अन्तरात्मा को पवित्र बनाता है। तुम्हें यह प्रतीत होगा, तुम्हें यह जानकारी भी होगी कि पूर्व काल में आध्यात्मिकवादी से सिंहराज भी प्रार्थना करते हुए

दूरी चले जाते थे तुम्हें यह प्रतीत है राजन कि भगवान राम के महापिताओं में, महाराजा दिलीप ने याग कर्म करने से पूर्व तपस्या की। पर वह तपस्या कितनी विचित्र वह कामधेनु गऊ की सेवा करते थे नन्दिनी की सेवा करते रहते थे और बारह वर्षों तक उन्होंने भयंकर वनों में तप किया। गऊ के पिछे भ्रमण करके वह गायत्राणी छनदो का पठन पाठन करते रहते थे जब उनका आत्म बल इतना बलिष्ठ हो गया एक समय बारह वर्ष व्यतीत हो गएं नन्दिनी के पीछे भ्रमण करते हुए, तो पर्वतीय जलों में से जल झरनों के रूप में बह रहा था, महाराजा दिलीप उस झरने को दृष्टिपात करके अपनेपन का दर्शन करने लगे, मानो मन उसमें लग गया। इतने में नन्दिनी जब भयंकर वन में थी तो सिंहराज ने उस नन्दिनी पर आक्रमण कर दिया तो नन्दिनी ने ध्वनि की। महाराजा दिलीनप का मन जब झरने से उस नन्दिनी के स्वच्छ ध्वनि पर पंहुचा तो सिंहम ब्रह्मा हे सिंहम् लिंगम ब्रह्मे वाचक प्रहा राष्ट्रदक प्रवीछदम् उस समय महाराजा दिलीप ने प्रार्थना की कि और यह कहा कि हे सिंहराज मैं जानता हूँ मैं तेरे राज्य में विद्यमान हैं यह तेरा राष्ट्र है जिस वन में मैं आ गया हूँ यह तेरा राष्ट्र है मैं यह जानता हूँ परन्तु यह नन्दिनी गऊ हैं मेरी पूज्य है क्योंकि जिस राष्ट्र में जब गऊ का पूजन होता है तो वह राष्ट्र स्वतः पवित्र बन जाता है। यह मेरी पूज्य है क्योंकि जिस राष्ट्र में जब गऊं का पूजन होता है तो वह राष्ट्र स्वतः पवित्र बन जाता है यह मेरी पूज्य है मैं इसका पूजन करता हूँ हे सिंहराजा क्षमा प्रवणां ब्रहे मैं यह चाहता हूँ कि तुम मेरी पूज्या को त्याग दो, यह तेरा आहार न बने। मुझे ऐसा स्मरण है कि जब महाराजा दिलीप ने इस प्रकार प्रार्थना की, वह प्रार्थना में नवधाभक्त बने ये तो सिंहराज ने अपनी वृन्दध्वनि से कहा कि हे राजन! हे राजन! आप धर्मात्मा राजा हैं आप महान और पवित्र राजा हैं अहिंसा परमोधर्मी राजा हैं तेरे राष्ट्र में हम स्वतन्त्र भ्रमण करते हैं परन्तु हमें सिंहम ब्रहे हिंसा करने वाला तेरे राष्ट्र में कोई नही हैं उसी समय नन्दिनी को त्याग दिया और नन्दिनी दिलीप के द्वार पर आ गई। सिंहराज ने कहा ऐसे राजाके राष्ट्र में मैं नन्दिनी पर प्रहार नही करूंगा। यह अहिंसा परमोधर्म तपस्या का बल है जब मानव तपस्या करता है तो उसका आत्मिक बल इतना विशाल बन जाता है कि सिंहराज भी अपने

हिसंकपन को त्याग देता है। महाराजा दिलीप अपने में बड़े प्रसन्न हुए और कामधेनु नन्दिनी को ले करके उन्होंने अपने राष्ट्र के लिए गमन किया। तो विचार क्या मुनवरों देखो, तपस्वियों का जीवन आत्मीयता होता है, यह आत्मीयता अपने में पवित्रता में परणित होती रहती है। वह आत्मबल इतना बलिष्ठ हो जाता है कि हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसा को त्याग देता है तो हे राजन! यह मैंने अतीत के काल की चर्चा तुम्हें प्रगट की है इसी प्रकार देखो, तुम्हारा तपोमय जीवन तो है परन्तु इतना नहीं हैं जितना तुम जानना चाहते हो। आज मैं तुम्हें एक स्पष्ट वाक्य उच्चारण किए देता हूँ। कि यह जो तुम्हारा राष्ट्रीय याग हुआ है, यह बड़ा पवित्र रहा है। मैं यह कहता रहता हूँ कि इतना हो रहा है आगे जो काल आ रहा है भविष्य में इतना भी न रहेगा। राजन तुम व्याकुल न हो। तो परिणाम क्या है इस वाक्य उच्चारण करने का कि राजेश्वरी याग में नेवले की गाथा मैंने तुम्हें प्रगट की हैं यह साहित्यिक चर्चायें हैं जिन साहित्यों में इस प्रकार के विचार आते रहते हैं वह साहित्य मनन करने के योग्य है भगवान कृष्ण ने वाक्य उच्चारण कर मौन हो गए।

याग सम्पन्न हो गया। याग के सम्पन्न हो जाने के पश्चात भगवान कृष्ण का उस राजसूय याग का निर्वाचन हुआ और याग की प्रतिभा महान बन गई। पर विचार विनिमय क्या, आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है हमारा विचार विनिमय यह कि मानव को दोनों प्रकार के बलों को ऊँचा बनाना चाहिए एक आध्यात्मिक और एक भौतिकवाद है। भौतिकवाद में मानव का बाह्य आचरण मानव का व्यवहार इतना ऊँचा होना रहना चाहिए, जिससे समाज में उसकी प्रतिष्ठा हो जाएं और वह प्रतिष्ठित हो जाएं आध्यात्मिकयाग जिसे हम आध्यात्मिक कहते हैं वह अपने में एक अद्वितीय कहलाता है। मौन रहना और प्राण का शोधन करना, मन की प्रतिभा को ऊँचा बनाना इससे आध्यात्मिक ऊँचा बनता है जब अन्न मानव का पवित्र हो जाता है। तो इससे आध्यात्मिकवाद बलिष्ठ होता है। बेटा! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नही आया हूँ विचार केवल यह देने के लिए आया हूँ कि याग अपने में बहुत ऊँचा क्रियाकलाप है यह वायुमण्डल का शोधन करने वाला है यज्ञोमयी विष्णु यह विष्णु कहलाता है

जिसको प्रत्येक मानव अपने में धारयामि बाता रहा है।
आज का विचार विनिमय यह कि हम अपने परमपिता परमात्मा के यज्ञोमयी संसार को विचारने वाले बनें। आध्यात्मिक और भौतिक दोनों को ऊँचा बनाते हुए संसार सागर से पार हो जाएं यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहते रहते हैं कि यह जो नेवला है यह नेवला जिसे आप ऋषि उच्चारण कर रहे हैं यह नेवला तो एक योनि कहलाती है। मैं अपने पुत्र से यह कहा करता हूँ कि हे पुत्र ऐसा कोई नेवला नही हुआ संसार में जो स्वर्णमयी बन जाएं, स्वर्णमयी का अभिप्रायः जड़वत बनना नही हैं स्वर्णमयी बनने का अभिप्रायः यह है कि चैतन्य बनना है चेतना का अर्थ यह है कि ज्ञान और प्रयत्न इतना बलिष्ठ होना जाए। और विवेक हो जाए उससे यहां नवलेश्वर ऋषि का दर्शन होता हैघ्। तो आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें।

२२ 18 10 1987 पुष्प 54 55

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा का गुणवादन कर रहा है अथवा उसके गुणों का वर्णन कर रहा है जो अनन्तमयी कहलाया गया है जिसका ज्ञान विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है। जिस अनन्नता के ऊपर हमारे ऋषि मुनियों नाना प्रकार का अनुसन्धान करते रहे हैं और अन्वेषण करते रहते हैं वे परमपिता परमात्मा अनुपम है, पुरोहित है, पुरोहित है सखा है और अन्तर्हृदय में विद्यमान रहता है। आज का हमारा वेदमन्त्र जहां उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन कर रहा है वहां कुछ वेद मंगलं ब्रह्मा मानव के मंगल की कामना करता रहा है वेद के पठन पाठन में यागों का वर्णन बड़ा महत्व माना आया है, क्योंकि प्रत्येक रूप में मानव नाना

रूपों में याज्ञिक बना हुआ है और वह याग में परणित रहता है चाहे किसी भी रूप में वह विद्यमान हो वेद का मन्त्र याग के लिए मानव को प्रेरित कर रहा है अग्निष्टोम याग अपने में एक महानता का उद्गीत गाता रहता है अश्वमेध याग राष्ट्र व समाज के लिए अपना बड़ा महत्वती माना गया है आज के हमारे वेद के विचार में, वैदिक मन्त्रों मं याग के प्रेरणा आ रही थी। याग का सुगन्धियां आ रही थीं हमने इससे पूर्व काल में तुम्हें दोनों यागों की विवेचना की है। और यह विवेचना यह कि हम दोनों प्रकार के यागों में संलग्न हो जाएं। एक आध्यात्मिक याग है तो एक भौतिक याग है। भौकित याग की यह भूमिका बनती है कि वह आध्यात्मिक याग को प्रेरित करती है और भौतिक विज्ञान को ऊर्ध्वा में ले जाती है विचार ये कि आज का हमारा वेदमन्त्र उस याग के सम्बन्ध में प्रेरित कर रहा था। यागाम् मृदुर्भगः ब्रह्मणां वाचन्नमम् ब्रह्माः कृतम् लोकाः याग का इतन उत्तम महत्व माना गया है।

मुझे स्मरण आता रहता है जब महर्षि कपिल मुनि महाराज अपनी अन्तर्गुफाओं में विद्यमान हो करके यागों में लगे रहते थे इनके यहां पञ्च यागों का बड़ा वर्णन आता रहा है। महर्षि कपिल मुनि जी ने नाना प्रकार के यागों के ऊपर अपनी टिप्पणियां की हैं, अथवा अपना मन्तव्य दिया है उनके मन्तव्य के कथनानुसार महर्षि कपिल मुनि जी पर्वतों की गुफाओं विद्यमान हो करके अपने को सुगन्धित करते रहे हैं जहां वे सूत्रों को अनुगृहण करते रहते थे, सुगन्धित करते रहते थे वहां अपनेपन में भी सुगन्धि को लाना बहुत अनिवार्य रहा है महर्षि कपिल मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हो करके एक आसन पर दो आसनादि ब्रह्मणं ब्रहे वृतं चार चार पल का आसन लगाते थे। उन आसनों पर विद्यमान हो करके उस परमपिता परमात्मा और याग दोनों के ऊपर चिन्तन करते रहते थे हमारे यहां उसी काल में समाधिष्ट हुआ है वे प्राणों का निदान करने के लिए तप कर रह है। प्राणों का जब निदान करता है तब मन का जो साकल्य है मन, बुद्धि, चित्त अहांकर है उसका साकल्य बना करके उसको आहुति रूप में परणित करता रहा है तो महर्षि कपिल जी ने अपने में अनुसन्धान, विचार और वृत्तियां में रत्त रहते थे। एक समय महर्षि कपिल मुनि के आश्रम मे महर्षि गौतम मुनि का आगमन हुआ।

महर्षि गौतम मुनि महाराज एक गुत्थी में अपने को गृहीत कर रहे थे और चाहते थे कि इसका मुझे उत्तर मिले। तो महर्षि कपिल मुनि महाराज के द्वारा जब गौतम का आगमन हुआ तो महर्षि गौतम मुनि ने उनका ब्रह्मणे गृहे कृतं और कपिल जी ने भी उनका स्वागत किया। तो दोनों बुद्धिमान विद्यमान हो गये। गौतम मुनि बोले कि महाराजा! मैं यह जानना चाहता हूँ कि मैं कुछ अपनी लेखनियां बद्ध कर रहा हूँ और उस लेखनी बद्ध में मुझे कुछ संशय बन गई है। महात्मा कपिल मुनि बोले कि महाराज! उच्चारण कीजिए, दोनों परस्पर विचार विनिमय करेंगें, और उसका निवारण होगा। महर्षि गौतम मुनि बोले कि प्रभु मैं कल रात्रि के काल में गंगा के तट पर पंहुचा और गंगा के तट पर महर्षि विश्वेश्वर मुनि महाराज याग में लगे हुए थे याग में इदन्नमम का पठन पाठन कर रहे थे उन मन्त्रों को उन गृह सूत्रों में लगे हुए थे, जिनमें इदन्नमम का वर्णन किया जा रहा था। तो हे प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके विचार में इदन्नमम् में क्या होता है। महर्षि कपिल मुनि बोले कि हे गौतम क्या आप इसको नही जानते? उन्होंने कहा प्रभु! मैं इससे वंचित हूँ उन्होंने कहा ब्रह्मणे प्रदाः इदन्नमम् का पठन पाठन करता है तब वह कहता है इदन्नमम यह मेरा नही हैं मैं त्याग कर रहा हूँ आपका दिया हुआ पदार्थ है आपका साकल्य है आपको ही समर्पित कर रहा हूँ कि हे प्रभु! कोई भी पदार्थ है आपका साकल्य है आपके ही समर्पित कर रहा हूँ। यह मेरा नही हैं मानो मैं यह उच्चारण कहके इदन्नमम् कहता हूँ कि हे प्रभु! कोई पदार्थ मेरा नही हैं तो मेरे प्यारे! जब महर्षि कपिल जी ने यह कहा तो गौतम बोले कि भगवन! मेरे पन से क्या अभिप्रायः है उन्होंने कहा कि मैं में यह जगत विद्यमान रहता है जिस भी काल मे हम ओ३म् की विवेचना करते है। तो अन्त में म् आता है ओर म् के निचले भाग में हलन्त होता है मानो एक कृतिका होती है तो संसार में जितना भी ये प्राणीमात्र है ये म् में गृहित हो रहा है। म् में परणित हो रहा है। यह मेरा है, ममता मेरी है मानो मेरे पन में संसार ओत प्रोत रहता है तो वह कहता है इदन्नमम् कि यह मेरा नही हैं मैं कौन हूँ इसके ऊपर विचार विनिमय करता है तो महर्षि कपिल जी ने यह कहा कि इदन्नमम् यह मेरा नही हैं, वह सर्वस्व सम्पदा आपकी है। आप कौन हैं यह मैं नही जानता, आप कौन हैं

इस स्वरूप को भी मैं नही जानता मैं कौन हूँ उस स्वरूप को भी मैं नही जानता मैं तो केवल इदन्नमम् जानता हूँ जब यह वाक्य महर्षि कपिल जी ने कहा तो महर्षि गौतम बोले कि प्रभु मैं कौन है मैं की ये ध्वनि कहां से आती है उन्होंने कहा कि यह मैं की ध्वनि अन्धकार में से आती है यह मैं शब्द का प्रतिपादन तथा इसकी उपलब्धि केवल अन्धकार से होती है अन्धकार अज्ञान को कहते हैं अन्धकार वेद को नही कहते हैं अवेद को कहते हैं इसीलिए अन्धकार से ही इसकी उत्पति होती है उसमें से एक ध्वनि उत्पन्न होती है और वह ध्वनि हमें इस संसार से लिपायमान कर देती है। वेद का ऋषि कहता है कपिल जी कहते हैं प्रभु मेरे विचार में यही आ रहा है कि अन्धकार को मानव को अपने से दूर कर देना चाहिए अन्धकारम् ब्रह्मे कृतं जब अन्धकार समाप्त हे जाता है तो उस समय यह अधिकार स्वतः प्राप्त हो जाता है कि इदन्नमम यह मेरा नही हैं इदन्नमम् है यह कहता हुआ मानव अपने का त्याग कर देता है, अपनी दूरिता को त्याग देता है कि यह दूरिता होते हैं अतः हृदय में कितने अन्धकार के अंकुर होते हैं उन अंकुरों को समाप्त कर देता है।

बेट मैं तुम्हें विशेषता में नही ले जा रहा हूँ केवल विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की आरधना करने में लग जाएं। और इदन्नमम् ब्रह्मणा ये याग का सबसे प्रथम मौलिक गुण होता है। वह जो इदन्नमम् में हैं वह यज्ञमान की भावना है वही तो वायुमण्डल और प्राण को ओत प्रोत ध्वनि को मन के सहित द्यौ लोक में अन्तरिक्ष में पंहुचा देती है, द्यौ लोक को प्राप्त होती रहती है द्यौ से प्रकाश आता है द्यौ प्रकाश का द्यौतक कहलाता है चन्द्रमा लेता है वह भी अमृतमयी प्रकाश को द्यौ से लेता है वह द्यौ से लेता हुआ और ये द्यौ है अमृतमयी बन करके, प्रकाश बन ककरे संसार का यज्ञसवरूप बन जाता है। क्योंकि वह ऊर्ज्वा देता है प्रकाश देता है अनुपमता देता है, इसके ऊपर मानव विचार विनिमय करता रहा है। मैं विशेष विवेचना न देता हुआ विशेष चर्चा प्रगट न करता हुआ, केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती में रत्त हो जाएं।

महर्षि गौतम ने कहा कि प्रभु एक समय गंगा के तट पर विद्यमान हो करके मैं यह

चिन्तन कर रहा था अहिल्याणी गच्छतम ब्रह्म लोकां वाचन्नम ब्रह्मा अध्ययन कर रहा था कि रात्रि का काल छा गया। रात्रि को हमारे यहां वैदिक साहित्य में अहिल्या कहा जाता है। अहिल्या एक समय अपने में अन्धकारम् बृहे अन्धकार से चन्द्रमा में रत्त हो गई।

जब वह चन्द्रमा में रत्त हो गई तो प्रातःकालीन इन्द्र का जब आगमन हुआ तो इन्द्र ने दोनों को अपने में धारण कर लिया, रित्र को भी, चन्द्रमा को भी। अपने में धारण करके वह वह इन्द्र बन गया, सहस्रों भगां वाल बन करके वही सूर्य प्रकाशमान बन गया। भग नाम किरणों का कहा गया है भग हमारे वैदिक साहित्य में बहुत से पर्यायवाची शब्द माने गएं हैं। हे प्रभु! मैं जो इन्द्र की उपासना कर रहा था तो क्या वह मेरी यथार्थ थी उस समय महात्मा कपिल जी ने कहा कि भगवान जिस समय सर्वे ब्रह्मणे कृतं जो महापुरूष होते हैं वह प्रातःकाल में ब्रह्म की याचना करते हैं इन्द्र की याचना करते हैं वह कहते हैं इन्द्र आओ हमारे अन्धकार को समाप्त करो। आप अधिराज हैं, आप देवताओं के राजा हैं, इस प्रकार जब वह प्रार्थना करता है तो याचक तो वह सूर्य प्रातःकाल मे उदय होता हुआ रात्रि ओर चन्द्रमा को अपने गर्भ में धारण कर लेता है, क्योंकि दोनों ही सूर्य के आश्रित माने गएं हैं द्यौ के आश्रित माने गएं हैं द्यौ का आश्रय सूर्य को माना गया है तो विचार क्या महर्षि गौतम और महर्षि कपिल जी ने कहा कि नही यह जो तारामण्डल है क्या यह अपने में अन्धकार का सूचक हैं कपिल जी ने कहा कि नही तारामण्डल है यह जो अपने माला बनी हुई है, एक माला को दूसरी माला से सम्बन्धित करने वाली है एक माला को दूसरी माला से सम्बन्धित करने वाली है एक माला को दूसरे में एक सूत्र में एवं व्रणकेतु एक मन का पिरोया जाता है तो इसको हम अन्धकार नही कह सकते क्योंकि यह जो एक दूसरे से गुथा हुआ जगत है। जैसे बाह्य संसार एक दूसरे से गुथा दृष्टिपात आता है इस प्रकार जब महर्षि कपिल मुनि महाराज ओर महर्षि गौतम का दोनों का विचार विनिमय हुआ, उसी विचार को लेकर के कपिल मुनि महाराज अपने आसन पर पुनः विद्यमान हो गए।

मेरे पुत्रों! देखो, कहीं से भ्रमण करते हुए राजा सगर की सेना आ गई और राजा सगर

की सेना, सेनानायक, इत्यादि सर्वत्र कपिल मुनि के आश्रम में आए तो कपिल जी से कहा हे भगवन! यह क्या कर रहे हो। उन्होंने कहा कि मैं आसन पर विद्यमान हूँ। उन्होंने कहा यह जो असन है यह आसन किसका है? उन्होंने कहा ददन्नमम् यह प्रभु का आसन है मैं प्रभु का चिन्तन करता हूँ मैं ममता को जानना चाहता हूँ राजा सगर के सेनानायक ने कपिल मुनि से कहा कि हे कपिलं ब्रहे तुम्हारा ये आसन प्रभु का आसन है मैं प्रभु का चिन्तन करता हूँ मैं ममता को जानना चाहता हूँ राजा सगर के सेनानायक ने कपिल मुनि से कहा हे कपिलम ब्रहे तुम्हारा ये आसन प्रभु का आसन है प्रभु कौन है कहां रहता है जब उन्होंने ऐसा कहा उन्होंने कहा परमपिता परमात्मा कहां रहता है वह कौन सी स्थली है जहां परमपिता परमात्मा न रहता हो उन्होंने कपिल और गौतम ऋषि दोनों का अपमान किया। उन्होंने कहा तुम अपमान कर रहे हो, अपवाद में वार्त्ता प्रगट कर रहे हो, यह राष्ट्रीयवेत्ताओं का कर्तव्य नही हैं। तो उस समय दोनों के इतना उच्चारण करते ही उस सेनानायक ने और समाज ने तो अयोध्या में गमन किया, और वे दोनों शान्त मुद्रा में जो आवेश आया तो उस आवेश को रुद्र रूप में धारण कराने के लिए तप करने लगे। यह विचार क्या है ऋषि मुनि याग के ऊपर एक अनूठा विचार विनिमय करते रहे हैं। उन्होंने साकल्य लाकर के याग किया और याग में अग्न्याधान किया तो अग्नि की तरंगों में वो अपने शब्दों को दृष्टिपात करने लगे, चित्रों का दर्शन करने लगे। तो याग अपनी स्थलियों पर बड़ा अनूठा रहा है। एक बड़ा विचारवान रहा हे जब मैं विशेष चर्चा न प्रगट करता हुआ अब मेरे प्यारे महानन्द जी से कहूँगा कि वे भी अपने दो शब्द उच्चारण करें।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् गथं मन्था मानम् अगणाम् ब्रह्मणाः। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल, अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव महर्षि कपिल मुनि की चर्चा कर रहे थे और महर्षि गौतम की भी चर्चा कर रहे थे। हमें स्मरण आता रहता है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रत्यक ऋषि मुनियों के सम्बन्ध में प्रायः अपना विचार देते रहते हैं जहां हमारी आकाशवाणी जा रही है वहां एक याग का आयोजन हुआ है उसकी भूमिका में मेरा अन्तर्हृदय यज्ञमान के साथ रहता है मैं यज्ञमान को यह कहा करता हूँ आधुनिक

काल का यह जो युग है यह वाममार्ग का युग कहलाता है। यहां वाममार्ग बलवती हो रहा है। मुझे स्मरण है कि वाममार्ग किसे कहते हैं मैंने यह कहा है कि वाममार्ग उस काल को कहते हैं जहां राजा से लकर के प्रजा तक मांसाहारी समाज बन जाता है। आधुनिक काल का जो समाज है वह प्रत्येक राजकीय जिनको प्राणियों की रक्षा करनी है, वह भी प्राणियों का भक्षण कर रहा है। प्रजा भी कर रही है तो उसको हम वाममार्ग का युग कहते हैं मुझे वह काल स्मरण है जिस काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रश्न करता रहा हूँ महाराजा अश्वपति के यहां यह घोषणा हुई कि राजा से लेकर प्रजा तक कोई प्राणी अपने उन्हीं आहारों को करेगा जो उनका आहार है उसका आहार अन्नादि है। वास्तव में जब इस प्रकार के विचार को लेते हैं, आधुनिक काल का जो समाज है अथवा राष्ट्रवाद है इस विषय को उन विचारों में लगाते रहते हैं जिससे मानव के उदर की पूर्ति हो उदर की पूर्ति कैसे हो, कैसे प्राणियों को हम ग्रहण कर सकें। और उनके आहार में ला सकं। जो आहार नही रहा है उस समाज को भी आहार कराने के उत्कट इच्छा बनी रहती है आधुनिक काल का जो समाज है वह वाममार्ग नही तो क्या कहलाता है। वाममार्ग उसे कहते हैं जो उलटे मार्ग पर चलता है उलटे मार्ग पर गति करता है, शान्त मुद्रा में मुद्रित हो करके वह उन आहारों में लगा हुआ है जिससे उसके उदर की पूर्ति हो, दूसरे की उदर की पूर्ति का विचार नही हो रहा है तो विचार क्या मैं विशेषता में न ले जाता हुआ आज मैं जिसकी आभा में जाना चाहता हूँ जिस भी क्षेत्र में प्रवेश करना चाहता हूँ वही क्षेत्र मुझे अग्नि का काण्ड प्रतीत हो रहा है। मेरे पूज्य आज मैं जब साहित्य में जाता हूँ मेरे पूज्यपाद गुरुदेव साहित्यिक चर्चाओं का उन्मूलन करते रहते हैं उसका उद्गीत गाते रहते हैं जैसे साहित्यकारों ने वर्णन किया है आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव पूर्वकाल की, महाभारत काल की, गाथा प्रगट कर रहे थे और नेवले की चर्चा प्रगट कर रहे थे। एक नवलेश्वर ऋषि थे परन्तु ऋषि को आधुनिक काल के साहित्य में नेवला बना दिया। ऋषियों को नेवला बनाया परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा कि भगवान आधुनिक काल में तो वे नेवले को कहते हैं। कि एक ऋषि ने याग किया था, उस जल के पात्रों में जो शेष रह गया था, उसमें स्नान किया था, उस

जल के पात्रों में जो शेष रह गया था उसमें स्नान किया तो वह स्वर्ण का बन गया। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने स्वर्णमयी की जो विवेचना की है वह ज्ञान ओर वेद की विवेचना की। आधुनिक काल का जो साहित्य है वह उसकी विवेचना कर रहाहै कि वह स्वर्ण बन गया। धातुवृत बन गया ऐसा सामज कहता है परन्तु हे भोले प्राणियों अपने साहित्य को विचार में नही लेकर हमारा जो साहित्य है उसका जब तक शुद्ध रूप नही होगा, तक तक तुम्हारा जीवन, तुम्हारी परम्परा, तुम्हारी जो जनसमाज है, वह कदापि ऊँची नहीं बन पाएगी। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कहा है कि वाममार्ग के युग में ओर जिस समाज पर इस भारत भूमि में द्वितीय राष्ट्रों में आकर के प्राणियों ने राज किया है, राष्ट्र को अनुमोदित किया है, ओर उन्होंने साहित्य में अशुद्धियों का प्रचार किया है अशुद्धियां करने के लिए तत्पर हुए। ब्राह्मणों को द्रव्य दे ककरे उन द्रव्यों से वेद के ऊपर एक कृतिका कहलाई जाती है। हे राष्ट्रवेत्ताओं आधुनिक जो काल चल रहा है वे काल ऐसा है जिसके ऊपर तुम्हें अनुसन्धान करना है ओर अपना शोधन करना है अपने विचारों को विशुद्ध रूप दे देना है। विशुद्ध रूप जब तक नही दिया जाता जब तक राष्ट्र त्याग ओर तपस्या वाला नही बनेगा। परन्तु जिस राष्ट्र में अपठित समाज जब राजा को निर्वाचन करने वाला हो ओर वह प्रजा यह अनुभव करे कि हमारा राजा कुछ सुखद दे सकता है यह असम्भव है अपठित सामज जब राजा को चुनौती देने वाली होती है, वह काल बड़ा विचित्र होता है, वह काल अन्धकारमय होता है जहां वेद के मर्म को जानने वाला बुद्धिमान पुरोहित, जो ज्ञान ओर विज्ञान का विवेकी हो, जब साधारण प्राणी की ओर बुद्धिमान की वाणी ओर उसका अस्तित्व एक ही तुल्य माना जाएगा वह काल कोई प्रिय नही होता है। क्योंकि बुद्धिमान का काल सदैव ऊँचा रहना चाहिए। बुद्धिमान ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं बुद्धिमानों से ही विवेक का जन्म होता है ओर बिना विवेक के राष्ट्र ऊँचा नही बन पाता है। इसीलिए विवेक होना चाहिए जब राजा दूसरे के प्राण, दूसरे के रक्त का पान करने वाला हो तो ऐसा राजा इस समाज को कैसे ऊर्ध्वा में पंहुचा सकता है जब मैं इन वाक्यों को लेता हूँ तो हृदय संकुचित हो जाता है कि यह अन्धकार ही अन्धकार दृष्टिपात

करता रहता है इसे वाममार्ग का युग इसीलिए कहता हूँ कि यहां प्रत्येक प्राणी मांस का भक्षण करने के लिए तत्पर हो रहा है, विचार रहा है कृतियों में रत्त हो रहा है, जिससे शारीरिक बलिष्ठता आ जाएं और बोधि परम्परा समाप्त हो जाएं। ऐसे क्रियाकलापों में लगा हुआ है आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल ये, कि जिन साहित्यों को अशुद्ध किया गया है, उन साहित्यों को शुद्धिकरण होना चाहिए। ये बुद्धिमानों के द्वारा बुद्धिजीवी प्राणियों के द्वारा होता है।

हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे, तेरे द्रव्य का सदैव सदुपयोग होता रहे, और वायुमण्डल में तेरी भावना और तेरे साकल्य की सुगन्धि वायु में प्रवेश हो करके वायुमण्डल शुद्ध करती रहे। आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि आज का हमारा जीवन हमारा राष्ट्र, हमारी मानवीयता और हमारा दर्शन एक ऊर्ध्वा में गति करना चाहिए। आज का हमारा ये वाक्य क्या कहता है कि हे राजन! तेरे राष्ट्र में तेरा आहार दूषित होने से नाना रूढ़ियों में यह समाज रूढ़ित हो रहा है राजा को चाहिए कि सबसे प्रथम अपने राष्ट्र में रूढ़ियों को न पनपने दे। रूढ़ि उसे कहते हैं जो ईश्वर के नामों पर नाना प्रकार के मतों में लगे हुए हैं और ज्ञान और विज्ञान का उनमें कोई ज्ञान नही हैं जो ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा ईश्वरवाद पर परणित हो जाएं वही धर्म है। जो मानव के लि कृत तुल्य कहलाता है प्रत्येक मानव और जब राजा यह कहता है कि नाना धर्मों में हम विश्वास करते हैं, अरे, राजन तेरी बुद्धि कहां चली गई है। धर्म तो एक वचन होता है, धर्म तो एक होता है नाना धर्म तो होते ही नहीं। जब नाना धर्म नही होते हैं तो नाना धर्मों में विश्वसनीय कैसे बन रहा है। कोई भी मानव संसार में ऐसा नही हैं चाहे वह इस पृथ्वी मण्डल पर हो, चाहे वह चन्द्रमा पर हो, चाहे वो किसी भी लोक लोकान्तरों में गति करने वाला हो, वह भी नेत्रों से दृष्टिपात करता है सुदृष्टिपान करना धर्म है। और कुदृष्टिपान करना ही अधर्म माना गया है। वही तो धर्म है जो प्रत्येक इन्द्रियों में समाया हुआ है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे वर्णन कराते रहते है। परन्तु नाना धर्म कहां से आ गएं वह मेरे विचार में नही आ रहा है। अरे, धर्म तो एकोकी वचन है बहुवचन नही माना गया है एकोकी वचन है धर्म तो लाना ही राष्ट्र का

समाज का कर्तव्य है कर्तव्य का पालन करना ही धर्म है। नेत्रों से इन्द्रियों से इन्द्रियों से समाहित होने वाला जो ज्ञान विज्ञान है, वही उसका धर्म है। धर्म को ही ग्रहण करना और अधर्म और रूढ़ियों को त्यागना यही मानवता कहलाती है।

आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाता हूँ। जो क्रियाकलाप, विज्ञान, मानवता आत्मीयता में स्थिर हो जाएं, वही धर्म कहलाता है। तो विचार आता रहता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे संसार की बहुत सी वार्त्ताएं प्रगट करते हुए वर्णन किया कि पुरातन काल के राजा अपने में राष्ट्रीयता का प्रतिपादन करते, समाज में एक मानवता को लाने के लिए तपों में परिणत होते रहते थे। राजा से जब राष्ट्र का पालन अच्छी प्रकार नही होता अहित होने लगता है तब तक पुरातन काल में राजा अपने राज्य को त्याग करके तप करने चले जाते थे और तपस्या में परिणत रहते। आज राम की गाथा प्रायः मानव के हृदयों मे गृहित कर रही है, राम जब लंका को विजय करके आए तो उन्होंने बारह वर्ष तक भयंकर वनों में जाकर तप किया था। और यह कहा था तब तक मैं राष्ट्र का पालन न करूंगा तक तक मरा आत्मबल बलिष्ठ न हो जाएगा। मेरे में बहुत समय तक तमोगुण छाया रहा है मेरा रावण से संग्राम हुआ है। अब मैं पुनः आत्म बल को ऊँचा बनाऊंगा और बिना आत्मबल के मैं राष्ट्र को पालन नही कर सकता। मुझे वह काल मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया कि ऐसे जो तपस्वी राजा होते हैं जो इन्द्रियों पर जय करने वाले हों, इन्द्रियों पर विजय करने वाले हों आधुनिक काल के राजा सुरा और सुन्दरी में विश्वसनीय बने हुए हैं। विचार आता है कि यह प्रणाली जब तक समाप्त नही होती, तब तक धर्म और मानवता को हम नही ला सकते, और नाना प्रकार की रूढ़ियों को समाप्त नही कर सकते। मेरा जो अन्तर्हृदय है वह यज्ञमान के साथ रहता है कि उनके जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। मेरी मनोनीत भावना रहती है अन्त में विशेष चर्चा न देता हुआ अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः अभी अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने दो शब्द उच्चारण किये। इनके शब्दों में प्रायः कटुता रहती है परन्तु विचार तो प्रियतर रहते हैं आज का हमारा वाक्य

क्या कह रहा है महर्षि कपिल मुनि और भजन्म् वृहे वृणस्त गौतम की चर्चा हो रही थी। साहित्य और ऋषि मुनियों के अनुपम विचार में एक बड़ा अनूठापन रहता है। शेष चर्चाएं हम कल प्रगट करेंगें आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा। ओ३म् ब्रह्म गणाः आभ्यां वृथं हि आपा रेवं भद्रा वाचन्नमः आसज्ञनगतम् आभ्यां ऋषि वायुरेवाः।

२३ 28 04 1988 रात्रि पुष्प 54 55

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का का गुणगान गाया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन कर रहा है अथवा उसके गुणों का गुणवादन कर रहा है इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर प्रायः हमारा विचार विनिमय होता रहता है और यह विचारते रहते हैं कि वे परमपिता परमात्मा कितना ज्ञान और विज्ञानमयी कहलाता है मानो सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक कोई ऐसा विज्ञानवेत्ता नही हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सीमा में आने वाले नही हैं वह सीमा से रहित कहलाते हैं। तो इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर प्रायः हम विचार विनिमय करते रहते हैं क्योंकि प्रत्ेयक वेदमन्त्र मे जो यौगिकवाद आता है और व्यवहारवाद आता है उसी के सन्दर्भ में मुनिवरों! विश्व की प्रतिभाओं का वर्णन होता रहता है तो हमारा वाक्य हमारा वेद का मन्त्र यह गीत गा रहा है हे मानव! तू अपने में अपनेपन को दृष्टिपात करता चल क्योंकि जो मानव अपनेपन को दृष्टिपात करता रहेगा वह मानव महान और पवित्र कहलाता है।

आओ मुनिवरों! देखो, आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा है वेदमन्त्र कह रहा है गोः वर्णनं ब्रह्म धेनु ब्रह्म वर्चो मानो हम धेनु के द्वार पर चलें। हमारे यहां धेनु के नाना प्रकार

के पर्यायवाची है परन्तु धेनु का एक ही अभिप्रायः है कि जो दुही जाती है। जो हमारे आज के वेद के पठन पाठन में मानो धेनु का वर्णन आ रहा था और यह उच्चारण किया जा रहा था कि धेनु वर्णन ब्रह्म वृतः मानो जो दुही जाती है वह धेनु कहलाती है हमारे वैदिक साहित्य में धेनु का अभिप्रायः पृथ्वी मानी गई है क्योंकि यह पृथ्वी दुही जाती है और जहां पृथ्वी को दुहने वाला मानो कृषक कहलाता है। इसीलिए जहां इस पृथ्वी का नामोकरण धेनु है, वहां धेनु नाम मानो गो नाम का पशु कहलाता है। मानो माता का नाम भी धेनु है। हमारे वैदिक साहित्य में भिन्न भिन्न प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की विवेचना होती रहती है और यह कहा जाता है कि धेनु ब्रवहे मिव्रत मानो धेनु कहलाते हैं जो दुही जाती है।

मुनिवरों! आज हम उस आभा में तुम्हें ले जाना चाहते हैं जहां धेनु शब्द की विवेचना होती रहती है मैंने कई काल में तुम्हें यह वर्णन कराया है कि धेनु का अभिप्रायः यहां जो वृतः ऋषि मुनियों के आसन पर बेटा! जिस विद्या को दुहा जाता हो उस विद्या का नाम भी धेनु है तो आओ मुनिवरों! आज मैं तुम्हें ऋषि मुनियों के आश्रम में ले जाना चाहता हूँ जहां एक एक वेदमन्त्र के ऊपर प्रायः अन्वेषण और अनुसन्धान करते रहे हैं विचार आता रहता है बेटा! धेनु वृतः क्योंकि राजा भी जब अपने राष्ट्र में प्रजा और पशुपालन में लग जाता है तो वह भी धेनु की आभा में रत्त होने लगता है मुझे वह काल स्मरण आता रहता है भगवान कृष्ण का जीवन स्मरण आता रहता है त्रेता के काल में भी इसी काल में हम प्रायः अपनी दृष्टि ले जाते हैं और उन क्रियाकलापों में तत्पर हो जाते है। तो जहां मेरे पुत्रों! धेनु की सेवा होती है और धेनु का दुग्ध आहार करने के पश्चात अपने में साधक साधना करने में तत्पर हो रहा हो। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिस काल में बेटा! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहां नाना प् रकार की विवेचना देखो, वह धेनु दुग्ध आहार करने के पश्चात अपनी साधना में सदैव तत्पर रहे और साधक बन करके उन्होंने अपने को ब्रह्म उपाधि को प्राप्त किया है और ब्रह्मवेत्ता बने। तो आओ मे। आज तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ। मानो जिस

धेनु की सेवा करने के पश्चात उसे कामधेनु कहा जाता है।
मेरे पुत्रों! देखो, एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज बेटा! उस पातालं ब्रहे मानो त्रिपुरी में पंहुचें और उस त्रिपुरी में ब्रह्मवेत्ताओं का एक समूह एकत्रित हुआ जिसमें ब्रह्म विचारने के लिए बुद्धिमान और ऋषि मुनि जो तपस्वी थें वे अपना अपना विचार विनिमय करने लगे। महाराजा इन्द्र के यहां एक अश्वमेध याग हुआ था उस अश्वमेध यज्ञ में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज यज्ञ के उद्गाताओं के रूप में होत्री रूप में मानो उस गीत को काने के लिए, आसन ग्रहण किया था। और उन्होंने कहा मैं वह गीत गाने के लिए गीत गाने वाला उद्गाता हूँ तो मुनिवरों! देखो, राजा इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और राजा इन्द्र ने जैसे यज्ञ का प्रारम्भ कराया तो वह अश्वमेध यज्ञ कहलाया हमारे यहां राजा अश्वमेध यज्ञ करता है, अश्व कहते हैं प्रजा को मेघं ब्रह्मा प्रजां ब्रहे राजा का नाम अश्व कहलाता है मेघ प्रजा को कहते हैं जो प्रजा का स्वास्थय मानो सुख और शान्ति आनन्द के लिए वे यज्ञ में परणित होते हैं तो द्रव्य का सदुपयोग किया जाता हो उसका नाम अश्वमेध यज्ञ कहलाता है तो महाराजा इन्द्र से सब प्रसन्न थे उन्होंने त्रिपुरी में एक यज्ञ का आयोजन किया। उसमें महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उद्गाता रूप में विद्यमान हो गए। नाना प्रकार के उत्तर देने के पश्चात इन्द्र को यह मा अपने में अनुभव हो गया कि ये उद्गाता के योग्य है बेटा! देखो, यज्ञ प्रारम्भ रहा परन्तु जिस समय यज्ञ सम्पन्न हुआ तो कुछ समय के पश्चात राजा ने ऋषि मुनियों को कुछ मुद्राएं प्रदान करने लगे और ब्रह्मवेत्ताओं की चर्चा करते हुए महाराजा इन्द्र ने कहा कि तुम्हारा ब्रह्म ज्ञान बलवती होना चाहिए। क्योंकि ब्रह्म ज्ञान राष्ट्र, समाज और मानव सब ऊँचा बना करता है महाराजा इन्द्र ने महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज को अपने वाक्यों में वृत करते हुए कहा तब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा प्रभु! अब मेरा अपने विद्यालय में गमन होना है तो राजा ने उन्हें कुछ मुद्राएं दे करके एक कामधेनु गो थी जो मानो देखो, महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज को उन्होंने प्रदान की और कहा यह कामधेनु गो है। इस कामधेनु गो के दुग्ध आहार से जब प्रसन्न होकर जब यह दुग्ध आहार कराती है तो मानो देखो, साधक की प्रवृत्ति महान बन जाती है। वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह स्वीकार कर ली

और वह देवताओं की धरोहर कहलाई गई। कामधेनु गो को लेकर वहां से उन्होंने वहां से गमन किया और गमन करते हुए वहां से अपने आश्रम में आ गए। आश्रम ममें आ जाने के पश्चात माता अरूणधती बोली कि प्रभु यह क्या है उन्होंने कहा कि महाराज! इन्द्र यह कामधेनु गऊ मुझे प्रदान की है और यह गो प्रसन्न होकर जब दुग्ध आहार कराती है तो मानो ब्रहे वृतः व्रतं देवा तो मानो हमारी साधना पूर्ण होगी। माता अरूणधती बड़ी प्रसन्न हुई ओर वह प्रथम ब्रह्म व्रते देवः देखो, वह कामधेनु जब दुग्ध आहार व्रतं कराती तो देखो, वेद मन्त्रों की ध्वनि से ही वे ध्वनित होते रहते थे। जब वेदमन्त्रों की ध्वनि के द्वारा उसके दुग्ध को माना उसके स्तनों में से प्राप्त करते तो ऋषि बड़े प्रसन्न होते ओर कामधेनु प्रसन्नचित होकर मानो जब कामधेनु दुग्ध का व्रत करती तो वे बड़े प्रसन्न होते। उस दुग्ध के पान करने से वे साधना में परणित रहते थे क्योंकि ब्रह्मवेत्ता जो होता है वह साधना में परणित होता है।

आज कोई मानव यह उद्गीत गाने लगे कि मैं मानो उन इन्द्रियों से मन के उस ब्रह्म को अपने में ग्रहण कर सकूं या पा सकूं तो यह असम्भव है क्योंकि इन्द्रियों से ब्रह्म को नही प्राप्त किया जाता है। वह तो केवल अनुभव का विषय बन जाता है साधना के द्वारा मन को पवित्र बना करके बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञावी के द्वारा ही साधक अपने साधना को प्राप्त करता हुआ साधक बन करके नाना प्रकार के अनुष्ठान करता रहता है और अनुष्ठानवादी होता है तो वही महान और पवित्रता को प्राप्त होता रहता है मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है कि कामधेनु गो का दुग्ध पान करके अरूणधती और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में भी साधक बन गए। और साधना करते रहते थे। वह ब्रह्मवेत्ता बन गए। वह ब्रह्मवेत्ता वह होता है जो साधक होता है और अपने मे उस प्रभु का दर्शन करता है वह साधक ब्रह्मवेत्ता कहलाता है वह प्रकृति के एक एक कण में ब्रह्म का दर्शन करता है। ब्रह्म का दर्शन वह कैसे करता है मानो व्यष्टि से समष्टि में जाना होता है। मुनिवरों! देखो, व्यष्टि एक संकीर्णवाद को कहा जाता है और समष्टि उसे कहा जाता है जो इससे दूरिता में परणित हो जाता है। अपनी महानता की आभा में सदैव रत्त हो जाता है और साधक महान बन जाता है। मुझे वह काल स्मरण आता

रहता है मानो नाना प्रकार के अनुष्ठान करने के पश्चात अपने में महानता का दर्शन होता रहता है।

बेटा! एक समय सुनीति नाम के राजा अपने सेना के सहित भ्रमण करते हुए वह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में पंहुचें। महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने राजा का स्वागत किया और राजा विद्यमान हो गएं और उन्होंने कामधेनु गो के दुग्ध का आहार कराया। राजा प्रसन्न हुए परन्तु राजा के मनों में विकृतियां आ जात हे तो उसका राष्ट्रतव अपने में शान्त होने लगता है राजा के हृदय में यह विकृति आई कि वह कामधेनु गो को तेरे राष्ट्र में होनी चाहिए थी मेरे गृह में रहनी चाहिए थी। तो उन्होंने महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि प्रभु हे ब्रह्मवेत्ता आप ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी हैं मेरी इच्छा यह है कि आप इस कामधेनु गो को मुझे प्रदान कर दीजिए। उन्होंने कहा यह वाक्य यह वाक्य भ्रम में राजा ने कहा है उन्होंने कहा हे राजन! गो मुझे इन्द्र से प्राप्त हुई है महाराजा इन्द्र ने मुझे प्रदान की है साधना के लिए जब मैं वेदमन्त्रों का उद्गीत गाता हूँ तो वह वेदमन्त्रों से प्रसन्न हो जाती हैं तो उस समय इसका दुग्ध स्त्रों से प्राप्त करके जब हम पान करते हैं तो हमारा मन पवित्र हो जाता है मन के पवित्र होने पर हम पान करके हम अपनी बुद्धि को ऊर्ध्वा में ले जाते हैं बुद्धि मेघां कृतं प्रज्ञाः में प्रवेश हो करके मानो हम उस प्रभु का अनुभव करते रहते हैं जब उन्होंने ऐसा कहा तो राजा ने कहा कि प्रभु यह मेरी इच्छा है कि इस कामधेनु को अवश्य अपने गृह में ले जाऊंगा ऋषि ने कहा जैसी इच्छा हो मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मवेत्ता वह होते हैं जो नम्र रहते हैं और नम्र रह करके प्रभु का स्मरण करते रहते हैं और मानो लावा ब्रहे को ह कटा रसतं ब्रह्मे लोकां जो कटु शब्दों में प्रतिपादित रहता है उसे अपने में धारण करते रहते हैं और अपनी आत्मा में मग्न रहते हैं। आत्मा से चकित करते रहते हैं आत्मा में लीन होने के लिए वह सदैव तत्पर रहते हैं इसीलिए महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज में यह विशेष गुण कहलाता था इसीलिए वह ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे।

मुझे स्मरण आता रहता है कि जब राजा ने इस प्रकार ऋषि से आराधना की तो ऋषि ने स्वीकार नही किया और वह मौन हो गए। तो अब जब रात्रि में वह निद्रा की गोद

में चले गऐ तो राजा यह ही चिन्तन करता रहा कि जब निद्रा से जागृत हो जाएं तो क्या यह कामधेनु कैसे हमारे यहां आ जानी चाहिए। क्योंकि हमारे यहां सृष्टि के प्रारम्भ से राज सभा जब से यह राज्य मानो राजा और प्रजा दोनों का समन्वय हुआ है उस समय से एक नियमावली बनी हुई है कि कामधेनु गो का वध नही करना या नष्ट नही करना यह मानो एक राष्ट्रीय नियमावली बनी हुई है। यह मानो जब से राज सभा जैसे भगवन! मनु के काल में राजा मुन के यहां भी बहुत से वंशलज वह देखो, लगभग इक्कतर हजार वंशलज भगवान मनु के व्यतीत हुए हैं जो मानो अयोध्या में राज्य करते थे। वह राज्य ब्रह्म लोक अपने में ब्रह्म का चिन्तन भी करते रहते थे।

तो देखो, यह नियमावली राजाओं के यहां धेनु को, गायन को नष्ट नही करना है राजा ने ऋषि से प्रार्थना की परन्तु उन्होंने वह स्वीकार नही की। स्वीकार न करने से जब रात्रि काल समाप्त हो गया और प्रातःकाल आया तो राजा ने अपने सेनानायक से कहा कि प्रभु कामधेनु अपने राष्ट्र में ले चलो इसके दुग्ध का हम पान करेंगें उस समय सेनानायक ने कहा हे प्रभु! यह देवताओं की धरोहर है और ऋषि आश्रम से ले जाना यह राष्ट्र का कर्तव्य नही हैं यहआप का कर्तव्य नही हैं भगवन! परन्तु राजा ने यह स्वीकार नही किया और स्वीकार न करने से मानो कामधेनु को आज्ञा के अनुसार जब गमन करने लगे तो महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरूणधती ने अपनी मधुरवाणी से कहा कि हे कामधेनु तुम देवताओं की धरोहर हो और यज्ञ में जब परणित हो, वह यज्ञ जब मैंने सम्पन्न कराया उद्गाता के रूप में तो उस समय महाराजा इन्द्र ने तुम्हें मुझे प्रदान कर किया था और मैं तेरे दुग्ध का आहार करते कुछ साधना करता रहता हूँ और ब्रह्म को प्राप्त करता रहता हूँ और ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए मैं सदैव तत्पर रहता हूँ। हे कामधेनु यही तुम्हारी इच्छा हो तो राष्ट्रीय गृह में प्रवेश कर जाओ अन्यथा मेरी इच्छा ऐसी नही हैं। जब माता अरूणधती और महाराजा वशिष्ठ ने यह वाक्य कहे तो कामधेनु ने अपने स्वरूप को क्रोधाग्नि में परणित कर लिया और उन की सेना को नष्ट करने लगी। जब सेना को नष्ट करने लगी तो राजा तो उसे वध कर नही सकता था क्योंकि यह एक नियमावाली बनी हुई थी राजा ने सेनानायक से कहा कि

हे नायक अब क्या करना है तो उन्होंने कहा त्याग दीजिए। राजा ओर जो सेना उनकी थी उसे ले करके उन्होंने वहां से गमन किया ओर अपने गृह में जा पंहुचें। मगर देखो, राजा के मन में यह विचार बना रहा कि मुझे भी तपस्या करनी है जिस तपस्या के बल से पशु मानव की सेवा करते रहते हैं। ओर सिंहराज भीर अपनी हिंसा को त्याग देते हैं मुझे वह तपस्या करनी हैं।

देखो, सुनीति राजा के मन में यह विचार बन गया कि मैं भी तपस्या करूंगा। जैसे देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहां कामधेनु है परन्तु अपने स्वामी को नही त्यागती। ऐसा बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है कि जब राजा ने अपना यह नियम बनाया तो उन्होंने दो समय हो गए दो रात्रि हो गई अपनी निद्रा को त्याग दिया ओर विचारने लगे कि मैं कामधेनु को कैसे प्राप्त करू ओर मानो कामधेनु भी न हो तो मुझे अपने जीवन को ऐसा बनाना है कि जिससे पशु भी मानव की रक्षा करनेवाला हो हिंसक भी रक्षा करने वाला हो, वह अपनी हिंसा को त्यागने वाला हो। तो सुनीति राजा ने अपनी यह धारणा बना करके जब चतुर्थ दिवस इस प्रकार का मानो चिन्तन किया तब उन्होंने अपने मन्त्रियों को निमन्त्रित किया ओर उनसे कहा कि हे मन्त्री गणों तुम राष्ट्र के लिए तत्पर रहो मैं तपस्या करने जा रहा हूँ। मैं त्याग ओर तपस्या में परणित करना चाहता हूँ मुझे यह राष्ट्र नही चाहिए ओर मुझे तो वह तपस्या करनी है जिससे प्राणीमात्र हमारी रक्षा करने वाला हो। देखो, राजा के हृदय में विवेक जागरूक होने लगा ओर विवेक भी इस प्रकार का जागा कि जैसे कामधेनु वशिष्ठ मुनि महाराज को रक्षार्थी बनी हुई है, वह प्रायः देवताओं की धरोहर है परन्तु वह कस प्रकार मन मग्न रहती है मुझे तो ऐसे जीवन को बनाना है जिससे ध्वनि उच्चारण करते ही रक्षा होगी।

राजा सुनीति ने अपने मन्त्रियों को राष्ट्र समर्पित करके ओर उन्होंनें कहा कि मैं अपने जो जेष्ठाय पुत्र है जो गुतुक मानव है उसे यह राष्ट्र दे देना चाहता हूँ मन्त्री ने भी यही उन्हें विचार दिया ओर कहा कि प्रभु आप तपस्या करने लिए जाईएं। अपने जेष्ठाय पुत्र को राज्य दे करके वह भयंकर वनों को चले गए। जहां सिंह अपनी ध्वनियां करताहो ओर भी नाना प्राणी मात्र वहां अपनी ध्वनियां में रत्त रहने वाला हो तो राजा वहां

तपस्या करने के लिए विचारने लगा कि मुझे तपस्या में क्या करना है।

उसी तपोवन में वह तप ब्रह्माः लाकां वाचम ब्रह्मे वेदमन्त्रों में तप की बड़ी महता आती है अब मुझे यह विचार नही आ रहा है कि तप किसे कहते हैं तो राजा ने यह विचारा कि तपश्चं ब्रह्मे अन्नः व तप वह मानो वेद का वाक्य कह रहा है कि तपस्या कि लिए अन्न चाहिए जिससे मेरा शरीर अन्न से परणित होकर के और मैं तपस्या में तल्लीन हो जाऊं। राजा ने यह विचारा कि मैं वायु का सेवन करूं क्योंकि वायु में वह तत्त्व होते हैं जिससे हम उदर की पूर्ति कर सकते हैं इस प्रकार और भी विचार उन्होंने बहुत गम्भीरता से अध्ययन किया। वह वृक्षों के जो स्थावर सृष्टि है नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान कर भी मुझे तप करना है वह तपस्या में परणित हो गए। और तपस्या करने के लिए नाना वनस्पतियों का पान करने लगे। और पान करके मानो कहीं अग्नि में तपा करके और कहीं इसी प्रकार पान करके अपने जीवन को व्यतीत करने लगे गायत्री छन्दों का पठन पाठन करने लगे।

मेरे प्यारे! देखो, पठन पाठन करते हुए उनका जीवन निर्मज बन गया। उनका जीवन सुसज्जित बन गया। वह अपने में पवित्रता अनुभव करने लगे कि मैं तपश्चर बन गया हूँ उन्होंने देखो, करोड़ों गायत्रिणों का जप किया और मन में ईश्वर की धारयामि बनाते रहे प्राण का मन का दोनों का अपने में सहयोग ले करके दोनों का समन्वय करते रहे। और समन्वय करके मानो साधना में पूर्णता को प्राप्त हो गए। मुझे स्मरण आता रहता है कि महाराजा! सुनीति ने मानो बारह बारह वर्ष के दो अनुष्ठान किऐ और उन अनुष्ठानों में प्रातःकालीन यज्ञ करना और नाना प्रकार की वनस्पतियों को ला करके अपने में धारयामि बनाना इस प्रकार चौबीस वर्ष की तपस्या के पश्चात राजा सुनीति राजा ने विचारा कि अब मैं ब्रह्मवेत्ता बन गया हूँ। मेरी ब्रह्म में प्रवृत्ति बन गई है मानो मुझे क्षुधा लगने लगी है, और जब इस प्रकार वह अपने में धारयामि बन गऐ तो वह विचारा कि यहां तो संसार में वह ब्रह्मवेत्ता बनता है जिसे महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता अपनी वाणी को उद्गीत रूप में गान रूप में गाते रहते हैं। उन्होंने यह विचारा कि मैं तपस्या में प्रबल हो गया हूँ और जब मैं ऋषि के द्वार पर जाऊंगा वह मुझे अवश्य

ब्रह्म की उपाधि को प्राप्त करेंगें।
वह अपने आश्रम को त्याग करके और भयंकर वनों को त्याग करके शनै शनै वह अपने गृह में जा पंहुचें गृह में आ करके उनके मन्त्रीगणों ने जब यह स्मरण किया कि राजा ने अपने तपस्या करके गृह में प्रवेश किया है तो मन्त्रीगण सब विद्यमान हो गए। उन्होंने कहा प्रभु! आप तो बड़े सौभाग्यशाली है कि आप ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए सदैव तत्पर हैं ओर ब्रह्म की जिज्ञासा में मानो अपने में वृद्ध हो गऐ हो। यह हमारा सौभाग्य है राष्ट्र का सौभाग्य है क्योंकि अपने पूर्वज भी इसी प्रकार तपस्या को चले गएं जो राष्ट्र को त्याग करके तपस्या में परणित हो जाता है वह महान कहलाता है। मानो राष्ट्र को त्याग करके आप महान बन गए। धन्य हैं आप।
राजा अपने अस्त्रों शस्त्रों से युक्त हो करके ओर अश्व पर सवार हो करके वहां से गमन किया और गमन करते हुए वह उस वन में जा पंहुचें जहां देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज माता अरूणधती विद्यालय में मानो सदैव सुसज्जित रूप से अपने में संचालित करते रहते। मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है कि जब वह राजा अपने अस्त्रों शस्त्रों से युक्त हो करके पंहुचे तो ऋषि ने कहा कि आओ राजर्षि मेरे प्यारे! आओ राजर्षि उच्चारण सुनते ही उनके क्रोध की कोई सीमा नही रही क्रोधाग्नि जागरूक हो गई उन्होंने कहा ब्राह्मण तुम्हें यह अभिमान है कि मैं ब्रह्मवेत्ता हूँ मानो मैंने कितना तप किया है महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज मौन हो गए। और उनके मौन होते ही उनके एक ब्रह्मचारी को क्रोधाग्नि में मृत्यु दण्ड देने के लिए तत्पर हो गये। और उन्होंने उसे मृत्यु दण्ड दे दिया। मृत्यु दण्ड से ऋषियों में त्राहि त्राहि हो गई क्योंकि उस समय माता पिता से प्रथम मानो पुत्र का निधन नही होता था, बेटा! मुझे वह वाक् स्मरण है जब माताएं तपस्वी होती हैं तो माताओं के समीप देखो, पुत्र का निधन नही हुआ करता है। ऋषियों ने वेदमन्त्रों को ले करके माताओं को निर्णय दिया है कि देवियों तुम अपने में तपस्वी बन ककरे उन सन्तानों को जन्म दो जिससे वह तपस्वी माताएं अपने गर्भ से तपश्चर को आत्मा को प्रवेश करा करके और उसको जन्म देती हैं तो मानो उस पुत्र का माता पिता से पूर्व निधन नही हुआ करता है वह काल ऐसा भव्य काल था मुझे स्मरण है कि जब

ऋषि मुनि गृहों में उपदेश देते रहते थे तो मुनिवरों! जब ऋषियों में त्राहि त्राहि हो गई उन्होंने कहा हे ऋषिवर यह क्या हो गया है जो ब्रह्मचारी का निधन हो गया है। हमारे लिए यह बड़ा कुअवसर है भगवन! क्योंकि यह ऋषि प्रणाली के विरुद्ध है वह बड़ा अप्राकृतिक हो गया है। मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा कि कोई वाक् नहीं यह तो ब्रह्मवेत्ताओं की स्थली है मानो इस प्रकार इसको इस प्रकार किसी भी प्रकार मृत्युदण्डीय ब्रह्मणे। वह मृत्यु का दण्ड क्या है इसे विचारना है देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा कि इसका निधन नही होगा इस प्रकार जब निधन के लिए उन्होंने प्रार्थना की तो अन्त में यह कि प्राणों की रक्षा नही हो सकती। अन्त में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा, यह कोई वाक् नहीं यह मेरा पुत्र है, मृत्यु को प्राप्त हो गया है मानो माताओं ने किसी प्रकार की हानि को होगी तो वह समाप्त हो गया है। यह तो बहुत ही विलक्षण बन जाती है। आज मैं इतना समय नही उद्गीत रूप में गाना चाहता हूँ परन्तु विचार यह कि माता को प्राप्त कराया गया तो माता ने एक समय बालक जब माता के गर्भ में था तो उस समय पति पत्नी में किसी प्रकार का विवाद बन गया था, मानो किसी प्रकार की वृत्तियां बन गई तो उसने अपने बालक को अपने अन्तर्हृदय गर्भ में उसे संस्कार देना समाप्त कर दिया और जब माता संस्कारा नहीं देती है तो जानो कि वह बालक मृत्यु को जन्म नही दे सकती हैं देखो, वह अपने में इस प्रकार वशिष्ठ मुनि ने कहा कि जो इसका निधन हुआ है इसमें माता पिता का दोषारोपण है परन्तु यह इस प्रकार का नही होना चाहिए था। ऋषि अपने में मौन हो गए और राजा उसे मृत्यु दण्ड देकर के अपने राष्ट्र में चले गए।

सुनीति नाम के राजा के मन्त्री गणों में फिर यह चर्चा होने लगी और चर्चा हो करके राजा यह विचारने लगे कि मेरे उस मृत्यु दण्ड देने से मेरे तीन जन्मों का तप समाप्त हो गया। जब तप समाप्त हो गया तो विचारने लगा और प्रभु से कहने लगा हे प्रभु! मुझे मेरे कल्याण के लिए कोई मार्ग दीजिए, मुझे तो आपकी पगडण्डी चाहिए जिससे मैं आनन्द को प्राप्त हो सकूं। हे प्रभु! मैं संसार को नही चाहता हूँ मैं उस द्रव्य को चाहता हूँ जिससे मेरी अन्तरात्मा हव्य हो जाए। जब इस प्रकार का पश्चाताप उन्होंने

नही किया तो पुनः वह अपने पुत्र से बोले कि मैं तप करने जा रहा हूँ। पुत्र ने कहा धन्य हो प्रभु यह तो हमारा सौभाग्य है, हमारी प्रणाली को पवित्र बनाना है हमारे जितने भी वंशलज हुए हैं सर्वत्र अपने पुत्रों! को राष्ट्र देकर के वे अपने को सन्यस्थ को प्राप्त होते रहे हैं, ब्रह्मवेत्ता बने हैं ब्रह्म की जिज्ञासा व्यवस्था में वे मानो सदैव तपों में परणित रहे हैं राजा वहां से गमन कर गए। भ्रमण करते उसी स्थली पर आ गए जहां वह तपस्या में परणित रहते थे वे हपसया में आत्मवान बनने के लिए वह पुनः से तप करने लगे। पत्र पुष्पों को पान करना और आत्मवान बनने के लिए वे गायत्री ओर छन्दों के सहित वेदों का उद्गीत गान गाते रहते थे। मानो माला पाइ में गाते रहते थे। उन्हें जब बारह वर्ष इस प्रकार के तप को हो गए तो एक समय उनके यहां आश्रम में सिंह आ गया उसने जब आत्मवान की सुगन्धि को पान कि तो हिंसक ने अपनी हिंसा को त्याग करके उनके चरणों की वन्दना करने लगा। उनके चरणों को छूता रहता और स्पर्श करता रहता सिंहराज का प्रातःकाल आना और चरणों को वन्दना करके चले जाना। देखो, यह जो वेदों का ज्ञान है, विवेक है, जो मानव उद्गीत गाता है अरे, उसको कौन नही चाहता क्योंकि यह जो जितना ब्रह्माण्ड है यह प्रभु की सम्पति है और प्रत्येक प्राणी उसमें रत्त हो जाता है।

राजा तपश्चर बना रहा तो देखो, जब वह एक ऋषि अपने में संध्या और वेदों का गुणगान गा रहे थे तो सिंहराज ने जैसे ही उनके चरणों को स्पर्श किया वहीं महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का और महर्षि वैशम्पायन मुनि का आगमन हो गा। वे भ्रमण करते हुए देखो, सिंहराज को दृष्टिपात करके आश्चर्य से चकित हो गए क्योंकि उनके यहां भी प्रायः वैशम्पायन भी जब तपस्या करते रहते थे तो उनके यहां भी प्रायः ऐसा हुआ करता था परन्तु विभाण्डक मुनि महाराज ने भी उसी प्रकार का तप किया। वह राजा भी यहां तपस्या में लीन थे उन्होंने उस राजा का नाम विश्वामित्र नियुक्त कर दिया। ओर महर्षि वैशम्पायन बोले कि हे राजन्! अब आप राजा नही रहे हो अब तुम विश्वामित्र बन गएं हो और जो सिंहराज है वह हिंसा को त्याग करके आपके समीप आ गएं हैं ओर सर्पराज भी हैं जो कि विषधर है वे भी आपके चरणों की वन्दना करते

हैं तो तुम विश्वामित्र हो, तुम विश्व के मित्र बन गए हो। देखो, अपनी आत्मतव को आत्मवान बनाने वाला विश्व का मित्र बन जाता है।
वे अपने में जागरूक हो करके तीनों ऋषि अपने में विचार विनिमय करने लगे तो राजा ने कहा प्रभु! विश्वा का मित्र कौन होता है वैशम्पायन बोले कि विश्व का मित्र वह होता है तो मानो आत्मवान होता है। आत्मावान कौन होता है? जब राजा ने आत्मवान का प्रश्न किया तो उन्होंने कहा आत्मवान वह होता है जो आत्मा को मानो प्रभु से संलग्न करा देता है। वह आत्मा प्रभी की है और वह आत्मा प्रभु के गान गाने में सदैव तत्पर रहता हुआ यह आत्मवान कहलाता है। यह आत्मवानवादी बलिष्ठवादी में आता है, जिसकी आत्मा में बल आता है वही तो आत्मवान आत्म बलिष्ट कहलाता है राजन आज से तुम विश्व के मित्र बन गएं हो, तुम्हारा अन्तरात्मा पवित्र हो गया है उस समय जब उन्होंने यह वाक्य कहा तो विश्वम ब्रह्मः मित्रों रहस्यताम् हे राजन! तुम मित्र बन गए हो परन्तु उन्होंने पुनः कहा कि विश्व का मित्र कौन होता है? उन्होंने कहा जैसे सूर्य होता है अपने प्रकाश को दे रहा है वह विश्व का विश्व का मित्र बना हुआ है ऊर्ज्वा दे रहा है प्रकाश दे रहा है वह विश्व का मित्र कहलाता है। तो उन्होंने पुनः कहा प्रभु! विश्व का मित्र कौन होता है? उन्होंने कहा विश्व मित्र वह होता है जो मानो अपनी आत्मा को प्रभु से संलग्न करा देता है ओर प्रभु के समीप चला जाता है। जैसे प्रभु संसार के मित्र हैं उसी प्रकार आत्मवेत्ता होते हैं वह भी इस संसार में विश्व के मित्र बन जाते हैं उन्होंने पुनः कहा कि विश्व का मित्र कौन होता है? उन्होंने कहा कि विश्व का मित्र वह होता है जिसका कोई प्राणी निधन करने वाला नही होता हैं वह आत्मवान बन करके तत्त्वों को जान करके और वह मानो साकार्य बनकरके ओर मानो वह चेतना एकोकी रस बन करके प्रभु में संलग्न हो जाता है उन्होंने पुनः प्रश्न किया प्रभु विश्वा का मित्र कौन होता है? उन्होंने कहा विश्व का मित्र वह होता है जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा है वह अमृत की वृष्टि कर रहा है वह अमृत दे रहा है और अमृत देकर के मानो वह चन्द्रमा को माता गर्भा प्रव्हे जैसे पुत्र माता के गर्भ में हो चाहे मानो पृथ्वी के गर्भ में हो वनस्पतियां हो चाहे मानो वह उत्कृष्या हो, समन्वय में जो अमृत देने वाला है वह सर्वत्र ही मित्र

कहलाता है वह विश्व मित्र बन जाता है। इसी प्रकार जो ऋषि मुनि होते हैं तपस्वी होते हैं आत्मवान होते हैं वे चन्द्रमा की भांति वे भी विश्व के मित्र बन जाते है।

ऋषि अपने में मौन हो गए और उन्होंने कहा धन्य है प्रभु! उन्होंने विभाण्डक मुनि से कहा भगवन! आज कहां से आगमन हो रहा है। उन्होंने कहा प्रभु! हमें मानो पुष्पमण्डली से यह कहा ब्रह्मदण्डक है वहां एक ऋषि तपस्या कर रहा है एक राजा तपस्या कर रहा है, इस आपके दर्शनों के लिए आपके समीप आए हैं ब्रह्मचारियों ने प्रार्थना की कि किसी तरह हमारे आश्रम में उसका आगमन होना चाहिए उन तपस्वियों को उन्होंने कहा भगवन! मैं तपस्या में अभी पूर्ण रूप से नही हूँ। मैं तपस्या में सबसे प्रथम ब्रह्मवेत्ता मानो कि जब तक मैं ब्रह्मवेत्ता नही बनूंगा ब्रह्म में सम्मिलित नही हूँगा तब तक महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता नही कहेंगें तब तक मैं किसी आश्रम में गमन नही कर सकता। वह तपस्या में तल्लीन हो गए और ब्रह्मवेत्ताओं ने ब्रह्मचारियों ने उन्हें तथास्तु कह करके और तपस्या की वार्त्ता प्रगट करके वहां से गमन किया।

मेरे प्यारे! आज का विचार क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए अपने में यह विचार विनिमय करते चले जाएं कि मानव को आत्मवान बनना चाहिए, ब्रह्म का जिज्ञासु ही वेत्ता हो करके संसार सागर से पार हो जाता है ब्रह्मवेत्ता यह कहलाता है जो अकाय नही बन पाता जो मानो इन्द्रियों से ब्रह्म को दृष्टिपात नही कर सकता। यह अनुभव का विषय बन जाता है। अनुभवों में लाने के लिए मन पवित्र हो और देखो, आहार से मन पवित्र होता है, उससे बुद्धि पवित्र होती है, मेघावी तरंगों का जन्म हो जाता है। प्रजा भी मानो ब्रह्मचारियों मं प्रवेश करके वह अपने अन्तःकरण में वह अपने आत्मरूपी प्रकाश को दृष्टिपात करता हुआ अपने अन्तःकरण को प्रकाशमान बना करके परमात्मा को जो एक भाग है मानो मोक्ष की पगडण्डी को प्राप्त कर लेता है।

यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः क्या है देखो, एक कामधेनु है और कामधेनु जब प्रसन्न होती है तो दुग्धाहार कराती है, साधना में मानो प्रवृत्ति बन जाती

है। शेष चर्चाएं तो मैं कल प्रगट करूंगा। आज का विचार क्या है हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए संसार सागर से पार हो जाएं।

आज का विचार क्या कि एक राजा राष्ट्र को त्याग करके अपने जेष्ठायन पुत्र को राज्य दे करके भयंकर वनों में चला जाता है और वह वहां महान तपस्या करता है। और तपस्या भंग होने पर मानो निपुण होने के पश्चात वह पुनः तप करते हैं वहां संस्कारों में परणित होता ही हमारा कर्तव्य है तपों की चर्चा मैं करने आया हूँ तो हृदय गदगद हो जाता है। यह कहता रहता है कि हे प्रभु! आत्म ब्रह्म में, आपके राष्ट्र में यह कैसा नृत्त हो रहा है, कैसे तपश्चर में परणित हो रहा है, देखो, विचार यह जब धेनु की हम उपासना करते हैं केवल एक धेनु है धेनु में बेटा! देखो, साहित्य है शब्द निहित रहता है आज का हमारा विचार यह कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुणगान गाते हुए संसार सागर से पार हो जाएं। यह है बेटा! आज का वाक् अब इससे आगे की चर्चाएं कल प्रगट करेंगें। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा।

२४ 24 06 1988 पुष्प 54 55

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परगतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, में उस महामना परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गऐ हैं जितना भी यह जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आता रहता है, हमारे यहां यह जो जगत है यह दो प्रकार का माना गया है एक जड़वत है और दूसरा चैतन्य है। हमारे यहां जो चैतन्य जगत है उस चैतन्य जगत में आत्म ज्ञान और चैतन्य की गति मानो यह चैतन्य सृष्टि का कर्मबद्ध है। इस सृष्टि में जितनी भी चेतना है उस चेतना के मूल में प्रायः आत्मा का ज्ञान और प्रयत्न की प्रतिभा में सर्वत्र चैतन्य जगत अपने मे प्रायः क्रियाकलाप कर रहा है और द्वितीय जो जड़ जगत है जितना यह पिण्ड

रूप है मानो इसमें विद्यमान प्राणसता तो अवश्य रहती है और इसमें गति भी है परन्तु यदि ज्ञान और प्रयत्न नह हैं तो यह जड़वत संसार कहा जाता है।
तो यह दो प्रकार का जगत है एक जड़वत है तो एक चैतन्य माना गया है। तो दोनों प्रकार के जगत में वे परमपिता परमात्मा निहित रहते हैं क्योंकि वे परमपिता परमात्मा तो सर्वज्ञ है कोई वस्तु ऐसी नही हैं जिसमें वह विद्यमान न हो। तो इसीलिए हम आत्म चेतना के सम्बन्ध में प्रायः विचार व्यक्त करते रहते है और विचारते रहते हैं कि इस आत्मा को जानना चाहिए। आत्मा के साथ यदि यह प्रकृति के रुद्र रूपों में प्रवेश कर जाता है तो ऐसे इस संसार रूपी जगत में संसार रूपी प्रतिभा में रत्त हो जाता है। और उसी में रत्त रह करके यह उसी में मन मग्न रहता है परन्तु विचारने से यह प्रतीत होता है कि जितना ही इस संसार में जगत में प्रवेश करता रहता है उतना ही वह अपने में यह विचारता रहता है कि मेरी मृत्यु नही होनी चाहिए। मानो यदि यह चेतना के स्वरूप में ही प्रवेश रहता है ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहता है और आत्मा के घघृत रूपों में प्रवेश करता रहता है तो उतना ही प्रकाशमय रहता है प्रकाश में रत्त हो करके ही मानो मृत्यु इसके समीप नही आती। मृत्यु इसीलिए नही आती क्योंकि वह ज्ञानी है, वह प्रकाशमय है मानो वह परमात्मा के निकटतम कहलाता है मृत्यु उसको स्मरण नही आती। मृत्यु किसे स्मरण आती है जो इस संसार के आवेशों में प्रवेश कर जाता है। मानो ऐसे मम में प्रवेश करता हुआ वह मृत्यु के आंगन में प्रवेश कर जाता है क्योंकि अज्ञानता के कारण मृत्यु उसके निकट आती रहती है क्योंकि मृत्यु नाम अज्ञान का है। जितना भी यह मृत्यु शब्द की रचना होती है। यह मानो दो शब्दों के मिलान से जैसे तीसरे शब्द की रचना होती है इसी प्रकार अज्ञान में मिलान से जैसे तीसरे शब्द की रचना होती है इसी प्रका अज्ञान में जाने से अज्ञान के होने से द्वितीय शब्द की उत्पति हो जाती है अज्ञानां मृत्यु ब्रह्मः अज्ञान से मृत्यु का जन्म होता है तो मेरे प्यारे! इसीलिए हममें अज्ञानता नही रहनी चाहिए ज्ञान में प्रवेश होना चाहिए। जितना भी मानव में ज्ञान होता है उतना ही वह प्रभु के निकटतम होता है। और जितना निकटतम होता है उतना उसे प्रकाश होता है और जहां प्रकाश ही प्रकाश रहता है वहां मृत्यु शब्द नही बन पाता।

हमारे ऋषि मुनियों ने इसके ऊपर बड़ा अन्वेषण किया है अथवा विचार विनिमय किया है। यह संसार के मानो द्वितीय अपने संस्कारों को प्रति में इतना रत्त हो जाता है कि यह दूसरे संस्कारों को दृष्टिपात करता हुआ अपने में संस्कारों की उपज शक्ति की प्रबल बनाता रहता है। और जब उपज शक्ति प्रबल होती रहती है तो मानव के जीवन में अन्धकार आ जाता है और अन्धकार का नाम मेरे पुत्रों! मृत्यु कहा जाता है।

तो आओ मुनिवरों! मैं विशेष चर्चा देने नही आया हूँ आज मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे ऐसी प्रेरणा दे रहे हैं कि आज आत्म सम्बन्ध में कुछ विवेचना की जाएं। आत्मा के सम्बन्ध मं कुछ चर्चाएं की जाएं। आत्मा ज्ञान और प्रयत्न गतिवान रह करके अपने चित्त मण्डल में प्रवेश कर जाता है और चित्त के मण्डल में जैसे आत्मा के संस्कार होते हैं उन्हीं संस्कारों के आधार पर या तो यह द्यौ लोक में चला जाता है, या वह ध्रुवा लोक में मानो किसी माता के गर्भ में प्रवेश कर जाता है परन्तु विचार आता है कि उसका द्यौ लोक भी रहता है हमारे यहां बहुत पुरातन काल मे मैंने तुम्हें यह निर्णय देते हुए कहा था कि आत्मा जब इस शरीर को त्याग देता है तो अव्वयों को त्याग देता है वास्तव में यदि ज्ञान और विवेक की दृष्टि में हम दृष्टिपात करते हैं तो संसार में किसी वस्तु का विनाश नही होता। जब विनाश नही होता तो मृत्यु शब्द ही नही बन पाता मानो जिन अव्वयों से इस शरारों का निर्माण होता है वह अव्वय जब यत्र आत्मा इस शरीर को त्याग देता है तो वह अवव्यों में प्रवेश कर जाते हैं अग्नि जल इत्यादि जिस पञ्चीकरण से इसका निर्माण हुआ है, पञ्चीकरण में ही उसका मानो विलय हो जाता है वह उसी में प्रवेश कर जाता है। आत्मा के साथ ऐसे संस्कार होते हैं जिन संस्कारों को मानव लेकर के जब चित्त मण्डल में प्रवेश करता हैं तो उसी समय यह तीन प्रकार की गतियां वाला बनता है एक मरीचि नामक वायु गमन करती रहती है वायु के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप हामरे यहां वैदिक साहित्य में माने गए हैं। विज्ञानवेत्ता इसी वायु स्वरूप में जब गमन करता है तो ऐससे सूक्ष्मतम रहस्यों में अणु और परमाणुओं में गति करने लगता है जहां अग्नि का मानो स्वरूप ही कुछ और बन जाता है। इसी प्रकार हमारे यहां जो चित्त का मण्डल है उस चित्त के मण्डल में जब यह आत्मा प्रवेश करता है तो

एक मरीचि नाम की वायु होती है। और एक प्राचीदिक नाम की वायु है और एक इन्द्र वृत्तिका नाम की वायु है, तो इनमें यह भ्रमण करता है जब यह भ्रमण करता है चित्त के संस्कारों के साथ तो गमन करता हुआ इसमें जितने पूर्वले जन्मों के स्मरण शक्ति होती है। वह स्मरण शक्ति वह स्मरण शक्ति मानो इसके चित्त की आभा में वह लुप्त हो जाती है और लुप्त हो जाने वह वृत स्थूल रूप से उसका स्मरण नही रह पाता। वह परोक्ष में चली जाती है।

तो मुनिवरों! इसीलिए आत्मा जब भ्रमण करता है तो आत्मा के मानो जैसे चित्त में संस्कार होते हैं। उसी आभा में वह रत्त हो जाता है उसी गति को प्राप्त होने लगता है। यह हमारे यहां यमाचार्य ने भी इसका वर्णन किया है और भी आचार्यों ने इसका उल्लेख किया है। परन्तु आज हमारा यह मन्तव्य रहता है इस सम्बन्ध में कि प्रायः मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नही होती है यह तो संस्कारों का जगत है, संस्कारों की प्रतिभा है संस्कारों का जो अव्यव होता रहता है, उसी आभा में वह रत्त होता रहता है। तो आओ मेरे प्यारे! आज का विचार क्या प्रत्येक मानव में इतना ज्ञान होना चाहिए कि मृत्यु कोई शब्द नहीं। परन्तु जितना भी जगत में मिलन होता है मुझे स्मरण आता रहता है मुनिवरों! महर्षि शाकल्य मुनि महाराज के यहां मानो वह मोक्ष के निकट थे परन्तु एक हिरणी के बाल्य से जब स्नहे हो गया। उससे मोह हो गया, ममता हो गई तो जब वह हिरणी का बाल्य समाप्त हो गया तो उसे उसी से मोह हो गया। शाकल्य मुनि महाराज ने अपने शरीर को त्यागने के पश्चात माता के गर्भ में जब प्रवेश हुआ तो उसको स्मरण करते रहे। मैंने पूर्व जन्म में मोक्ष के निकटतम के क्रियाकलापों किए और मैं मोक्ष के निकट चला गया, परन्तु एक हिरणी के बाल्य से मोह हो गया, तब वह माता के गर्भ में प्रभु से याचना करता है हे प्रभु! मुझे इस गर्भाशय से दूरी कीजिए जब तक मैंने जो मोह किया है। हे प्रभु! मैं आगे मोह नही करूंगा मैं आपके निकट पुनः से जाना चाहता हूँ। तब मुनिवरों! वही बाल्य का जब जन्म हो गया, संसार में आ गए तो मानो वह जड़ की भांति रहते परन्तु मोह नही हुआ। मोह का कारण उन्होंने सर्वत्र त्याग दियां आत्मा में ज्ञान था विवेक था, ममता नही थी, वह सब समाप्त हो गई। वह पुनः आत्मा

में लीन हो गए। आत्मा में लीन हो करके पुनः आत्मा तत्त्व को अतत्व में प्रवेश करके उसी में लुप्त हो गए। वह मोक्ष के निकट जाने लगे।

विचार आता रहता है कि इसी प्रकार मानव जब संसार में मोह नही करता तो वह उपरामता को प्राप्त होता है। इोर वह मानव यदि संसार में मिलन से मोह करने लगता है उसी काल में मोह के संस्कारों का जन्म होता रहता है। और जन्म हो करे वह चित्त के मण्डल में प्रवेश कर जाते हैं मेरे प्यारे! मुझे तो स्मरण आता रहता है एक समय भ्रमण करते हुए बेटा! बहुत समय हुआ, मानो महर्षि वृत्ति मुनि के द्वार पर पंहुचें। तो वृत्ति मुनि परमात्मा का स्मरण करते रहते थे, सदैव उसी में रत्त रहते। तो वह वृत्तिका मुनि महाराज अपनें में उन्होंने बड़ा अभ्यास किया और उन्होंने पच्चासी वर्ष तक सत्य का अध्ययन किया और चित्त के मण्डल में संस्कारों को प्रत्यक्ष लाना चाहते थे। वह अपने में अपनेपन का दर्शन करते हुए पच्चासी वर्षों तक एक करोड़ पच्चासी लाख पचानवें हजार बावन जन्मों के संस्कारों को बेटा! वह प्रत्यक्ष कर सके। तो मेरे प्यारे! यहां बड़ा अभ्यास अनुग्रहीत करना होता है जिससे जीवन में एक महान प्रतिभा का जन्म हो जाए। क्योंकि मानव मोक्ष में जाना चाहता है मृत्यु से जाना नही चाहता है। उसकी एक ही इच्छा रहती है मानो मृत्यु न आ करके मोक्ष में चला जाऊं मोक्ष कहते हैं जब चित्त में कोई संस्कार मानो इस संसार का नही रहेगा। संस्कारों में विहिन होना ही मेरे पुत्रों! मोक्ष में जाना है। इन्हीं संस्कारों को अक्षय करते हुए तपस्या से, निष्काम कर्मता से, क्योंकि मन का, प्राण का समन्वय जब होता है शरीर में तो वह मन प्राण की गति के साथ साथ जब गमन करता है, आत्मा के ज्ञान के साथ जब गमन करता है तो बिना कर्म किए नही रह पाता। क्योंकि प्रकृति सदैव अपने क्रियाकलापां में रत्त रहती है। और सदैव यह क्रियाकलाप बना ही रहता है, कर्म फल प्रवेः मानो उसी में रत्त रहता है।

मेरे प्यारे! मुझे ऐसा स्मरण है कि ऋषि मुनियों की आभा से प्राप्त हुआ है कि जब यह अन्तःकरण क्रियाओं से शून्य हो जाता है जब यह निष्काम कर्म हो जाता है तो उ ससमय मानवक को मोक्ष की पगडण्डी को प्राप्त हो जाती है प्रभु के द्वारा पर जाने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है आज जब यह विचार हमारे स्मरण आने लगते है।, यह

तो विचारों का एक बड़ा विशाल वन माना गया है। परन्तु एक मानव है, एक अतिमानव है वह महान जो मानव कोटि के प्राणी हैं वह इस संसार में प्रतिभा युक्त बन करके रहते हैं परन्तु जो अतिमानव है वह परोपकार के संस्कारों के जन्मों की उपलब्धि करते हैं जिससे वह अपनी निस्वार्थ क्रियाओं में रत्त हो जाता है और निष्क्रियाओं में रत्त हो करके वह ऐसे क्रियाकलापों में परणित हो जाता है। कि मानो वह इदन्नमम् जो शब्द आता है हमारे वैदिक साहित्य में महर्षि यावल्क्य मुनि महाराज ने भी शतपथ ब्राह्मण में और भी नाना पोथियों में इसका विश्लेषण किया है। इदन्मम् का अभिप्रायः यह है कि यह मेरा कुछ नही हैं अतिमानव सदैव यही विचारता रहता है कि मेरा जो भी कुछ क्रियाकलाप है वह मेरा नही प्रभु की इच्छा है और प्रभु की यही इच्छा होती है जैसा क्रियाकलाप चल रहा है ऐसा जब मानव अपने में धारयामि बन जाता है तो वह अतिमानव के कर्मों में रत्त हो जाता है। अतिमानव अपने मानवता का जो क्रियावत है वह साहित्य है, आध्यात्मिकवाद है। उस पर आरूढ़ रह करके ऋषि मुनियों की भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करने लगता है तब यह अतिमानव की कोटि में चला जाता है अतिमानव संसार में मृत्यु नही हुआ करती है। अति मानव का जब भी प्राणों का विच्छेद होता है मन का विच्छेद होता है प्राणों से और आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न दोनों लुप्त हो जाते हैं तो उस समय वह अतिमानव की कोटि में प्रवेश करके सदैव यही कहता है कि हे प्रभु! मैंने जो संसार में क्रियाकलाप किया है वह आपकी इच्छा है। यह शरीर इदन्नमम आपका है मेरा नही हैं प्रभु।

इस प्रकार का विचार विनिमय करता हुआ वह अपने में दूसरों के लिएनिरन्त क्रियाकलापों में लगा रहता है। वह अपनी आत्मा की प्रेरणा ज्ञान और प्रयत्न के साथ मे सदैव संलग्न रहता है और जिस काल में वह शान्त होता है वहां आत्मा ओर परमात्मा का ज्ञान विचित्रितम ब्रह्मः अपने में रत्त होकर के प्रभु का स्मरण करता रहता है। वह अतिमानव है क्रियाकलापों में दूसरों के हितार्थ साहित्यिक आभा में रत्त होना और जब यह शान्त होता है तो प्रभु! की आभा में रत्त हो जाता है तो जब उसका आत्मा जाता है इस शरीर को त्याग करके तो वह देवलोक में चला जता है अतिमानव कोटि में

चला जाता है अतिमानव की जो कोटि है वह कुछ समय स्वतन्त्र रूपों सें अन्तरिक्ष में इन्द्र नाम की वायु होती है वह उसमें गमन करता हुआ भुवनेश्वर जो लोकेश कहलाता है वह उसमें भ्रमण करता रहता है। बहुत समय तक वह स्वतन्त्र भ्रमण करके वह माता के गर्भ में पुण्यवादन माता के गर्भ में प्रवेश होकर के पुनः से क्रियाकलापों में रत्त हो जाता हैं तो आओ मेरे प्यारे! हमारे वैदिक साहित्य में प्रायः इसका वर्णन आता रहता है आज मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी की मुझे प्रेरणा प्राप्त हो रही है उसी प्रेरणा के आधार पर आज मैं अपने विचारों को व्यक्त करने लगा था। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगें क्योंकि उनकी बड़ी उत्कट इच्छा रहती है कि ऐसे समय में मैं भी कोई वाक्य उच्चारण करु, आत्मा के सम्बन्ध में।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् देवां ब्रह्मणा ब्रहे व्रतं देवाः श्वञ्जनं ब्रह्मा मृत्यु वर्णासुतं वाचन्नमं ब्रहे कृतं देवाः अश्वश्चम् ब्रव्हा सम्भवा लोकां ब्रह्मे सम्भवा वरुणशचं कृत्त व्रत्यां देवाः विष्णु श्वञ्जनं व्रत्यं ब्रहे विष्णु गतं ब्रह्मा वायु सम्भव ब्रव्हा यश्चमं कृतम्भि वायु सर्वे श्वञ्जनम्। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपने बहुत से अनुभव की चर्चा प्रगट कर रहे थे जो इनके अनुभव की प्रतिभा रही है वह बड़ी अनूठी रही है क्योंकि हमारे यहां वैदिक साहित्य में संसार की बहुत सी वार्त्ताएं इस प्रकार की हैं जो मानव के साधारण कोटि के प्राणियों में नही पाती। आज हमारी जो आकाशवाणी है हमारा जो विचार है वह मानो एक गृह में प्रवेश हो रहा है एक गृह में वह उद्गीत रूपों से गाया जा रहा है इस गृह के स्वामी ब्रह्म वतः जो हमारे बहुत से कोटियों के संस्कारों की प्रतिभा प्रायः वह बनी रही है, वह संस्कार मानो अति मानव के रूप में मानो उद्बुद्ध रूपों से हमारे समीप आती रही। प्रायः इस सम्बन्ध में कोई विचार देना नहीं है वह गृहस्वामी अपने संसारिक गृह को त्याग करके, शारीरिक विवेक वृत्तियों को त्याग करके वह अपने में जिस परोपकार की विचित्र भावना हृदय में प्रवेशिका रूपों में रही है वह पुनः से उन्हीं विचारों में वह आत्मा प्रवेश कर गई है। जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि अतिमानव की भी कई प्रकार की कोटियां होती हैं जैसे पूज्यपाद गुरुदेव

ने अभी अभी व्याख्या की।
एक मानव होता है एक अतिमानव होता है वह जो अतिमानव होता है वह अपने कुटुम्ब संसार को जो सम्बन्ध होता है, ऋणबन्धी संसार जिसे कहते हैं जैसे हमारे पूज्यपाद गुरुदेव है और जैसे आत्मा शरीर कृतियों में रत्त हो गई है, ऐसी जो आत्माएं होती हैं वह सदैव किसी न किसी अतिमानव की कोटि में प्रवेश करती हुई और वह अतिमानव वृत्तियों में रत्त हो जाती हैं अति वृत्तियां उसे कहते हैं जो मानव इस संसार की प्रतिभा से इन कार्यों को त्याग करके वह चला जाता है उन्हीं कार्यों में पुनः रत्त हो जाता है। चाहे वह चित्त के मण्डल में हो प्रवेश कर जाएं पर वह आभा उसकी बनी रहती है। वायुमण्डल में भी बनी रहती है क्योंकि हमारे यहां यह विचार आया है कि विज्ञानवेत्ताओं की कोटि में इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण प्रायः पुरातन काल के आचार्यों ने किया विज्ञानवेत्ताओं ने किया है। वायुमण्डल में जो विचार गमन करते रहते हैं गृहां में विचार गमन करते रहते हैं वह गृह के विचार मानो यन्त्रों में दृष्टिपात आते रहते हैं विज्ञान प्रायः हमारे यहां प्रायः आता रहा है।
मुझे स्मरण आता रहता है जिस आत्मा का शरीर इस गृह से दूरी हो गया है पुनः यह आत्मा किसी काल में एक योगी रहा है किसी काल में यह विज्ञानवेत्ता बन करके रहा। एक घटोचित नाम के वैज्ञानिक थे बहुत पुरातन काल की चर्चाएं हैं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब उनके आश्रम में ले गऐ तो घटोचित नाम के ऋषि ने एक यन्त्र का निर्माण किया था जिस यन्त्र का नाम विचारा स्वस्तिका यन्त्र कहा जाता था उस यन्त्र में यह विशेषता रही जैसे यह आत्मा जाने लगा शरीर में, गृह को त्याग करके तो उस आत्मा का उसकी तरंगों का उस यन्त्र में प्रवेश कराया दूरी यन्त्रों का निर्माण किया तो उसका साक्षात्कार स्थूल जगत उनके समीप आया और उसमें जो प्रतिभा जिस क्रियाकलापों में उसकी स्मरण शक्ति रही उन्हीं क्रियाकलापों को स्मरण शक्ति के साथ उसमें उसका स्थूल जगत आया ओर यन्त्रों में दृष्टिपात किया गया। उन यन्त्रों में वही तरंगें स्थूल बन करके मानो जब दृष्टिपात आने लगी तो वही क्रियाकलाप, वही विचार, वही चिन्तन वही अतिमानवता के रूप में प्रवेश करती रही। तो मानो उस ऋषि ने उन तरंगों को,

उस क्रियाकलापों को गति मानव के रूप में उसमें प्रवेश किया। इसी प्रकार आत्मा अपने जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों में न प्रतीत क्या क्या बन जाती है।
मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का यह जो जीवन है यह बड़ा विचित्र रहा है परन्तु किसी काल में ऋषि मुनियों की आभा और उनकी गोष्ठियां में विद्यमान होकर के आत्मा परमात्मा की चर्चाएं किसी काल में यज्ञों के प्रति अनुसन्धान होता रहा। किसी काल में संस्कारों की प्रतिभा के ऊपर विचार विनिमय होता रहा। किसी काल में गुरु और शिष्य की परम्परा में वह पारायण रचनाओं में वह सदैव तत्पर रहे हैं। इसी प्रकार मानव को यह प्रतीत नहीं परन्तु जो आत्मा इस शरीर से चला गया गृह से चला गया, माना किसी काल में वह योगी भी बने परन्तु उसी प्रतिभा से वह इसी क्रियाकलापों में सदैव रत्त रह करके वदों की प्रतिभा में वेद मन्त्रों के उद्गीत गाने वाले भी रहे। समय आने पर जहां संसार में अहिंसा परमोधर्म की प्रतिभा में रत्त रहे। जहां वायु के सेवन से भी प्राणी मात्र का ह्रास न हो मृत्यु को प्राप्त न हो परन्तु जिनका जीवन इस प्रकार बना वह हिंसक आभा में सदैव रत्त रहे मानो हिंसा को त्याग करके जब संस्कारों का उद्बुद्ध होता है तो पुनः से यह अहिंसा में परणित हो गए। अहिंसा में परणित होने के पश्चत अपने में इतने विचारों को अन्तरिक्ष में प्रवेश कराते रहे। उन्हीं विचारों को वह मानव शरीर को त्याग करके पुनः से प्राप्त हो गए।
तो विचार क्या? आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं देता हूँ। न देने आया हूँ पूज्यपाद गुरुदेव ने जो संस्कारों की अतिमानव की और मानवता के सम्बन्ध में जो अपनी चर्चाएं की ह। वह बड़ी विचित्र है और बड़ी महता में सदैव तत्पर रही हैं तो हमारा विचार यही है कि मानव अपनी अन्तरात्मा में ली हो जाए। अन्तरात्मा में प्रभु का स्मरण करता रहे। ओर दूसरों के हित के लिए सदैव तत्पर रहे। क्योंकि मैं भी सदैव अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में प्रवेश करता रहा हूँ पूज्यपाद गुरुदेव ने आत्माओं को सदैव मानवता के रूप में और अतिमानवता के रूप में प्रवेश कराते रहे उसी प्रकार पूज्यपाद गुरुदेव का इन शरीरों पर बड़ा सहयोग रहा है। इसीलिए मैं कोई विशेष चर्चा तो प्रगट नहीं करता हूँ, न करने ही आया हूँ केवल विचार यह कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव

ने कहा है कि मृत्यु कोई शब्द नही हैं। प्रत्येक आभा ज्ञान और प्रयत्न के साथ में अपने अपने संस्कारों को ले करके चला जाता है वह लोक लोकान्तरों में भ्रमण करता है वायु में भी गमन करता है अतिमानवता को प्राप्त करके सांर में जितना मिलाप होता है उसमें केवल मिलन ओर विच्छेद होने का ही केवल मात्र माना गया है। और मनों का जो स्वार्थ होता है वही शोकातुर होता रहता है कि वह दृष्टिपात आ रहा था आज नही रहा है।

एक आत्मा मानो चन्द्र मण्डल पर है उसकी का सम्बन्ध आत्मा मानो पृथ्वी मण्डल पर है विचार आता रहता है कि आत्मा आत्मा शरीरों से कोई परिचय नही हो पाता तो न उसका कष्ट होता है और न उसमें शोकातुर होता है। केवल शोकातुर वही होता है जिसको मानो एक वस्तु का मिलन हुआ है, फिर उसका विच्छेद हो गया है संकल्प हुआ है, संकल्प का विच्छेद हो गया है। संकल्प से ही जगत का निर्माण होता रहता है। इसीलिए संकल्पों का विच्छेद हाना ही एक शोकातुर होता है। तो इसीलिए मैं सदैव यह प्रार्थना करता रहता हूँ अपने पूज्यपाद गुरुदेव ऐ ऐसा ज्ञान आत्मा में प्रवेश करा दीजिए प्रभु की विवेचना करते रहते हैं प्रभु वेदमन्त्रों को जानते रहते हैं कि उसमें ऐसा ज्ञान और विज्ञान है जिनसे हमारा आत्मतव केवल आत्मतव बन करके इस संसार की प्रतिभा में इतना संलग्न न हो जाएं जिससे हमें नारकिक तत्त्वों को प्राप्त होना हो नारकिकता को प्राप्त न हो। हम सदैव अन्धकार को त्याग करके प्रकाश में जाना चाहते हैं ऐसी सदैव हमारी कामना रहती है, हमारी इच्छा रहती है।

आज का हामरा विचार अब समाप्त होने जा रहा है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज बहुत पुरातन काल के पश्चात अपने मौलिक विचार प्रगट किए हैं और मौलिक विचारों में अतिमानव की चर्चाओं का विवेचन होता रहा और हमने भी अपने विचार व्यक्त किए कि जन्म जन्मान्तरों से जो आत्मा मानो योगी बनता रहा, संसार में आता रहा, संसार में आ करके पुनः पुनः उन संस्कारों को उद्बुद्ध करने के लिए सदैव तत्पर रही है गद्देलें में जा करके मानो संस्कारों की उद्बुद्धता करता रहता है ऐसा सुन्दर यह क्रियाकलाप ऐसा विचार मानो आता रहता है वैदिक साहित्य में और वेद के मन्त्रार्थों में, याग इत्यादि

क्रियाओं में रत्त हो करके पुनः पुनः संस्कारों को जागरूक करके प्रत्येक प्राणी को करना चाहिए जैसा मानो अदभुत आत्मा करती है। देवयान की आत्मा करती रहती है ऐसा हमारा सदैव क्रियाकलाप रहना चाहिए। आज का हमारा वाक्य समाप्त अब मैं पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने बड़े गम्भीर विचारों से जन्म जन्मान्तरों की प्रतिभा ओर उसकी आभा में जाने के पश्चात अपना विचार दिय यां तो अतिमानवता और अतिमानव की चर्चा परम्परागतों से प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में रही और वैदिक साहित्य ऐसा साहित्य है ऐसा विचार है, एक एक वेदमन्त्र के विचार के संसार की प्रतिभा का ज्ञान होता है और ममता और मोह का विनाश होता है प्रकाश आता रहता है मानो अति का नाम संसार में पापाचार कहा जाता है। सामान्यता मे उसी को हम पुण्यवान कहते हैं जैसे एक मानव को मोह हुआ है, अतिमोह हो गया तो अतिमोह ही उसके पापाचार का मूल बन गया हे और यदि अति लोभ हो गया तो वह भी पापाचार का मूल बन गया है और यदि सामान्यता में रहता है तो हमारा पुण्यवान जीवन बन गया है। जैसे एक मानव केवल यही गृह आश्रम में प्रवेश करता है कि मुझे पुत्रयाग में प्रवेश होतना है तो पुत्र याग होना ही उसका देवयान और पुण्यवान बनाता रहता है ओर यदि वह अतीतता में प्रवेश कर जाता है उसी पुत्र याग को ले करके वह सम्भोगता कृतियों में रत्त हो जाता है तो वही उसका पापाचार बन जाता है। तो इसीलिए प्रभु ने हमें काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह जो सामान्यता में हैं वह मानो उसका कर्तव्य है और अति का नाम ही क्रोध, लोभ ओर मोह की प्रतिभा से रत्त हो करके वही हमारे पाप का मूल बनता रहता है ओर वही जन्म जन्मान्तरों की प्रतिभा बनता रहता है और वही मानव यदि कर्तव्यवाद में प्रवेश करता हुआ ज्ञान युक्त मानवता की अतिमानवता की कोटि में चला जाता है इसी क्रियाकलापों में मानो वह संसार को अपने के कुटुम्ब के मोह को त्याग करके वही मानव अति वृत्तियों में ऊर्ध्वा में गति करने लगता है और वह गतिवान हो करके अपने को संसार के क्रियाकलापों में लगा देता है वह अपने सूक्ष्म से स्तम्ब को त्याग करके

वह यदि व्यापकवाद अपना जीवन बना करके संसार के ज्ञान और विज्ञान में प्रवेश कर जाता है तो कुटुम्ब के कर्तव्यवाद की प्रतिभा में रत्त हो जाता है उसको हमारे यहां अग्नं ब्रह्म व्रतं उसी को गृहपथ कहते हैं उसे हम गृह पथ्य नाम की अग्नि से चयन करते रहते हैं उसी गृहपथ्य नाम की अग्नि का जो चयन करता है उसी को दृष्टिपात करने वाले बाल्य बालिका उसी की कोटि में उसी के विचारों से अपने को लाभान्वित करते हैं, मानो यह संसार के कठोर से कठोर क्रिया कलापों में भी विचलित नही हुआ करते हैं। वह उससे उपराम हो जाते हैं तो इसीलिए मातृ पितरं ब्रह्मः माता पिता या कोई भी वृत हो या आचार्यजन हों या राजान हो कोई भी हो जब वह उपराम होने के क्रियाकलापों में रत्त होता है तो समाज भी उसी के आधार परबरतने लगता हे वह मानव अतिमानव की कोटि में प्रवेश हो करके अपने को व्यापक रूप बना देता है व्यष्टि को त्याग करके समष्टि में प्रवेश हो जाता है समष्टि उसे कहते हैं जितना ज्ञान का प्रसारण कर दे, जितना ज्ञान को वह व्यापक रूप दे दे वही समष्टि में प्रवेश हो करके, व्यष्टि को त्याग करके समष्टि में चला जाए और समष्टि में जा करके वह अतिमानव की कोटि में प्रवेश हो करके अपने को धन्य स्वीकार कर लेता है। चाहे वह रूग्ण हो चाहे वह अरूग्णाता में हो वह प्रभु को यदि स्मरण करता रहता है तो आत्मा उसका जागरूक रहता है उसका आत्मा शरीर के रोगों को दृष्टिपात नही करता।

मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज भयंकर वनों में रहते थे। तो भयंकर वनों में उन्होंने विचारा कि मैं अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहता हूँ तो उन्होंने बारह वर्षों का इस प्रकार का अनुष्ठान किया और जो भी प्राणी आता उसकी वह रक्षा करते, कोई भी प्राणी हो मानो वायु में, जलचरों में, रेंगने वाले प्राणियों मे सबकी रक्षा करते रहते थे। कुछ समय के पश्चात जब वह अहिंसक हो गया, अहिंसा में सिद्ध हो गए कि मन, कर्म, वचन से वह किसी भी प्रकार की हिंसा न करना, अप्रियता को न प्राप्त होना, इसी प्रकार उन्होंने पञ्चीकरण अपने जीवन को बनाया और पञ्चीकरण बना करके मानो सबका साकल्य बन गया है और साकल्य बन करे उसको हृदय रूपी यज्ञशाला में प्रवेश करा करके वह आत्मा में लीन हो गए। और

आत्मा में लीन हो करके कोई प्राणी आ जाए, हिंसक आ जाए वह सबसे प्रीति युक्त रहते थे।

तो विचार यह आता है कि हमारा वैदिक साहित्य विवेक से परिपूर्ण है और विवेक में जाना ही मानव का कर्तव्य माना गया है। तो आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं वह बड़े प्रियतम रहे। बहुत प्रियता लगी। मानव अतिमानव जब बनता है जब इन्द्रियों पर संयम कर लेता है, ममता को त्याग देता है। व्यापकता में प्रवेश कर जाता है और व्यापकता उसे कहते हैं जो जन्म जन्मान्तरों से मानो कोई योगी बन जाता है योगी के पश्चात वह संसार में आ जाता है द्वितीय जन्म में संसार में आ करके पुनः भी वह सत्संग और अपने क्रियाकलापों से याग इत्यादि से पुनः हिंसा से अहिंसा में प्रवेश हो जाता है यही तो उसकी अतिमानवता होती है तो आज का विचार अब समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा।